वैशेषिकदर्शनका सूचीपत्र.

वैशेषिकदर्शन

भाषानुवादसहित.

ॐ परमात्मने नमः ॥

नत्वेशमालोक्य च देववाण्यां
लोके जनानामधिकारमल्पम् ।
शास्त्रप्रचाराय सुदेशवाण्या
ह्यर्थान्विवक्ष्याम्यथ दर्शनानाम् ॥ १ ॥
तत्रापि वैशेषिकसंज्ञकस्य
ज्ञानाय संस्थाप्य च तस्य सूत्रम् ।
शब्दार्थमात्रेण तदर्थमुक्त्वा
भाष्यं तदग्रे रचयामि पूर्वम् ॥ २ ॥

परमात्माको प्रणाम करिके इसकालमें बहुत मनुष्योंको विद्याहीन परिश्रमरहित देखके अपनी बुद्धिअनुसार शास्त्र जो तत्त्वज्ञानप्राप्तिके द्वार हैं उनको संस्कृतभाषासे देशभाषामें अनुवाद करनेका मनोरथ किया है इससे यह

अभीष्ट है कि वैशेषिक न्यायादि विख्यातशास्त्र जो यथार्थज्ञानके उपयोगी व हितकारी हैं उनके विषयज्ञानसे बहुत मनुष्य रहित हो अज्ञान रहते हैं अर्थात् सहस्रमें कोईएक शास्त्रोंका जाननेवाला होताहै शेष आलस्ययुक्त सत्संगरहित हो विद्यालाभ व संस्कृतअध्ययन (पठन) नही करते जे संस्कृतअध्ययनभी करतेहैं वह यथार्थ अधिकार लाभ नहीं करते जिनको यथार्थ अधिकार संस्कृतमें नहीं होता उनको इसकारणसे कि उक्तशास्त्र संस्कृतवाणीमें वर्णित हैं शास्त्रोंका ज्ञान होना असंभव है वह जो यथोचित परिश्रम संस्कृतअध्ययनमें करतेहैं वह बहुत कम देखनेमें आते हैं जे संस्कृतज्ञानसें सर्वथा रहित हैं उनको शास्त्रज्ञान होना अतिदुर्लभ है ऐसे शास्त्रोंका ज्ञान व विशेषप्रचार होनेका उपाय केवल सरलदेशभाषामें वर्णन करनेसें हो सक्ता है. क्योंकि देशभाषामें अध्ययन करनेका परिश्रम नहींहै साधारण समुझसकेंगे जिज्ञासुओंको शास्त्रविषयक पदार्थज्ञानमें सरलता होगी इससें समुदाय मनुष्योंका हित होगा व इस हितसे मेरे परिश्रमकी सफलता होगी परंतु मीमांसादर्शनमें विशेष वाह्यकर्म व यज्ञआदिका व्याख्यान जानकर आत्मज्ञान व पदार्थतत्वज्ञानका विशेष उपयोगी न समुझकर उसको छोडकर वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य व वेदान्त इनके वर्णन करनेकी आवश्यकता विशेष निश्चितकरके इन पांच शा-

त्रोंके भाषानुवाद (भाषामें तरजुमा) करनेका मनोरथ किया है इनमेंसे प्रथम वैशेषिकदर्शनवर्णनका आरंभ किया-जाताहै प्रथम मूलसूत्र रक्खके उसके नीचे उसका भावार्थ व उसके भाष्यका वर्णन किया जायगा जो मुझसे प्रमाद व अ-ज्ञानसे भूल होजावै तो विद्वान् सज्जन कृपा करके शुद्धकर-लेवैं क्योंकि संत दोषग्रहण नहीं करते केवल गुणग्रहणकर्ता सज्जन विख्यात हैं इस अनुवादमें जो संस्कृतशब्द विशेष रक्खे जाँयगे उनके आगे ऐसा (   ) कोष्टचिन्ह बनाके कोष्टके मध्यमें उनका अर्थ भाषाशब्दमें रख दिया जायगा. विदितहो कि जिज्ञासु व शिष्य जे इस संसारमें जन्म, जरा, मरण, आदिसे उत्पन्न दुःखसमूहके त्यागकी इच्छा करतेहैं वह श्रुति, स्मृति, इतिहास आदिमें उनके हान(नाश)का उपाय अन्वेषन(खोज)से केवल आत्मतत्वज्ञानही सुनते व पातेहैं इस हेतुसे एक समयमें कुछ शिष्य उक्त इच्छासे अर्थात् जन्म जरा मरण आदि जनित दुःखके त्यागकी इच्छासे यथार्थ वेद, वेदाङ्ग पढेहुए द्वेषबुद्धिरहित श्रवणमें अतिप्रीतियुक्त निश्चय प्राप्ति व मननके मनोरथसे श्रीक-णाद महर्षिके पास आये व तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा कियी तब ऋषि परमकृपालु यह दशाध्यायीतंत्र वैशेषिकदर्शन उनको उपदेश किया इस शास्त्रमें उद्देश लक्षण परीक्षा तीन प्रकारकी प्रवृत्ति है विभाग केवल उद्देशहीका विशेष

भेद हैं इससे भिन्न अधिक वर्णन नहीं किया गया यद्यपि इस शास्त्रमें पदार्थवर्णन करनेकी आधिक्यता है तथापि पदार्थतत्त्वज्ञानमें धर्महीकी प्राधान्यता है इससे प्रथम उक्त शिष्योंसे कणाद महर्षि धर्मवर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं जैसा आगे सूत्रमें कहाहै

अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अथ (अब) इससे धर्मको वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

अथशब्द जिसका अर्थ अब लिखागया है उससे यह अभिप्राय है कि जब शिष्योंने कणाद महर्षिसे पूंछा तब महर्षि कहतेहैं कि हे शिष्यो, अब तुह्मारे प्रश्नान्तर (पूंछनेपर) हम धर्मको वर्णन करेंगे अथशब्द शिष्योंकी आकांक्षासूचक (जनानेवाला)है व अतःशब्द जिसका अर्थ इससे है उसमें यह प्रयोजन है कि शिष्योंकी अतिअभिलाषा व तत्त्वज्ञान सुननेकी उत्कण्ठा देखके व सत्यार्थी व द्वेषबुद्धिरहित शिष्योंको जानकर महर्षि कहतेहैं कि हे शिष्यो, जो तुमको अतिअभिलाषा है व सत्यार्थी हो अर्थात् सत्यग्रहणका तुह्मारा मनोरथ है जिज्ञासु हो पक्षपात व द्वेषबुद्धिरहित हो इससे हम तुमको धर्मकी शिक्षा करेंगे अर्थात् जो हठबुद्धिवाले व पक्षपातयुक्त होते सत्यार्थी न होते तो तुमसे धर्मका व्याख्यान न करते परन्तु यह दोष तु-

मर्में नहींहैं इससे हम अधिकारी जानकर व्याख्यान करैंगे इससे शिष्योंकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) व अधिकारित्वसूचक है यद्वा अथशब्द मंगलवाचक है इससे अथशब्द आदिमें कहकर यह कहाहै कि हे शिष्यो, जिज्ञासा करते हौ व सत्यार्थी हौ इससे हम धर्मको वर्णन करैंगे १

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः॥२॥

जिससे स्वर्ग व मोक्षकी सिद्धि होतीहै वह धर्म है॥२॥

जो यह तर्क होवै कि धर्मसे क्या फल है जिसके वर्णन करनेकी महर्षि प्रतिज्ञा कियाहै अथवा कोई यह समुझै वा कहै कि धर्मसे कुछ फल नहीं होता व्यर्थप्रतिज्ञा कियाहै इस तर्क वा मिथ्याबुद्धिके निवारणके लिये धर्मका यह लक्षण वर्णन कियाहै कि धर्म ऐसा पदार्थ है कि जिससे स्वर्ग व मोक्षकी सिद्धि होतीहै स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त होना जो जीवका परम मनोरथ है उसके साधनका हेतु धर्म है अर्थात् भुभुक्षुओंको (भोगकी इच्छा करनेवालोंको) स्वर्गप्राप्तिसुख व मुमुक्षुओंको (मोक्ष चाहनेवालोंको) मोक्षप्राप्तिसुखका साधन हेतु जो धर्म है उसका व्याख्यान युक्त व उचित है दूसरा अर्थ यह होसक्ताहै कि अभ्युदय(ज्ञान)के द्वारा निःश्रेयस अर्थात् अत्यंत दुःखकी निवृत्तिरूप मोक्षकी सिद्धि जिससे होवै वह धर्म है अभ्युदय(ज्ञान)द्वारा निःश्रेयस-

(मोक्ष)की प्राप्ति होतीहै इससे अभ्युदयद्वारा निःश्रेयस (मोक्ष) सिद्ध होनेका अर्थ ग्राह्य है यदि यह शंका हो कि द्वाराशब्द तो सूत्रमें नहींहै यह अर्थ किसप्रकारसे हो सक्ताहै तो उत्तर यह है कि व्याकरणकी रीतिसे अभ्युदयद्वारकं निःश्रेयसं इसमेंसे मध्यपदलोपी समाससे द्वारक शब्दका लोप हो जाताहै लोप हो आनेपर अभ्युदय निःश्रेयस रह जाताहै इससे भाषामात्र जाननेवालोंको कुछ प्रयोजन नहींहै यह केवल व्याकरण जाननेवालोंके लिये वाक्यके यथार्थ अर्थबोध होनेके अभिप्रायसे लिखदिया गयाहै जानना चाहिये कि अभ्युदयशब्दके दो अर्थ हैं एक तत्त्वज्ञान दूसरा स्वर्ग (सत्कर्मसे सुख लाभरूप फल) जो तत्त्वज्ञानका अर्थ ग्रहण किया जावै तो सूत्रका अर्थ यह होगा कि जिससे तत्त्वज्ञानद्वारा निःश्रेयस(आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष)की प्राप्ति होतीहै वह धर्म है व जो दूसरा अर्थ ग्रहण किया जावै तो जैसा पूर्वही कहा गया है यह अर्थ होगा कि जिससे स्वर्ग व मोक्षकी सिद्धि वा प्राप्ति होतीहै वह धर्म है धर्मका स्वर्गसाधनका हेतु होना आप्तवाक्यसे साक्षातही सिद्ध होताहै परन्तु मोक्षका साक्षात् (आपही) सिद्धकरनेवाला नहींहै केवल तत्त्वज्ञानही द्वारा मोक्षको प्राप्त करताहै अर्थात् धर्म तत्वज्ञान उत्पन्न होनेका उपयोगी होताहै तत्त्वज्ञानसे मोक्ष प्राप्त होताहै स्वतः (आपसे)धर्म

मोक्षसाधक नही हो सक्ता यह स्वर्गसाधन व मोक्षसाधनमें विशेषता है अब जो धर्म तत्त्वज्ञानसाधनका हेतु हो तत्त्वज्ञानद्वारा मोक्षको सिद्ध वा प्राप्त करताहै व सामान्यसे स्वर्गको प्राप्त करताहै उसके गौरव (बडाई) व उत्तमताको अगले सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ ३ ॥

उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य (प्रमाण होना) है ॥

उसके (उक्तधर्मके) वचनसे अर्थात् धर्मके प्रतिपादनसे वेदका प्रामाण्य है वेद धर्मरूप उत्तम पदार्थप्रतिपादक वाक्योंसे संयुक्त है वा धर्म ऐसे उत्तम पदार्थको प्रतिपादन करता है इससे अर्थात् धर्मप्रतिपादक वचन होनेसे वेदका प्रामाण्य है अर्थात् जो असत् पदार्थको वेद प्रतिपादन करता तो वेदका प्रामाण्य न होता धर्म प्रतिपादन करने व उसके यथार्थ होनेसे वेदका प्रामाण्यहै अथवा यह अर्थभी हो सक्ता है कि उसके अर्थात् प्रसिद्ध ईश्वरके वचन होनेसे वेदका प्रामाण्य है तात्पर्य यह है कि यदि यह शंका हो कि धर्मके स्वर्गसाधनके हेतु होने व ज्ञानका उपयोगी हो ज्ञानद्वारा मोक्षसाधनके हेतु होनेमें क्या प्रमाण है तो इसके समाधानके लिये सूत्रमें यह कहा है कि उसके (ईश्वरके) वचनसे अर्थात् वचन होनेसे वेदका प्रामाण्य है अर्थात् वेद ईश्वर व-

चन अंगीकार किया गया है ईश्वर नित्य सर्वज्ञ भ्रमरहित निर्दोष है ऐसा जो ईश्वर है उसके वचनरूप वेदसे धर्म प्रतिपादित है इससे धर्मके स्वर्गसाधन व ज्ञानका उपयोगी हो ज्ञानद्वारा मोक्षसाधनके हेतु होनेमें वेदका प्रामाण्य है वेदमें धर्मको तत्वज्ञानके साधनका हेतु वर्णन किया है इससे धर्मसे स्वर्ग व मोक्ष दोनों सिद्ध होना मानना चाहिए यद्यपि यह अर्थभी ग्रहण किया जासक्ता है क्योंकि पूर्व कथित न होनेपरभी सामान्यसे वेदप्रसिद्ध ईश्वरवाक्य माने जानेसे उस शब्दसे ईश्वरका ग्रहण हो सक्ता है परन्तु पूर्वोक्त धर्म गौरववाचक अर्थ धर्मके पूर्व कथित होने व उस शब्दकेसाथ धर्मका सम्बंधघटित होनेसे विशेष ग्रहणके योग्य है ॥ ३ ॥
अब किनपदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस(मोक्ष)की सिद्धि होती है उनको वर्णन करते हैं

धर्मविशेषप्रसूताद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥ ४ ॥

साधर्म्य व वैधर्म्यद्वारा धर्मविशेषसे उत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म सामान्यविशेष समवाय पदार्थोंके तत्वज्ञानसे मोक्ष होता है ॥ ४ ॥

*तत्त्वज्ञान (यथार्थरूप ज्ञान) मनुष्यको यथायोग्य धर्मानुष्ठान करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होनेसे होता है इस जन्ममें धर्म आचरण करनेसे व जन्मान्तरके धर्मके संस्कारसे तत्त्वज्ञान होता है इससे तत्त्वज्ञानका उत्पन्न होना धर्मविशेषसे कहा है धर्मविशेषसे उत्पन्न जो साधर्म्यद्वारा अर्थात् पदार्थोंमें समानधर्म होनेके विचारद्वारा यथा यह विचार करनेसे कि जैसे पृथिवी जड है वैसे जलभी जड है क्योंकि दोनोंमें ज्ञानधर्म नहीं है इससे यह दोनों समान धर्मवाले पदार्थ हैं व वैधर्म्यद्वारा अर्थात् पदार्थोंमें विरुद्ध धर्म होनेके विचारद्वारा (विरुद्ध धर्म होनेका विचार करनेसे) यथा यह विचारनेसे कि पृथिवी पिण्डरूप कठोर है जल पतला वहनेवाला है इससे दोनों परस्पर विरुद्ध धर्मवाले हैं अथवा पृथिवी जल आदिमें यह विचारनेसे कि यह सब ज्ञानरहित जड हैं जीव ज्ञानसंयुक्त होनेसे इनसे विरुद्ध चेतनरूप है द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष समवाय पदार्थोंका तत्त्वज्ञान होता है तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है सब दुःखोंसे रहित होने व पूर्ण उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त होनेको मोक्ष कहते हैं यद्यपि मोक्ष तत्वज्ञानसे होताहै परंतु पदार्थोंका तत्त्वज्ञान साधर्म्य (समान धर्म होने) व वैधर्म्य (विरुद्ध धर्म होने)के विचारद्वारा धर्म विशेषसे उत्पन्न होता है इससे मुख्य आदिकारण धर्मही है धर्महीसे मोक्षभी प्राप्त होता है

क्योंकि धर्मसे अंतःकरण शुद्ध होनेसे तत्त्वज्ञान होता है उसे आत्ममनन (आत्माका विचार व ज्ञान) आत्ममननसे आत्मा साक्षात्कार होता है आत्मा साक्षात्कार होनेसे मिथ्याज्ञान आदिका क्रमसे नाश होनेसे मोक्ष होता है अर्थात मिथ्याज्ञानके नाश होनेसे पापरूप रागद्वेष मोहोंका नाश राग आदिके नाशसे प्रवृत्तिका नाश प्रवृत्तिके नाशसे जन्मका नाश जन्मके नाशसे दुःखका नाश दुःखके नाशसे मोक्ष होता है ॥ ४ ॥ अब उक्तद्रव्य आदि पदार्थोंका पृथक् पृथक् विभाग वर्णन करते हैं

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥ ५ ॥

पृथिवी १, जल २, तेज ३, वायु ४, आकाश ५ काल ६, दिशा ७, आत्मा ८, मन ९ ए द्रव्य हैं॥५॥

पृथिवी आदि मनपर्यंत यह नव द्रव्य हैं इनसे अधिक द्रव्य नहीं हैं इनहींके असंख्यात कार्य हैं व होते हैं नवसे अधिक न होना सूचित करनेको सूत्रमें इतिशब्द कहाहै जो यह शंका हो कि दशमद्रव्य अंधकार है इसको क्यों नहीं वर्णन किया क्योंकि अंधकार नेत्रोंसे देखे जानेसे उसमें रूप

होनेकी प्रतीति होतीहै और जैसे प्रकाश फैलता जाताहै उसी प्रकारसे दीपक आदिके प्रकाशके फैलनेमें अंधकारका हटना वा चलना विदित होताहै इससे उसमें कर्म होनेका प्रत्यक्ष होताहै अंधकारमें रूपगुण व गमनकर्म दोनों होनेसे द्रव्य है जो यह माना जाय कि जे द्रव्य कहे गये हैं उनके अंतर्गत है तो गंध शून्य होनेसे पृथिवी नहीहै नीलरूप होनेसे जल, वायु, तेज नहींहै शब्द शून्य होनेसे आकाश नहीहै रूपवान होनेसे काल, दिशा, आत्मा व मन नहींहै इससे इन सबसे भिन्न दशम द्रव्य है इसका उत्तर यह है कि ऐसा समुझना भ्रम मात्र है केवल तेजका अभाव अंधकार है भिन्न द्रव्य नहींहै रूप प्रतीत होना भ्रम है व कर्मकी प्रतीतिभी तेज फैलनेकी उपाधिरूप भ्रांति है सूत्रमें प्रत्येक शब्द भिन्न विना समासके कहनेसे यह प्रयोजन है कि प्रत्येक द्रव्य पदार्थविना दूसरेके सम्बध अपने कार्यको प्रकट कर सक्ता है नव द्रव्योंमेंसे काल दिशा व आकाशका एकवृत्ति होनेसे जातित्व नहीं होता अर्थात् इनकी जाति नहीं मानी जा सक्ती अन्य द्रव्योंकी जाति होतीहै ॥ ५ ॥

रूपरसगंधस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे

बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ ६ ॥

रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धियां, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष व प्रयत्न आदि गुण हैं ॥ ६ ॥

सूत्रमें चशब्द जो रक्खाहै वह कहे हुए गुणोंसे अधिक गुण होनेका सूचकहै क्योंकि चकार ऐसे स्थानमेंभी रक्खा जाताहै जहां कुछ अधिक कहनेकी अपेक्षा रह जातीहै जैसे इत्यादि शब्द कहनेसे यह समझा जाताहै कि जो कहाहै उससे अन्यभी जो कहनेको शेषहै कहेहुएके साथ ग्रहणके योग्यहै इस सूत्रमें चशब्द(चकार)का अर्थ आदिका ग्रहण किया गयाहै अर्थात् सूत्रकार कुछ गुणोंको वर्णन करके चशब्दसे यह सूचन कर दियाहै कि इसीप्रकार अन्यशेष गुणभी जानना चाहिये अर्थात् चशब्दसे गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द गुणोंको जिनको सूत्रकार आगे सूत्रोंमें स्पष्ट स्वरूप व लक्षणसे वर्णन कियाहै ग्रहण कियाहै६ ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ॥ ७ ॥

उत्क्षेपण (उपरको चेष्टाकरना), अवक्षेपण (नीचेको चेष्टाकरना), आकुंचन (सिकोडना), प्रसारण (पसारना), गमन (चलना), अर्थात् जाना आना लाना आदि कर्महैं ॥ ७ ॥

इनहीके अन्तर्गत घूमना झुकना उठना आदि समझना चाहिए अर्थात् इनहीके अंतर्गत घूमना आदि होजातेहै ॥७॥

सदनित्यं द्रव्यवत्कार्यं कारणं सामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ८

विद्यमान अनित्य द्रव्यवान् (द्रव्यसंयुक्त वा द्रव्यसम्बंधी) कार्य कारणसामान्य व विशेषवान् (सामान्य व विशेषसंबंधी) होना यह द्रव्य, गुण व कर्मोंका अविशेष (सामान्यलक्षण)है ॥ ८ ॥

इतिशब्द जो सूत्रमें कहाहै जिसका अर्थ यह लिखा गयाहै उससे यह अभिप्रायहै कि जे लक्षण सूत्रमें विशेष न होनेके कहेगएहैं उतनेहीमें द्रव्यगुणकर्मोंकी सामान्यताहै अन्यत्र विशेषताहै विद्यमान होने आदिमें समधर्म होने आदिके दृष्टांत पृथक् पृथक् वर्णन किए जातेहैं जैसे द्रव्यके विद्यमान होनेका बोध होताहै कि द्रव्यहै इसीप्रकारसे गुण व कर्मके अस्तित्व अ-

र्थात् विद्यमान होनेका बोध होताहै विद्यमान होनेमात्रके बो-
धमें द्रव्यगुणकर्ममें कुछ विशेषता नहींहै इसीप्रकारसे अनित्य
होने व द्रव्यके साथ नित्यसम्बंध होने व कार्य व कारण होने
व सत्तामात्रसे वा कारणरूपसे अनेक कार्योंमें सामान्यवान्
(जातिमान्) होने व कार्यरूप विशेषधर्मसे विशेषवान् होनेसे
द्रव्यगुणकर्मोंकी साधर्म्य (समानधर्मता) है यद्यपि अनित्यता
व कार्यरूप होना नित्य व कारणरूप द्रव्य व गुणमें नहीं होसका
तथापि कार्यरूप स्थूलरूपसे रूपान्तर सूक्ष्म अदृश्यहोना यही
नाशहोना व अनित्यताहै इससूत्रमें अनित्य कहनेसे कार्यस्थूल-
रूपके अनित्य होनेका प्रयोजनहै कारणरूप परमाणुरूप प-
दार्थ जो नित्यहै उसके अनित्य कहनेका तात्पर्य नहींहै सूत्रके
अभिप्रायसे वर्तमान अवस्थाके विरुद्ध प्रतियोगिभाव (सं
योगकी भिन्नता) होना व नाश (अदृश्य) होना अनित्य
ताहै यथा घटस्वरूपमें जो पृथिवीके अणुओंका संयोगहै उस
वर्तमान संयोगके विभाग वा वियोगसे घटका नाश होताहै
यही घटस्वरूप आदिकार्य द्रव्यका नाश होना द्रव्य व रू
गुण आदिकी अनित्यताहै परमाणुरूप द्रव्य नित्यहै उसका
नाश नहीं होता इससे घटमें जो पृथिवी द्रव्यहै व उसमें जो
रूप आदि गुणहैं किसीका सर्वथा नाश होना न समुझना चा
हिए पृथिवीके परमाणुपुंजका जो घट आकारमें संयोग था
उस आकारसे वियोग होगया यही अवस्थान्तर होना पदा-

र्थके अनित्य होनेका कारणहै पृथिवी जो घटमेंहै वह घट फूटनेपर घट अवयवरूप बनी रहतीहै फिर चूर्ण करनेपर अणुरूप होजायगी परंतु सूक्ष्म अणुरूप बनी रहैंगी उससे अधिक जहांतक दृष्टिमें आसकें सूक्ष्म करनेसे अणु अधिक सूक्ष्म होते जाँयगे परंतु द्रव्यका सर्वथा नाश होना अर्थात् न रहना सिद्ध न होगा जैसे घटफूटनेपर घटपरिमाण आकारमात्रका नाश होताहै इसीप्रकारसे सूक्ष्म होतेजानेसे अवस्थान्तरभेदमात्रहोनेसे अतिसूक्ष्म अणु होनेपरभी द्रव्यका न रहना प्रमाणके योग्य नहीं होता अतिसूक्ष्म अणुके अदृश्य होनेपरभी बुद्धिद्वारा अनुमानसे उसकी सूक्ष्मतामात्र विभागकरनेसे अधिक होती जायगी सर्वथा न रहनेका प्रमाण नहीं होता बहुतसे अदृश्य सूक्ष्म अणुओंका होना अनुमानसे सिद्ध होताहै यथा गंधवान् पदार्थसे अनेक परमाणु वायुद्वारा घ्राण-(नासिका)में प्राप्त हो गंधके बोध होनेके कारण होतेहैं जो वायुद्वारा उक्त अणु घ्राणमें न प्राप्त होवैं तो दूर रक्खे हुये पदार्थके गंधका बोधन होवै उन गंधवान् पदार्थके अणुओंकी सूक्ष्मता ऐसी हैकि अनेकसहस्र निकलजानेपरभी गंधवान् पदार्थके गुरुत्व (गुरुवाई) वा तौलकी न्यूनताका जानना कठिनहै अत्यन्त सूक्ष्म होनेको कि जिससे अधिक सूक्ष्म न होसकै ऐसे सूक्ष्म अणुको परमाणु कहतेहैं सम्पूर्ण पदार्थ जे स्थूलकार्यरूप होतेहैं स्थूलरूपके नाश होनेपर ऐसे परमाणु कारण-

रूपसे नित्य बने रहतेहैं इसप्रकारसे कार्यरूपकी अनित्यताहै द्रव्यगुणकर्मोंका द्रव्यकेसाथ सम्बंध होना अर्थात् द्रव्यका अन्यद्रव्यके साथ सम्बंध होना व गुणकर्मका द्रव्यमें रहनेसे अर्थात् द्रव्यमें आश्रित होनेसे द्रव्यके साथ सम्बंध होना द्रव्यगुणकर्मोंका द्रव्यवान् (द्रव्यसम्बंधी वा द्रव्यसंयुक्त) होनाहै यथा पृथिवीद्रव्यका आकाश जल आदिके साथ वा आकाश जल वायु आदिका एक दूसरेके साथ सम्बंधहै सम्बंधसे कार्यद्रव्यहोने व एक दूसरेका एक दूसरेमें प्राप्त होनेसे द्रव्यका द्रव्यवत्त्व अर्थात् द्रव्यवान् होनाहै गुणकर्मका आश्रय वा आधार द्रव्यहै द्रव्यमे गुणकर्मोंके आश्रित होने अर्थात् रहनेसे द्रव्य व गुण कर्मोंमें आश्रय आश्रयीसम्बंधहै इसप्रकारसे द्रव्यके साथ सम्बंध होनेसे गुणकर्मका द्रव्यवत्त्वहै अर्थात् द्रव्यवान् होनाहै परस्परसम्बंध चाहै विशेष अंशमें हो वा समुदायमें हो पूर्व (पहिले) जिसका अभाव था उसके विशेष अभावरूप प्रकटहोना कार्यत्व (कार्यहोना) है यथा वांससे अग्निका प्रकट होना प्रथम अग्निकी प्रकटताका अभाव था प्रत्यक्षमे भावरहित अग्निका कारणविशेषसे प्रकट होना द्रव्यका कार्यत्व अर्थात् द्रव्यका कार्यरूप होनाहै तथा अतिसुख हुआ पूर्वमें जिसका अभाव था वर्तमानसमयमें कारणविशेषसे सुखसंयोग होना वा सुखप्राप्त होना गुणकार्यत्व (गुणका कार्य होना) है किसीकारणसे देवदत्त अतिशीघ्र (जल्दी) चला

कारणविशेपसे जल्दचलनाकार्य, कर्मकार्यत्व (कार्यहोना)है इसप्रकारसे द्रव्यगुणकर्मकारणभी होतेहै व कार्यभी होतेहैं स्पष्टकारण व कार्य दोनों होनेका उदाहरण यहहै कि पृथिवी अपने कारणरूप परमाणु स्वरूपकी अपेक्षा स्थूलरूपसे वर्तमान कार्यरूपहै व घट कार्यमें पृथिवी कारणरूपहै पृथिवीही द्रव्यअवस्थान्तरभेदसे कारण व कार्य दोनों स्वरूपसे ज्ञातहोतीहै इसीप्रकारसे जलआदिमें जानलेना चाहिए तथा ज्ञानहोनेसे सुख होताहै ज्ञानसे सुख होनेमें ज्ञानगुण सुखगुणका कारण व सुखगुणकार्यरूप होताहै कर्मसंयोग व विभागका कारण होताहै व वायुवेगके कारणसे वृक्षका गिरना व इच्छाविशेपसे स्थानान्तरमें जाना कर्मकार्यरूप होताहै इसप्रकारसे गुण व कर्म कारण व कार्य दोनों होतेहैं कारणद्रव्य व गुण व कर्म अपने सत्तारूपसे अपने कार्यरूपोंमें सामान्यसे विद्यमान होतेहैं इससे द्रव्य, गुण व कर्म सामान्यवान् (सामान्य सम्बंधी)हैं व अपने कार्यरूपमें यथा पृथिवी द्रव्य घट पटआदिमें रूप गुण नील पीत होनेआदिमें कर्म आकुंचन गमन आदिमें विशेपता संयुक्तकहेजानेसे द्रव्य गुण कर्म विशेपवान् होतेहैं इसप्रकारसे समधर्म होनेसे द्रव्य गुण कर्मोंका साधर्म्य (समानधर्महोना)है इनसबका विशेप वर्णन आगे सूत्रोंमें पृथक् पृथक् कियाहै उससे यथार्थ निश्चय होजायगा ॥ ८ ॥

द्रव्यगुणयोः सजातीयारंभकत्वं साधर्म्यम् ॥ ९ ॥

सजातीयपदार्थका आरंभकहोना द्रव्य व गुणका साधर्म्य है ॥ ९ ॥

द्रव्य व गुण अपने सजातीय पदार्थके आरंभक (उत्पन्न कर्ता) होतेहैं इससे दोनोंका एकही समान धर्म है पृथिवीके परमाणु प्रथम द्व्यणुक (दो अणुपरिमाणसंयुक्त) द्रव्यको उत्पन्न करतेहैं व पीत, शुक्ल, नीलरूप आदि जे रूप परमाणुमें हैं वह वही नील, पीत, शुक्ल आदिरूपक त्र्यणुकआदि (दो अणुसंयुक्त और उससे अधिक अणुयुक्त) पदार्थोंमें आरंभक होतेहैं प्रत्यक्ष सजातीय आरंभक होनेका दृष्टांत यह है जैसे पृथिवी अपनेसमान धर्मवान् घटकार्यको उत्पन्न करतीहै अर्थात् जैसे जडत्वधर्म वा गुण पृथिवीमें है वैसाही घटकार्यमें जडत्व धर्मकी आरंभक होतीहै जैसा रूप पृथिवीमें होताहै वही रूप कार्यरूप घटमें प्रकट होताहै अर्थात् पृथिवी द्रव्य अपनेसमानरूपका अपने कार्यमें आरंभक होताहै इसीप्रकारसे जल आदिकारणसे हैम (बरफ) आदिकार्यमें समुझनाचाहिए सजातीय आरंभक होनेसे द्रव्य व गुणका साधर्म्य है परन्तु यह धर्म सावयव द्रव्य पृथिवी, जल, अग्नि मात्रमें कहनेका प्रयोजन है नित्य निरवयव द्रव्यमें नहीहै अ-

र्थात् आकाश, काल, आत्मा आदिमें कार्य आरंभकत्व (कार्यका आरंभक होना) धर्म नहीहै ॥ ९ ॥

द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम् ॥ १० ॥

कई द्रव्य मिलके एक अन्य द्रव्यके आरंभक (उत्पादक) होतेहैं व कई गुण एक अन्यगुणके आरंभक होतेहैं ॥ १० ॥

अनेक परमाणु द्रव्य मिलके एक स्थूल कार्यरूप पट व घट आदि द्रव्यके तथा उन परमाणुओंके गुण स्थूल पट घट आदिके गुणके उत्पन्न होनेके कारण होतेहैं अर्थात् जो पूर्वसूत्रमें वर्णन कियाहै उसीको इस सूत्रमें स्पष्ट किया है इससे सुगम है अथवा यथा पृथिवी जल चक्र दण्ड कई द्रव्य मिलकर घट द्रव्यके उत्पन्न होनेके कारण होते हैं नील व पीत रंग मिलके हरित रंग (रूप) गुण उत्पन्न होनेके कारण होते हैं इसप्रकारसे अनेक द्रव्योंसे द्रव्य व अनेक गुणोंसे गुण विशेषका होना जानना चाहिए ॥ १० ॥

कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते ॥ ११ ॥

कर्म कर्मसे साध्य नही होता ॥ ११ ॥

इस सूत्रका आशय यह है कि जिस प्रकारसे द्रव्य व गुण अपने सजातीयसे साध्य (सिद्ध करनेयोग्य) होतेहैं अर्थात् सजातीयसे उत्पन्न होतेहैं इसप्रकारसे कर्मसेकर्मसाध्य नहीं होता अर्थात् कर्मसे कर्म उत्पन्न नहीं होता जो कर्मसे उत्पन्न कर्म माना जावै तो प्रथम कर्म उत्पन्न होकर अन्यकर्मको उत्पन्न करैगा जैसे शब्द उत्पन्न होकर अन्यशब्दको उत्पन्न करता है अर्थात् अन्यशब्दकी उत्पत्तिका कारण होताहै अब यह विचारना चाहिए कि जब पूर्वही (पहिलाही) कर्म संयोगी द्रव्योंसे विभागको उत्पन्न किया वा विभागका कारण हुवा फिर दूसरा कर्म किससे विभागको उत्पन्न करैगा क्योंकि विभाग संयोगपूर्वक होता है अन्य संयोग उसी द्रव्यमें जिससे पूर्व कर्मने विभाग उत्पन्न किया है नहीं है कि उत्तर कर्म विभागको उत्पन्न वा प्रकट करै विभाग उत्पन्न न करनेसे कर्मके लक्षणका अभाव होताहै क्योंकि कर्म वह है जो संयोग विभागका कारण होताहै जैसा कि कर्मका लक्षण आगे वर्णन किया गयाहै न पूर्वकर्म द्वितीयवार (प्रथम विभाग होजाने व संयोगके अभावसे) विभागकी उत्पत्तिका कारण हो सक्ताहै कि उत्तर (पीछेवाले) कर्मका साधक हो इससे कर्मसे कर्म साध्य नहीं होता अर्थात् कर्मका साधक (सिद्ध करनेवाला या उत्पन्न करनेवाला) कर्म नहीं होता इसी प्रकारसे एक-

घात संयोग आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) होकर फिर कर्मके अन्य संयोगके आरंभक व द्वितीय कर्मके आरंभक वा कारण न होनेमें समझना चाहिये ॥ ११ ॥

न द्रव्यं कार्यं कारणं च वधति ॥ १२ ॥

द्रव्यको न कार्य नाश करताहै न कारण नाश करताहै ॥ १२ ॥

दो द्रव्योंका जिनमें कार्य कारण सम्बंध है वध्य व घातक सम्बंध नहीं होता अर्थात् एक नाश करनेवाला हो व दूसरा उससे नाशको प्राप्त हो ऐसा नहीं होता द्रव्यका नाश केवल आश्रय (आधार)के नाश व आरंभक संयोगके नाशसे होताहै यथा पृथिवी द्रव्यको न उसके कारण परमाणु नाश करतेहैं न कार्य घट आदि नाश करतेहैं आरंभक संयोगहीके नाशसे द्रव्यका नाश होताहै जो आश्रयके नाशसे नाश होना लिखा है यह अन्य भाष्यकारके मतअनुसार लिखाहै परन्तु आश्रयरूप कोई पदार्थ द्रव्यसे भिन्न न होनेसे द्रव्यके नाशसे द्रव्यका नाश होना कहनेके समान होगा ऐसा कहना युक्त नहीं है कारण द्रव्यको आश्रय मानैं तो कारणका नाश नहीं होता आश्रयद्रव्यके नाशसे केवल कार्यगुणोंका नाश होताहै द्रव्यके नाश होनेमें आरंभक संयोगहीका नाश कारण मानना युक्त है ॥ १२ ॥

उभयथा गुणाः ॥ १३ ॥

दोनों प्रकारसे (दोनोंतरहसे) गुण ॥ १३ ॥

गुण दोनों प्रकारसे अर्थात् कार्यसे व कारणसे दोनोंसे नाशको प्राप्त होतेहैं पूर्वोक्त द्रव्यको कार्य व कारण नाश नहीं करते उसके विरुद्ध गुणको दोनोंसे नाश होताहै यथा आद्य (पहिले हुए) शब्दादिकोंका कार्यसे (जो शब्द उनके उत्तर अर्थात् पीछे होताहै उससे) नाश होताहै व अंतका कारणसे इसका आशय यह है कि वाक्यमें वर्ण व वर्णात्मक शब्दका सम्बंध होताहै ध्वन्यात्मक शब्द कारण व वर्णात्मक कार्यरूप होताहै अर्थात् आदिमें वर्णरहित शब्दमात्र कारणरूप है उससे कार्यस्वरूप अक्षरसंयुक्त शब्दोंका उच्चार होताहै वर्णोंके उच्चारणमेंभी ध्वनिके पश्चात् मुखसे अक्षररूप शब्द निकलतेहैं इससे वर्णकार्य व ध्वनि या शब्द मात्र कारणहै वाक्यमें कार्यरूप शब्दोंके उच्चारणमें जब एक शब्दके पश्चात् दूसरेका उच्चारण किया जाताहै तब पूर्वशब्दका नाश होजाताहै इसी प्रकारसे जबतक शब्द कहे जातेहैं तबतक उत्तरवाले कार्यशब्दोंसे पूर्ववाले शब्दोंका नाश होते जाताहै अंतशब्दका जिससे वर्णका उच्चारण बन्द होताहै जब कारणरूप ध्वनिमात्र रहगई व वहभी शांत होगई तब अंतमें कार्यशब्दका नाश होताहै अर्थात् कारणसे नाश

होताहै इसप्रकारसे गुणका कार्य व कारण दोनोंसे नाश होताहै परन्तु कारणरूप शब्द नित्य है उसका नाश नहीं होता व कारणमें कार्यरूप होनेकी शक्ति धर्मका सत्ता रहताहै जब शब्द प्रकट नहीं होता तबभी आकाश द्रव्यमें आश्रित रहताहै कारणविशेषसे व विषयसम्बंधसे प्रत्यक्ष होताहै ॥ १३ ॥

कार्यविरोधि कर्म ॥ १४ ॥

कार्यही है नाशक जिसका ऐसा कर्म है अर्थात् कर्म अपने कार्यहीसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥

कर्मका कार्यही कर्मका नाशक होनेसे अभिप्राय यह है कि संयोग कर्मका कार्य है अंत या उत्तर संयोगरूप कार्यसे कर्मका नाश होजाताहै अर्थात् जिस देश व स्थानके निमित्त कर्म होताहै उसके संयोग होनेरूप पहुँचनेसे कर्मका नाश होजाताहै इससे कर्म कार्यविरोधी है ॥ १४ ॥

क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥ १५ ॥

क्रिया व गुणवाला हो व समवायिकारण हो यह द्रव्यका लक्षण है ॥ १५ ॥

द्रव्यमें क्रिया व गुण वा केवल गुण अवश्य रहतेहैं इ-
ससे सामान्यसे क्रिया व गुणवाला होना कहाहै नित्यस-
म्बंध जिस कारणमें हो उसको समवायकारण कहतेहैं संयो-
गसें उत्पन्न जो कार्य द्रव्य व गुण होतेहैं उनकार्योंके उत्पन्न
होनेके लिये संयुक्त होने अर्थात् मिलनेके धर्म वा स्वभाव
संयुक्त कार्यसे पूर्व (पहिले) नित्य कारण द्रव्य स्थित
रहताहै इससे द्रव्य समवायिकारण है जो क्रिया व गुण वा
केवल गुणवाला हो व समवायिकारण हो वह द्रव्य है अ-
र्थात् क्रिया व गुणसहित होना व समवायिकारण होना
द्रव्यका लक्षण नामद्रव्यके पहिचानका चिन्ह है क्रिया व
गुण उसमें होनेसे यह जाना जाताहै कि यह द्रव्य पदार्थ
है क्योंकि गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय अन्यपदार्थोंमें
क्रिया वा गुण नहीं होता इससे अन्य पदार्थोंसे द्रव्यको
पृथक् लक्षित होनेके लिये क्रिया गुणवाला हो यह लक्षण
कहा है द्रव्योंमेंसे कोई द्रव्य क्रिया व गुणवाले हैं यथा पृ-
थिवी जल तेज वायु मन व कोई द्रव्य क्रियारहित केवल
गुणवालेहैं यथा आकाश काल दिशा व आत्मा ॥ १५ ॥

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्व-
कारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ १६ ॥

द्रव्यमें रहनेवाला हो गुणरहित हो संयोग व

विभागोंमें कारण नहो व अपेक्षारहितहो अर्थात् संयोग व विभागकी अपेक्षा न करै अथवा एक दूसरेकी (दूसरे गुणकी) अपेक्षा न करै यह गुणका लक्षण है ॥ १६ ॥

द्रव्यमें रहनेवाला हो यह जो गुणका लक्षण कहा है इससे गुणका विशेष ज्ञान नहीं होता द्रव्यभी द्रव्यके आश्रित होताहै अर्थात् द्रव्यमें रहताहै यथा जल पृथिवीमें इत्यादि, विशेष भेद जनानेके लिये गुणरहित हो यह कहाहै क्योंकि द्रव्य गुणरहित नहीं होता इससे द्रव्यसें गुण पृथक विदित होता है परंतु इतना कहनेपरभी गुणका यथार्थ बोध नही होसक्ता कर्मभी द्रव्यमे आश्रित व गुणरहित होताहै इस अतिव्याप्तिदोषनिवारण व कर्म व गुणमें भेद प्रतीत होनेके लिये संयोग विभागमें कारण न हो यह विशेषण कहाहै अर्थात् कर्म संयोग व वियोगमें कारण होताहै गुण नहीं होता यह विशेषता है ॥ १६ ॥

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्ष्यकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥ १७ ॥

एकही द्रव्य जिसका आश्रय (आधार) हो अर्थात् एकही द्रव्यमें प्रवृत्त हो गुणरहित हो संयोग

विभागोंमें अपेक्षारहित कारण हो अर्थात् साधारणही संयोग विभागोंका विशेष कारण हो यह कर्मका लक्षण है ॥ १७ ॥

जैसे संयुक्तद्रव्य व संयोग आदि गुण अनेकद्रव्यमें आश्रित होतेहैं इस प्रकारसे कर्म नहीं होता कर्मका आश्रय एकही द्रव्य होताहै अर्थात् एकहीमें प्रवर्त होताहै यह विशेषता है गुण संयोग विभागमें कारण नहीं होता कर्म दोनोंमें कारण होताहै यह दोनोंमें भेद है ॥ १७ ॥

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥ १८ ॥

द्रव्य द्रव्यगुणकर्मोंका सामान्यकारण है ॥ १८ ॥

एकही समवायिकारणरूप द्रव्यमें द्रव्य, गुण, कर्म, तीनों वर्तमान होतेहैं उससे कार्यरूप द्रव्य गुण कर्म प्रकट होतेहैं कार्य द्रव्य गुण कर्मोंका जो कारण द्रव्य है वह सामान्य है अर्थात् द्रव्य गुण व कर्म तीनोंका कारण होनेसे द्रव्यमें तीनोंके एकही समान कारण होनेकी समताहै इससे कारण द्रव्य सामान्य कारण वा सामान्य द्रव्य है ॥ १८ ॥

तथा गुणाः ॥ १९ ॥

तेही कमारसे गुण हैं ॥ १९ ॥

द्रव्यके समान कार्यरूप द्रव्य, गुण, कर्मोंके कारण गुण सामान्य कारण हैं यद्यपि द्रव्यके समान गुणोंकोभी द्रव्य, गुण, व कर्म तीनोंका सामान्य कारण होना कहाहै परन्तु द्रव्यके कारण होने व गुणके कारण होनेमें कुछ भेद है वह यह है कि द्रव्य समवायिकारण (नित्यसम्बंधसे तीनोंका कारण) है व गुण असमवायिकारण (नित्यकारण होनेका सम्बंधरहित कारण है यथा कार्य द्रव्योंका संयोग असमवायिकारण है क्योंकि कभी किसी कालमें कारण विशेषसे होताहै वा होना संभवहै नित्य नहीं होता न नित्य रहताहै जब द्रव्योंका संयोग होताहै तब संयोग गुण संयोग होनेसे जो द्रव्य उत्पन्न होताहै उसका कारण होताहै कार्य गुण, रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या परिमाण पृथक्त्व आदिकोंका सजातीय कारण गुण असमवायिकारण है बुद्धि आदि आत्माके गुणोंका मनसंयोग असमवायिकारण है अग्निसंयोग पारा आदिमें कर्म उत्पन्न करने तथा सुवर्ण आदि धातुओंके द्रवत्व (पिघलने) व उनके वह चलने वा फैलने कर्मका असमवायिकारण है प्रारब्ध संस्कार गुणसे आत्माके साथ उत्तम वा निकृष्ट पदार्थका संयोग होना असमवायिकारण है इसी प्रकारसे औरभी आपसे विचारकर समझलेना चाहिये कहीं एकही गुण द्रव्य गुण कर्म तीनोंका आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) हो-

ताहै इसी प्रकारसे अन्यत्र कर्मके कार्य व द्रव्य उत्पत्तिमें समझना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ २३ ॥

द्रव्य (कार्यद्रव्य) द्रव्योंका (कारण द्रव्योंका) सामान्य कार्य है ॥ २३ ॥

बहुत कारण द्रव्योंसे एक कार्यद्रव्य होता है यथा बहुत तन्तुओंसे एकपट कार्यद्रव्य होता है क्योंकि एक तंतुमें संयोग न होनेसे पटकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती संयोग अनेकमें होताहै इससे संयोगजन्य (संयोगसे उत्पन्न होने योग्य) द्रव्य विना अनेकके नहीं हो सकता कारणद्रव्योंसे उत्पन्न जो कार्यद्रव्यहै वह अपने कार्यपनसे (कार्यभावसे) सब कारणोंमें सामान्य कार्य है ॥ २३ ॥

गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म ॥ २४ ॥

गुणके वैधर्म्य (विरुद्धधर्म) होनेसे कर्मोंका कार्य कर्म नहींहोता ॥ २४ ॥

जैसे द्रव्य गुण द्रव्य गुणोंके कार्य होतेहैं व द्रव्य गुण कारण होतेहं अर्थात् अपने सजातीयके आरंभक (उत्पादक) होतेहैं द्रव्योंका कार्य द्रव्य व गुणोंका कार्य गुण होताहै इसप्रकारसे कर्मोंका कार्य कर्म नहीं होता पूर्वही क-

र्मके कारण होनेका निषेध "कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते" इस सूत्रमें कियाहै यहाँ फिर स्पष्ट होनेके अर्थ कार्य वर्णनमें कार्य होनेका निषेध किया है अर्थात् कर्मोंमें परस्पर कारण व कार्य सम्बंध नहीं होता ॥ २४ ॥

द्वित्वप्रभृतयः संख्याः पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ॥ २५ ॥

दो होना आदि संख्या पृथक्त्व संयोग व विभागभी अनेक द्रव्योंके कार्य हैं ॥ २५ ॥

दो आदि संख्या अर्थात् दो वा दोसे अधिक संख्याओंका होना पृथक्त्व संयोग व विभाग ये गुण अनेक द्रव्योंसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् एक द्रव्यमें इनका व्यवहार नहीं होता अनेककी अपेक्षा रखते हैं ॥ २५ ॥

असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते ॥ २६ ॥

अनेकमें सम्बंध न होनेसे कर्म सामान्यकार्य नहीं होता ॥ २६ ॥

अनेक शब्द यद्यपि सूत्रमें नहीं है तथापि समवायशब्द जो सम्बंधवाचक है उसके होनेसे अनेकका ग्रहण होताहै

क्योंकि सम्बंध अनेकहीमें होताहै कर्म सामान्यकार्य नहीं होता न होनेमें हेतु यह है कि वह दो वा अधिक द्रव्यमें आश्रित नहीं होता एकहीमें होताहै प्रत्येक द्रव्यमें भिन्न कर्म होताहै यह अनुभवसेभी सिद्ध है ॥ २६ ॥

संयोगानां द्रव्यम् ॥ २७ ॥

संयोगोंका कार्य द्रव्य है ॥ २७ ॥

संयोगोंका कार्य द्रव्य होताहै यथा अनेक तन्तुओंके संयोगसे एकपट द्रव्यकार्य होताहै परंतु स्पर्शरहित द्रव्य (आकाशादि) अन्त्य अवयवी व विजातीय द्रव्योंके जो संयोग हैं उनको छोडके द्रव्योंके संयोग कार्यके आरंभक होतेहैं यह जानना चाहिये ॥ २७ ॥

रूपाणां रूपम् ॥ २८ ॥

रूपोंका (रूपोंका कार्य) रूप है ॥ २८ ॥

अनेक परमाणुओंके रूप गुणकारणोंसे कार्यद्रव्यमें एक महत्परिमाण कार्यरूप प्रत्यक्ष होताहै यहाँ रूपशब्दसे केवल रूपही गुणको न ग्रहण करना चाहिये उपलक्षणमात्रके लिये रूपको कहाहै इसी प्रकारसे अन्य गुणोंमें जानलेना चाहिए अर्थात् रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, द्रवत्व, एकत्व, एकोंकी पृथकता, परिमाण, वेग, स्थितिस्थापक, गुरुत्व आदिभी अनेक कारण गुणोंसे द्रव्यमें एक कार्यगुणरूपसे होते हैं ॥ २८ ॥

गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ॥ २९ ॥

गुरुत्व प्रयत्न व संयोगोंका कार्य उत्क्षेपण है ॥२९॥

जब कोई प्राणी गुरु (गरू) द्रव्यको उठाता वा धारण करता है तब गुरुद्रव्य (भारीवस्तु) का संयोग होनेसे गरू होनेका बोध होताहै उसको न संभालने योग्य व धारण करनेसे अपनेमें क्लेशबोधकर गरूके कारणसे उसके फेंकनेका प्रयत्न या इच्छा करता है और उसको फेंकता है इस प्रकासे गुरुत्व (गरुआई) संयोग व प्रयत्न कारणोंसे उत्क्षेपण (फेंकना) कर्म कार्य होता है यहाँ उत्क्षेपणशब्दका अर्थ ऊपर फेंकनेमात्रका ग्रहणके योग्य नहीं है उत्क्षेपणशब्द उपलक्षणके लिये कहाहै इसीप्रकारसे अवक्षेपण आदिको समझना चाहिये ॥ २९ ॥

संयोगविभागाश्च कर्मणाम् ॥ ३० ॥

संयोग विभाग आदि कर्मोंके कार्य हैं ॥ ३० ॥

यद्यपि आदिशब्द सूत्रमें नहींहै परन्तु चकारका अर्थ आदि अनुवादमें रखदिया है क्योंकि जहां कहेहुयेसे अधिक समान पदार्थ कहनेकी अपेक्षा रहती है वहां आदि शब्द कहा जाताहै व च शब्दभी इसी अर्थका सूचक कहीं रखते हैं इससूत्रमें चशब्द संयोगविभागसे अधिक जे कर्मके कार्य

है उनका सूचक है अर्थात् संयोगविभाग वेग व लचकना आदि अवान्तर भेद कर्मके कार्य समझना चाहिये संयोग व विभागको मुख्य समझकर स्पष्ट वर्णन किया है शेपको नहीं कहा सूचितमात्र करदिया है ॥ ३० ॥

कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणा कर्माकरणमुक्तम् ॥ ३१ ॥

कारणसामान्यमें (सामान्यकारणवर्णनके प्रकरणमें) द्रव्य व कर्मोंका कारण कर्म नहीं होता यह कहागया है ॥ ३१ ॥

इस सूत्रका भाव यह है कि सामान्यकारण वर्णन करनेके प्रकरणमें द्रव्य व कर्ममें कर्मके कारण होनेका निषेध किया गया है सर्वथा कारण होनेका निषेध नहीं है क्योंकि जिन संयोगविभागोंका कारण होना पूर्वसूत्रमें कहा गया है वह गुण हैं इससे उनके वा अन्य गुणके कारण होनेका निषेध न समझना चाहिये द्रव्य व कर्ममात्रके कारण होनेका निषेध है यद्यपि ऐसा अर्थ सूत्रोपस्कार नामक टीकामें लिखा है परन्तु इसमें यह शंका होती है कि जब पूर्वसूत्रमें स्पष्ट लिखदिया है कि संयोगविभाग कर्मोंके कार्य हैं तब इस कहनेहींसे सर्वथा कारण न होनेका संशय नहीं हो सकता न उसके निर्णयकी आवश्यकता है इससे दूसरा

अर्थ यह ग्रहणके योग्य हो सकता है कि सामान्यकारणवर्णनमें द्रव्य व कर्मका कर्म कारण नहीं होता यह कहागया है अर्थात् विशेषभावसे द्रव्यकर्मोंका कारण होनाभी कर्मका अंगीकार हो सक्ता है परंतु सामान्यभावसे पूर्वोक्त अनुसार कारण नहीं होता विशेषभावसे सर्वथा निषेध न करनेका आशय यह है कि संयोगका कारण कर्म है व संयोग द्रव्यकी उत्पत्तिका कारण है तो यद्यपि पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्यके उत्पन्न होनेके समयमें कर्मका अभावभी हो व संयोगही मात्रका कर्मकारण हो तथापि यह मानकर कि जो कर्मसे संयोग न होवै तो द्रव्यका उत्पन्न होना असंभव है आदि कारण कर्म होनेसे कर्मका कारण होना मानने योग्य है इस विशेषभावसे कर्म द्रव्यकाभी कारण हो सकता है व इसीप्रकारसे कर्मकाभी कारण कर्म माना जासक्ता है यथा घोडोंका गमन कर्म रथके कर्मका कारण होताहै यद्यपि साधारण वा सामान्यभावसे घोडेका कर्म घोडेमें रहताहै व रथका रथमें प्रवृत्त होता है कर्म एक एकमें पृथक् पृथक् रहता है इससे कारणकार्यसम्बंध नहीं हो सकता विना संयोगके घोडेका कर्म रथके कर्मका कारण नहीं हो सकता संयोगही मुख्य कारण है व संयोगहीको कारण मानना चाहिए परंतु इस भावसे कि घोडे नहे या जुतेहुए खडे रहैं वा खडे रक्खे जावें तो संयोग मात्र रथमें कर्म उ-

स्त्र न करैगा घोडा वा अन्य चेतनहीका कर्म संयोगद्वारा कर्मका कारण होगा इससे विशेपभाव व अवस्थामें कारणके कारण होनेसे कर्म द्रव्य व कर्मकाभी कारण माना जासकता है ॥ ३१ ॥

इति श्रीप्रभुदयालुनिर्मिते वैशेषिकदर्शने देशभाषाकृतभाष्ये प्रथमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ॥

कारणाभावात् कार्याभावः ॥ १ ॥

कारणके अभावसे कार्यका अभाव होता है ॥१॥

पूर्व आह्निकमें कारण कार्यको साधारण वर्णन किया है परंतु कारण कार्यमें क्या सम्बंध है व कारण कार्य होनेमें क्या प्रमाण है यह नहीं वर्णन किया इसको अब इस आन्हिकमें वर्णन करते हैं प्रथम कारण व कार्यका सम्बंध ज्ञात (विदित) होनेके लिये यह कहा है कि कारणके अभावसे कार्यका अभाव होताहै अर्थात् कारण व कार्यका सम्बंध इससे जाना जाता है कि जो कारणका अभाव होताहै तो कार्यका अभाव होताहै विना कारणके कार्य नहीं होसकता जैसे जल पृथिवीके संयोग होनेपर भी वीज जो अंकुरका कारण है

उसके न होनेसे अंकुर उत्पन्न नहीं होता जो कारण व कार्यसम्बंध न हो तो जैसे बीजके अभावसे अंकुर नहीं होता इसीप्रकार कंकरके अभावसे अंकुर उत्पन्न न हो तथा मृत्तिका कुह्मार जल होनेपर भी जैसे विना दण्ड जिससे घट बनाया जाता है घट वन नहीं सकता ऐसेही विना वेम (कपडा विन्नेका हथियार) के घट न बनै व विना बीजके अंकुर व विना दण्डके घट उत्पन्न होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता बीजके भाव (होने)से अंकुर व दण्डके भावसे घट उत्पन्न होताहै व बीजके अभावसे अंकुर व दण्डके अभावसे घट उत्पन्न नहीं होता इससे कारण व कार्यका सम्बंध होना सिद्ध होताहै यद्यपि कभी कार्य होते हैं कभी नहीं होते इससे कारणके नहोनेका प्रमाण नहीं होता क्योंकि कार्य चहै जब हों और चहै जब नहों परंतु जब होतेहैं तब अकस्मात् अर्थात् विनाकारण नहीं होते कारण विशेषहीसे होतेहैं इससे कार्यके होनेमें कारणकी आवश्यकता है कारण, कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले कार्य उत्पन्न करनेके धर्मसहित विद्यमान रहताहै जो आकाशके पुष्पके समान नहीं है वह कारण नहीं होसकता अर्थात् अभावसे भाव नहीं होता जो कारण व कार्यका अभाव मानाजावै तो प्रवृत्ति व निवृत्तिका भी होना असंभव होजावै व सब जगत् चेष्टारहित होजावै क्योंकि जो अपना मनोरथ वा इष्ट है विना उ-

ष्टके साधनताके ज्ञान प्रवृत्ति नहीं होती और न विना अ निष्ट (जिसमें द्वेष हो) साधनताके ज्ञान निवृत्ति होतीहै प्रवृत्ति कार्यरूपका कारण इष्टसाधनताका ज्ञान (जिसके द्वारा मनोरथ सिद्ध हो उसका ज्ञान) है और निवृत्ति का र्यरूपका कारण अनिष्ट साधनताका ज्ञान (इससे दुःख होगा ऐसा होनेका ज्ञान) है इससे कारणके भावसे कार्यका भाव व कारणके अभावसे कार्यका अभाव सिद्ध होताहै ॥१॥

नतु कार्याभावात् कारणाभावः ॥ २ ॥

कार्यके अभावसे कारणका अभाव नहीं होता॥२॥

कारणके अभावसे कार्यके अभाव होनेके समान कार्यके अभावसे कारणका भी अभाव होताहोगा यह संशय निवारणके लिये यह कहाहै कि कार्यके अभावसे कारणका अभाव नहीं होता अर्थात् कारणके अधीन कार्य है क्योंकि विना कारणके नहीं होसकता कारणकार्यके अधीन नहीं है कि कार्यके अभावसे कारणका अभाव होजावे कारणके अभावसे जो कार्यके अभावका निश्चय है इसीसे मुमुक्षुओंकी (मोक्ष चहनेवालोंकी) मिथ्याज्ञान नाशके लिये तत्त्वज्ञान व आत्मासाक्षात्कार होने व मोक्षलाभ होनेके प्रयत्नमें प्रवृत्ति होती है क्योंकि मिथ्या ज्ञानही राग द्वेष मोहरूप दोषोंका कारण है उसके नाश होनेसे कार्यरूप दोषोंका

नाश होताहै तथा दोषोंके नाशसे उनके कार्यरूप प्रवृत्तिका नाश प्रवृत्तिके नाशसे उसके कार्यरूप जन्मका नाश जन्मके नाशसे उसके कार्य दुःखका नाश दुःखके नाशसे मोक्ष होताहै विद्यार्थिओंको यथार्थ बोध होनेके लिये यहाँ अभावके विषयमें सूत्रके अभिप्रायसे अधिक वर्णन किया जाता है कि अभाव जो इससूत्रमें कहाहै इसको कणादमहर्षिने जिस सूत्रमें पदार्थोंको कहाहै उसमें नहीं कहा प्रथम आन्हिकके चतुर्थसूत्रमें द्रव्य आदि छह पदार्थ वर्णन किया है परंतु आधुनिक ग्रंथ तर्कसंग्रह भाषापरिच्छेद मुक्तावली आदिमें महर्षिसूत्रकार जो पूर्वआन्हिकके चतुर्थसूत्रमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, छहपदार्थ वर्णन किया है उससे अधिक एक सातवाँ अभावपदार्थ लिखा है इस लिखनेसे उक्त ग्रंथोंमें कुछ विशेषता न समझना चाहिये किन्तु उन ग्रंथकर्ताओंका भ्रममात्र समझना उचित है क्योंकि उन्होने सातही वर्णन कियाहै महात्मा महर्षिसूत्रकार यद्यपि उक्तसूत्रमें षट्पदार्थकी गणना की है परंतु व्याख्यानविशेषमें षट्पदार्थसे भिन्न भाव तथा अभाव दोनोंको पृथक् पृथक् वर्णन कियाहै इससे सातसे अधिक आठपदार्थका वर्णन कियाजाना सिद्ध होताहै परंतु षट्पदार्थही मुख्य व विशेष इससे माना है कि साधर्म्य वैधर्म्य लक्षण जिसके विचारद्वारा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होतीहै वह इनहीं छहपदा-

थोंमें हो सकताहै भाव वा अभावमें साधर्म्य वैधर्म्य दोनों धर्म नहीं होसकते क्योंकि यह अनेकमें होतेहैं व अनेकहीमें विचार व निर्णयका सम्बंध है भाव अथवा अभाव तत्त्वरूपसे एकही एक एकता धर्मविशिष्टपदार्थ हैं इनमें एकमें भी निर्णयकी आवश्यकता नहीं है व यह इन्ही छहपदार्थोंमें अनेक प्रकारसे कहनेके योग्य होतेहैं व साधर्म्य वैधर्म्यका वर्णन जो सूत्रमें किया है साधर्म्य वैधर्म्यके कहनेहीसे भाव व अभावको षट्पदार्थके साथ सूचित करदिया है क्योंकि साधर्म्यभावसूचक व साधर्म्यके अभाववाचक होनेसे वैधर्म्य अभावसूचक है भाव छहूपदार्थमें पदार्थके सत्तारूप व अनेक पदार्थोंमे साधर्म्य स्वरूपसे होताहै व वैधर्म्य लक्ष्यसे नहीं भी होता तथा अभाव भी जिसदेश जिसपदार्थमें जिसका सत्ता (विद्यमानता) नहीं है अन्यकी अपेक्षा जिसमें जहाँ सत्ताहै सबमें होताहै व सत्ता व साधर्म्यकी लक्षसे किसीमें नहीं होता इसप्रकारसे यह दोनों षट्पदार्थसे भिन्न विशेष लक्ष्यभावसे सबमें होतेहैं व सबमें नहीं भी होते इससे इनको षट्पदार्थसे विलक्षण समझकर इनका विशेष वर्णन पृथक् कियाहै यहाँ अभी पूर्वसूत्र व इस सूत्रमें अभावका नाम मात्र कहाहै विशेषभाव व अभावको आगे ग्रंथमें महात्मा सूत्रकारने वर्णन किया है जिन ग्रंथकारोंने अभावसहित सात पदार्थ माना हैं उनको आठवाँ भाव भी

मानना उचित था क्योंकि अभावकी अपेक्षा भावका मानना अधिक आवश्यक व मुख्य है मुख्यताका हेतु यह है कि भावही अभावके ज्ञानका हेतु होता है प्रथम जब भावका ज्ञान होताहै तब उसके नहोनेमें अभावका ज्ञान होसक्ता है जो कोई ऐसा कहे कि षट्पदार्थ भावही रूप हैं इन्हीं षट्-पदार्थके अन्तर्गत भावको मानलेंगे इससे अभावही मात्र अधिक कहना व मानना योग्य है तो ऐसे कहनेवालेको भ्रम है क्योंकि भाव षट्पदार्थमेंसे किसीके अंतर्गत नहीं होसक्ता जैसा कि आगे शास्त्रकार महर्षिने वर्णन किया है कि भाव द्रव्य नहीं है क्योंकि भाव गुण व कर्ममें होता है द्रव्य गुण कर्ममें नहीं होता द्रव्यमें गुण कर्म होते हैं द्रव्य भावकी अपेक्षा अपर सामान्य है भाव अपने शुद्धरूपसें कभी अपरसामान्य नहीं होता परसामान्यरूप है। कर्म नहीं है क्योंकि कर्म कर्म व गुणमें नहीं होता भाव दोनोंमें होता है। गुण नहीं है क्योंकि गुण गुण व कर्ममें नहीं होता भाव दोनोंमें होता है। सामान्य व विशेष नहीं है क्योंकि सामान्य व विशेषका ज्ञान बुद्धिकी अपेक्षासे होताहै अर्थात् अधिक देशमें व्यक्तिओंकी व्यापकतासे सामान्य व अल्पदेश व्यापकता बुद्धिसे विशेषका ज्ञान होता है भावमात्रका शुद्धज्ञान न्यून व अधिक देशकी व्यापकताके ज्ञान होनेका सम्बंध वा आवश्यकता नहीं रखता। समवाय नहीं है क्योंकि

समवायमें कार्यकारणका सम्बंध रहता है भावमात्रके ज्ञानमें कार्यकारण सम्बंध नहीं है इससे षट्पदार्थोंके लक्षणसे पृथक् होनेसे उसके अन्तर्गत नहीं होसकता उनसे पृथक् है यह अभावका व्याख्यान जिस सूत्रमें छहपदार्थको कहा है उसीके व्याख्यानमें वर्णन करना उत्तम था परंतु वहाँ रह गया इससे यहाँ लिखागया ॥ २ ॥

सामान्यं विशेष इति बुद्धयपेक्षम् ॥३॥

सामान्य व विशेष दोनों बुद्धिकी अपेक्षासे सिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

द्रव्य, गुण, व कर्मके लक्षण कहनेके पश्चात् अब क्रमअनुसार सामान्य व विशेषका लक्षण कहतेहैं जिससे अनुवृत्ति बुद्धि अर्थात् अधिक देशों वा बहु व्यक्तिओंमें समान वृत्ति होनेका ज्ञान होता है वह सामान्य है व जिस भेदधर्मक पदार्थसे व्यावृत्तिबुद्धि अर्थात् अल्प देश वा एकमें भेद होनेका ज्ञान होता है वह विशेष है सामान्य दो प्रकारका होता है एक पर दूसरा अपर जो दूसरे (अपर सामान्य) की अपेक्षा अधिकदेशमें जानाजाता है उसको पर और जो अधिक देशवालेकी अपेक्षा अल्पदेशमें ज्ञात होता है उसको अपर कहते हैं व पर सामान्यकी अपेक्षा अपरको विशेष भी कहते हैं व जो अपरसे भी और अल्पदेशमें होता है उसको

अपेक्षा अपर भी पर सामान्यवाच्य होता है यथा सत्ता (भाव) सब सामान्योंकी अपेक्षा अधिक देशमें होनेसे पर सामान्य है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट सामान्य है द्रव्यत्व व गुणत्व आदि जाति (सामान्य) सत्ताकी अपेक्षा न्यून देशमें होनेसे अपर सामान्य हैं तथा अधिक देशमें वर्तमान होनेसे घट शराव आदिकी अपेक्षा जो उससे अल्पदेशवाले हैं पर सामान्य हैं व घट आदि पृथिवीके कार्यरूप जातिविशेषके पदार्थ अपर हैं पररूप सामन्य व अपररूप सामान्य जिसको परकी अपेक्षा भेदबुद्धिकी विशेषता होनेसे विशेष भी कहते हैं कोई नियत नहीं हैं बुद्धिके अधीन हैं क्योंकि बुद्धिहीसे न्यून व अधिक सम्बंध विचारपूर्वक नियत वा स्थापित किये जाते हैं क्योंकि जो अपर हैं वही अपनेसे न्यूनकी अपेक्षासे पर होता है और जो पर है वह अपनेसे अधिककी अपेक्षासे अपर कहा जाताहै जब जैसा बुद्धिसे एक दूसरेके सम्बंधका विचार किया जाता है व मानाजाताहै तब वैसा पर व अपरका भेद होता है परंतु जो अतिपर है वह अपर नहीं होता यथा सत्ता सबजातियों (सामान्यों)से पर है अर्थात् सबसे अधिक देशवाला है इससे किसीकी अपेक्षासे अपर नहीं होता ॥ ३ ॥

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव ४

अनुवृत्तिही मात्रके हेतु होनेसे भाव सामान्यही है ४

अनुवृत्तिही मात्रके हेतु होनेसे अर्थात् अधिक देशमें स-मान होनेके ज्ञान होने मात्रका हेतु होनेसे भाव सामान्यही होता है अर्थात् भाव अल्पदेशमें भेद वा भिन्नता ज्ञान हो-नेका हेतु (कारण) नहीं होता कि जिससे उसमें विशेषता मानी जाय भाव (होना) मात्रका ज्ञान सर्वत्र एकही प्र-कारका होताहै इससे भाव विशेष नहीं होता सामान्यही होता है इस कहनेसे यह सिद्ध हुवा कि भाव (सत्ता) पर सामान्य है अपर सामान्य नहीं है क्योंकि अपरसामान्य वह है जो किसीकी अपेक्षा सामान्य व किसीकी अपेक्षा विशेष होताहै अर्थात् सामान्य विशेष दोनों होता है जैसे द्रव्यत्व आदि सामान्य विशेष दोनों होते हैं द्रव्यत्व आदिको आगे सूत्रमें वर्णन करते है ॥ ४ ॥

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वं च सामन्यवि-शेषाश्च ॥ ५ ॥

द्रव्यत्व (द्रव्यपन) गुणत्व (गुणपन) कर्मत्व (कर्मपन) सामन्य व विशेष होतेहैं ॥ ५ ॥

द्रव्यत्व (द्रव्यपन) द्रव्यमात्रके भावसे अर्थात् क्रिया व गुणवाला व समवायिकारण होना इस पूर्वोक्त द्रव्यके लक्षणसे पृथिवी आदि सब द्रव्योंमें समानधर्मसे विद्यमान होनेसे सामान्य है व पृथिवीत्व जलत्व आदि द्रव्यविशेषोंमें

विशेषरूप है तथा एक विशेषद्रव्यके अनेक कार्य द्रव्य विशेषरूपोंमें यथा पृथिवीके कार्य घट शराव (दिया वा सरवा) आदिकोंमें विशेषद्रव्यरूपसे होता है इसी प्रकारसें गुणत्व पूर्वोक्त (पूर्वही वर्णन कियागया) गुणके लक्षणसे गुणमात्रके भावसे सब गुणोंमें समानधर्मसे व्यापक वा विद्यमान होनेसे सामान्य है व रूप आदि विशेपता युक्त गुणोंमें व उनके कार्योंमें रूपत्व आदि भेदसे विशेष है तथा कर्मत्व (कर्मपन) पूर्वोक्त कर्मके लक्षणसें कर्मभावसे उत्क्षेपण आदि सब कर्मोंमें समान धर्मसे व्यापक होनेसे सामान्य है व उत्क्षेपण, अवक्षेपण, संकोचन, प्रसारण, गमन, आदि विशेपोंमें विशेष है ॥ ५ ॥

अन्यत्रान्तेभ्यो विशेषेभ्यः ॥ ६ ॥

अन्तमें रहनेवाले विशेषोंसे भिन्नमें (सामान्य व विशेषका कथन है) ॥ ६ ॥

इसका आशय यह है कि पूर्वसूत्रमें जो द्रव्य गुण कर्मोंके समान्य व विशेष होनेका वर्णन किया गया है वह केवल कार्यरूप अनित्य द्रव्य आदिकोंमें समझना चाहिये कार्य रूप पदार्थोंके नाश होनेके पश्चात् अंतमें कारणरूप पृथिवी आदि विशेषद्रव्य द्रव्यभावसे परमाणुरूप रहते हैं उनमे कोई सामान्यका व्यवहार घटित न होनेसे वह विशेषही हैं उन

विशेषोंसे भिन्न जे द्रव्य व गुण कर्म है उनमें सामान्य व विशेषका होना कहनेका तात्पर्य है ॥ ६ ॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥७॥

है यह वोधद्रव्य गुण व कर्मोंमें जिससे होता है वह सत्ता है ॥ ७ ॥

यह पृथिवी है यह वस्तुलाभ है इत्यादि द्रव्यगुण व कर्मोंमें जो हैं होनेका वोध है यह जिससे होता है वह सत्ता है ॥ ७ ॥

द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ॥ ८ ॥

द्रव्यगुणकर्मोंसे सत्ता भिन्नपदार्थ है ॥ ८ ॥

सत्ता द्रव्यगुण व कर्मसे भिन्न है ऐसा विदित नही होता क्योंकि जिससे जो पदार्थ भिन्न होता है उससे वह पृथक् (अलग) जान परता है सत्ता द्रव्य गुण व कर्मसे पृथक् विदित नही होता इस संशय निवारणके लिये यह जो कहा है कि द्रव्य गुण व कर्मोंसे सत्ता भिन्नपदार्थ है इसके पुष्ट होनेके लिये अर्थात् द्रव्यआदिकोंमे सत्ताके भिन्न होनेके प्रमाणमें आगे सूत्रोंमें हेतु वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

गुणकर्मसु भावान्न कर्म न गुणः ॥ ९ ॥

गुण व कर्मोंमें होनेसे न कर्म है न गुण है ॥९॥

गुण गुणमें नहीं होता सत्ता (भाव) गुणमें होता है इससे गुण नहीं है तथा कर्म कर्ममें नहीं होता सत्ता कर्ममें होता है इससे कर्म नहीं है गुणमें गुण न होने व कर्ममें कर्म न होनेका वर्णन पूर्वही किया गया है गुण व कर्ममें होनेसे केवल गुण व कर्महीसे सत्ताका भिन्न होना सिद्ध नहीं होता किंतु इसी हेतुसे द्रव्यसे भिन्न होना सिद्ध हो सक्ता है क्योंकि द्रव्य गुण व कर्ममें नहीं होता गुण कर्म द्रव्यमें होते हैं यह दूसरीबात है द्रव्यके गुण व कर्ममें न होनेसे व सत्ताके होनेसे द्रव्यसे भी सत्ता पृथक है ॥ ९ ॥

सामान्यविशेषाभावे न च ॥ १० ॥

सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे) भी १०

दूसरा हेतु यह है कि द्रव्य गुण व कर्मोंमें सामान्य व विशेषका भाव है अर्थात् सामान्य व विशेष होते हैं सत्तामें सामान्य व विशेषका अभाव है अर्थात् सत्ता सामान्य व विशेष नहीं होता इससे द्रव्य गुण व कर्मोंसे भिन्न है जो यह संशय हो कि पूर्वही सत्ताको सामान्यमात्र वर्णन किया है व विशेष होनेका निषेध किया है अब यहाँ सामान्य व विशेष दोनों होनेका निषेध करते हैं तो पूर्वापर विरोध होता है इसका उत्तर यह है कि पूर्वही द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वके विशेष होनेकी अपेक्षासे सामान्य कहा है क्योंकि

विना विशेष सामान्यका बोध व विना सामान्यके विशेषका बोध होना संभव नहीं है परंतु सत्तामात्रके शुद्धज्ञानमें विशेषकी अपेक्षा होनेकी आवश्यकता नहीं है विशेषके सम्बंध न होनेमें सामान्य भी नहीं कहा जासक्ता इससे सत्तामात्रके शुद्धज्ञानमें सामान्य व विशेषका अभाव है ॥ १० ॥

अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम्॥११॥

अनेक द्रव्यवाला होनेसे द्रव्यत्व (द्रव्यका भाव) कहागया अर्थात् द्रव्यका भाव भिन्न कहागया समझना चाहिये ॥ ११ ॥

जैसे पूर्वसूत्रोंमें केवल सत्ता (भाव) पदार्थ द्रव्य गुण कर्मोंसे भिन्न कहागयाहै इसीतरह अनेक द्रव्यवाला या अनेक द्रव्योंका सम्बंधी होनेसे व नित्य होनेसे द्रव्यका भाव भी द्रव्य गुण कर्मोंसे भिन्न है अर्थात् अनेक द्रव्योंमें नित्य सम्बंधके साथ विद्यमान होनेसे द्रव्यत्व (द्रव्यपन) सामान्यही है क्योंकि जो द्रव्यत्व विशेष (विशेषद्रव्यात्मक) माना जावै तो एक द्रव्यका भाव दूसरेमें न होना चाहिये अनेकके अनेक भाव होनाचाहिये अर्थात् जैसे एक द्रव्यकी दूसरेसे पृथक्ता होतीहै ऐसेही द्रव्यसे भिन्न न होनेमें भावकी होना चाहिये परंतु भाव एकही रूपसे अर्थात् द्रव्यत्व लक्षणसे सब द्रव्योंमें नित्य रहता है इससे भाव द्रव्यसे

भिन्न है द्रव्य नित्य व अनित्य दोनों रूपसे होता है भाव नित्य है द्रव्यके नाश होनेपरभी बुद्धिस्थ रहता है इससे द्रव्यत्व (द्रव्यका भाव अर्थात् द्रव्यपन) द्रव्यसे तथा गुण व कर्मसे भिन्न है ॥ ११ ॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १२ ॥

सामान्य विशेषके अभावसे (न होनेसे)भी ॥१२

जैसे पूर्वसूत्रमें अनेक द्रव्यसम्बंधी होनेसे द्रव्यत्व (द्रव्यका भाव) द्रव्य गुण व कर्मसे भिन्न है यह कहा गया है इसीप्रकारसे सामान्य व विशेषके अभाव होनेके हेतुसे-भी द्रव्यसे तथा गुण व कर्मसे द्रव्यत्व भिन्न है क्योंकि पूर्वोक्त प्रकारसे द्रव्य गुण व कर्म सामान्य व विशेष दोनों होते हैं द्रव्यत्व (द्रव्यका भावमात्र) सामान्य व विशेष नहीं होता यह भेद है जो द्रव्यत्व (द्रव्यका भाव) द्रव्यात्मक (द्रव्यरूप) होता तो उसमें (द्रव्यत्वजातिमें) पृथीत्व जलत्व तेजस्त्व आदि अर्थात् पृथिवीपन आदि तथा गुणत्व कर्मत्व (गुणपन कर्मपन) सामान्य व विशेष रूपसे होते परंतु द्रव्यत्व जातिमात्रके ज्ञानमें ऐसा होना सिद्ध नहीं होता इससे पृथिवीत्व आदिके अभावसे द्रव्यत्व द्रव्यात्मक नहीं है जब पृथिवी आदि द्रव्योंमें द्रव्यात्मक नहीं है तो उनकेसमान सामान्य विशेष होनाभी न

मानना चाहिए इससे सामान्य विशेषके व्यवहारसे रहित द्रव्यत्व जातिमात्र द्रव्यआदिकोंसे पृथक् है ॥ १२॥

तथा गुणेषु भावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

तेही प्रकारसे गुणोंमें होनेसे गुणत्व (गुणपन) कहागया अर्थात् द्रव्यत्वके समानगुणत्वको कहा-गया समुझना चाहिये ॥ १३ ॥

जैसे द्रव्यका भाव द्रव्य गुण व कर्मोंसे भिन्न कहागया है उसीप्रकारसे गुणत्व (गुणभावजाति) गुणोंमें होनेसे गुण, द्रव्य व कर्मसे भिन्न समुझना चाहिये क्योंकि द्रव्य गुण व कर्म गुणमें नहीं होते गुणत्व गुणमें होता है इससे द्रव्य-आदिसे पृथक् है ॥ १३ ॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १४ ॥

सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे)भी १४

सामान्य व विशेषके न होनेसेभी गुणत्व (गुणत्वजाति) द्रव्य गुण व कर्मसे भिन्न है क्योंकि द्रव्य गुण व कर्म सामान्य व विशेप होतेहैं गुणका भावमात्र जातिरूप सामान्य व वि-शेष नहीं होता अर्थात् सामान्यमात्र होनेसे विशेषताके अ-भावसे सामान्यभी नहीं कहाजासकता क्योंकि विशेषकी अपेक्षासे सामान्यशब्दवाच्य होता है शुद्धगुणके भावमात्रके

ज्ञानमें सामान्य व विशेष होनेका व्यवहार नहीं हो सकता इससे गुणत्वमें सामान्य व विशेषका अभाव है सामान्य व विशेष न होनेसे द्रव्य आदिसे पृथक् है ॥ १४ ॥

कर्मसु भावात् कर्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥

कर्मोंमें होनेसे कर्मत्व (कर्मकाभाव) कहागया अर्थात् भावमात्रकेसमान कर्मत्व द्रव्य गुण कर्मोंसे भिन्न कहागया समुझना चाहिये ॥ १५ ॥

जैसे सत्ता (भाव) वा द्रव्यत्व गुणत्वका द्रव्यआदिसे पृथक् होना कहागया है इसीप्रकारसे कर्मोंमें होनेसे कर्मत्व (कर्मपन अर्थात् कर्मभावजाति) को समुझना चाहिये क्योंकि द्रव्य गुण व कर्म, कर्ममें नहीं होते कर्मत्व कर्मोंमें होताहै इससे द्रव्यआदिकोंसे भिन्न है ॥ १५ ॥

सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १६ ॥

सामान्य व विशेष न होनेसेभी ॥ १६ ॥

जैसे पूर्वही इस सूत्रका वर्णन कियागया है उसी प्रकारसे यहाँ समुझलेना चाहिये ॥ १६ ॥

सदिति लिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः ॥१७॥

है यह ज्ञान जो भावका लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण)
है इसके विशेष न होनेसे अर्थात् सामान्यमात्र हो-
नेसे व विशेष (भेद)के लिंग (अनुमान)के अ-
भावसे भाव एक है ॥ १७ ॥

है यह ज्ञान या शब्द जो भावका लिङ्ग है सब द्रव्य आदि पदार्थोंमें एकही प्रकारसे समानरूपसे विशेपतारहित होताहै इससे द्रव्य गुण कर्मोंमें भाव एकही है जो भाव एक न होवै तौ जितनी द्रव्य आदिकोंकी व्यक्तियाँ हों उतनेही भावकी व्यक्तियाँ होंगी ऐसा माननेमें या तो सत्ताको न रहना चाहिये अथवा द्रव्य आदिकोंको न रहना चाहिये प्रत्येकद्रव्य आदि व्यक्तियोंकेसाथ एक एक सत्ता (भाव)की व्यक्तिका होना प्रमाणसे सिद्धभी नही होता व द्रव्य आदिके नाश होनेपरभी सत्ता रहता है इससे एकही भाव द्रव्य आदिकोंमें सामान्यरूपसे विद्यमान द्रव्य आदिकोंसे भिन्न है व सत्तामें अनेक व्यक्ति न माननेका यहभी हेतु है कि अनेक व्यक्तियाँ सावयवपदार्थमें होसक्ती हैं सत्ता ऐसा नहीं है इससे एकही रूपसे सब द्रव्य आदिमें विद्यमान है विशेप (भेद) होनेके अनुमानकाभी कोई हेतु नहींहै विशेपके अनुमानके अभावसे भाव एकही है अर्थात् जैसे दीपमें आकाररूप परिमाण विशेप भेद होनेसे यह ज्ञान होताहै कि यह दीप है वा यह वही दीप है ऐसा विशेप लिङ्ग भावमें

नहीं है जिसमें विशेष लिंग होताहै वह अनेक होता है ऐसे विशेषलिंग (चिह्न) नहोनेसे भावके अनेक होनेका अनुमानभी नहीं होसकता इससे एकही है ॥ १७ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि श्रीमत्प्यारे लालात्मज प्रभुदयालुविरचिते प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकं समाप्तश्चायं प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयाध्यायप्रारंभः ॥

रूपरसगंधस्पर्शवती पृथिवी ॥ १ ॥

रूप, रस, गंध, स्पर्शवाली, पृथिवी है अर्थात् रूप रस गंध स्पर्श गुणसहित वा गुणवाली पृथिवी है ॥ १ ॥

रूप रस गंध स्पर्श ये गुण पृथिवीके हैं यथा नील पीत आदि अनेक प्रकारके रूप (रंग) पृथिवीमें होतेहै कटु कषाय आम्ल लवण आदि रस पृथिवीमें होते हैं दो प्रकारका गंध सुगंध व दुर्गंध भेदसे पृथिवीहीमें होताहै पृथिवीमें जो स्पर्श होताहै वह न उष्ण (गरम) होता है न शीत (ठंढा) होता है कठोर वा कोमल होता है पृथिवीके

अनेक प्रकारके पदार्थोंमें नील, पीत, शुक्ल आदिरूप कटु मधुर आदि रस एक एक जातिके बहुत पदार्थ प्रत्यक्ष देखनेमें आतेहैं शीत उष्ण स्पर्श पृथिवीमें नहीं होता और जो होताहै तो अग्नि जल आदि अन्य द्रव्योंके योगसे होताहै गंध केवल पृथिवीहीमें होनेसे अन्यद्रव्योंमें न होनेसे रूप रस स्पर्शकी अपेक्षा पृथिवीका विशेष गुण है (शंका) पाषाणभी पृथिवीहीका कार्य है उसमें गंध व रसका होना विदित नहीं होता (उत्तर) यद्यपि पाषाण (पत्थर)में साधारण गंध व रसका होना ज्ञात नहीं होता परंतु जब पाषाण अग्निसे भस्म करदिया जाताहै तब उसमें गंध व जिह्वामें रखने वा अन्यतांबूल आदिके साथमें खानेसें एक प्रकारके रसका बोध होताहै अब यह जानना चाहिये कि भस्म होनेमें पाषाणहीके अणु सूक्ष्मरूप होकर वायुद्वारा घ्राण (नासिका)में जाकर अपने गंध गुणके बोधके कारण होते हैं इससे पाषाणमें गंध है परन्तु स्थूल पाषाणमें सूक्ष्मरूपसे रहनेसे व विना सूक्ष्म अणुरूप हुये उसके अणु नासिकामें न आसकनेसे नासिकाकेसाथ संयोग न होनेसें पाषाणमें गंधका बोध नहीं होता जो अग्नि संयोग होनेसे कोई गंध होनेका हेतु मानाजाय तो अग्निसंयोगसे भस्म होनेहीसे नहीं किन्तु अन्य उपायसे पाषाण वा कंकरको अति चूर्ण करनेसे उसमें गंधका बोध होताहै इससे पत्थर कंकरमेंभी गंध है १

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः

रूप, रस, स्पर्शसहित, वहनेवाला स्निग्ध (चिकना) जल है ॥ २ ॥

रूप जलका शुक्ल है जो यह शंका हो कि यमुनाजल नील होता है तो उत्तर यह है कि यमुनाजलमें नीलता आश्रयकी उपाधिसे है अर्थात् स्थानकी उपाधिसे अथवा गंभीरताकी उपाधिसे है क्योंकि वही (यमुनाका जल) जब हाथमें लेकर बुंद बुंद गिराया जाता है अथवा उपरको आकाशमें फेंका जाता है तब शुक्लही रूप देखपरता है इससे जलका रूप शुक्लही है जलके खारे होने व मीठे होनेके बोधसे जलमें रसका होना पाया जाता है शीतस्पर्श जलमें स्वाभाविक होता है परंतु अग्नि सूर्यके तेजके संयोगसे उपाधिवश उष्ण (गरम) होजाता है वहना जलका स्वाभाविक सिद्ध गुण है परंतु कारणविशेषसे बरफ ओलारूप हो पिण्डरूप होजाता है तथापि स्वभाव उसका वहनेहीका है क्योंकि जो शीतकी अधिकतासे बरफ् वा ओलारूप पिण्ड बंध जाताहै वह थोरेही गरमीके पानेसे फिर वहचलताहै जलमें भेदा करने वा मिलानेकाभी गुण है यथा पिसान मृत्तिका व धूलिके अणुओंको मिलाके पिण्डरूप होनेका कारण होता है रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व (वहना) स्निग्धता (चिकनाई वा मिलानेकी शक्ति)यह जलके गुण हैं ॥ २ ॥

तेजो रूपस्पर्शवत् ॥ ३ ॥

तेज, रूप व स्पर्शवाला है अर्थात् रूप स्पर्श गुणवाला या रूप स्पर्शगुण सहित है ॥ ३ ॥

प्रकाश वा दीप्तिमयरूप व स्पर्शगुण जिसमें हो वह तेज है तेजमें उष्ण (गरम) स्पर्श होता है परंतु चंद्रमा व हीरा तथा अन्य मणिमें तेज होता है उष्णस्पर्श नहीं होता इससे तेजमें उष्णही स्पर्श होना विदित नही होता इसका समाधान यह है कि चन्द्रमाके किरणोंमेंभी उष्ण स्पर्श है परंतु उनमें जो जलस्पर्श वा जलका संयोग है उस जलके स्पर्शकी अधिकतासे उष्णस्पर्श ज्ञात (मालूम) नहीं होता इसी प्रकारसे मणि वा जवाहिर मुकुर आदिमें पृथिवीके परमाणु अधिक होनेसे पृथिवी स्पर्शकी अधिकतासे न्यून तेज अंशके स्पर्शका बोध नहीं होता तेज चारप्रकारका होताहै एक जिसमें रूप व स्पर्श दोनो उद्भूत (अधिक प्रगट) होतेहैं यथा सूर्य व अग्निका तेज, दूसरा जिसमें रूप उद्भूत होताहै स्पर्श नहीं होता यथा चन्द्रमा आदिका तेज, तीसरा जिसमें रूप उद्भूत नहीं होता स्पर्शहीमात्र होताहै यथा ग्रीष्मऋतु व भुंजनेके कपाल आदिमें प्राप्त तेज चौथा जिसमें रूप व स्पर्श दोनो उद्भूत नहीं होते यथा नेत्रोंका तेज यह चारभेद आधुनिक टीकाकारोंने वर्णन किया है श्रीप्रशस्तपाद भाष्यकार भौम दिव्य औदर्य आकरजनेतक चार प्रकारके भेद

वर्णन किया है जो तेज काष्ठ इंधन भूमिके द्रव्योंसे उत्पन्न वा प्रकट हो ऊपरके जलनेका स्वभाववाला है उसको भौम कहते हैं यह पकाने व स्वेद (पसीना वाफ)के निकालनेमें समर्थ होता है विना इंधन सूर्य विजुली आदिका तेज दिव्य कहाजाता है जो खायेहुये आहारको पचाता व रस आदि परिणामको करताहै वह औदर्य व सुवर्ण आदिमें जो तेज होताहै वह आकरज कहा जाताहै ॥ ३ ॥

स्पर्शवान् वायुः ॥ ४ ॥

स्पर्शवान् (स्पर्शगुणवाला) वा स्पर्शगुणसंयुक्त, वायु है ॥ ४ ॥

वायुमें स्पर्श शीत व उष्णस्पर्शसे विजातीय है अर्थात् वायुमें जो स्पर्श है वह न शीत है न उष्ण (गरम) है वायुमें जो शीतल गरम स्पर्श ज्ञात होता है वह तेज या जलकी शीतलताके संयोग होनेसे होता है वायुमें जो स्पर्शगुण है वह विना शीतल व गरम होनेके त्वक् इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है अर्थात् स्पर्शका प्रत्यक्ष त्वक् (चमडा) इन्द्रियद्वारा होताहै ॥ ४ ॥

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ ५ ॥

वह आकाशमें नहीं होते ॥ ५ ॥

वह (कहे हुये) रूप रस गंध स्पर्श जो पृथिवी जल तेज वायुके गुण कहेगये हैं आकाशमें नहीं होते जो यह शंका होकि आकाशभी कहीं शुक्ल कहीं नील देख परता है तो यह जानना चाहिये कि शुक्लता आकाशमें सूर्यके किरणोंके प्रकाश कारणसे व नीलिमा दृष्टिभ्रांतिसे देख परती है जहां दृष्टि नहीं पहुंचती वहां अंधकार देख परताहै आकाशमें दृष्टिभ्रांति व सूर्य चंद्रके प्रकाससे व पृथिवी जलके परमाणु जो आकाशमें वायुमें आश्रित रहतेहैं उनके हेतु व योगसे नीलिमा या अन्यरूपकी भ्रांति नहीं होती है जैसे निकट आकाशमें कोई रूप नहीं देख परता इसी प्रकारसे दूरमेंभी नहीं होसक्ता ॥ ५ ॥

सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ॥ ६ ॥

सर्पि (घी) जतु (लाख) मधूच्छिष्टों(मोमों)का अग्निके संयोगसे वहना जलकेसाथ सामान्य है अर्थात् वहना इनमें व जलमें एकही समान है ॥६॥

यद्यपि वहना गुण घी लाख मोम आदिमें जलकेसमान है परंतु भेद यह है कि घी आदिमें अग्निसंयोगकारण विशेपसे द्रवत्व (वहना) होताहै स्वाभाविक कारणकी अपेक्षारहित नही है जलमें नित्य सिद्धस्वाभाविक है ॥ ६ ॥

त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद्द्रवत्वमद्भिःसामान्यम् ॥ ७ ॥

टीन, सीस, लोह, रजत (चांदी) सुवर्णोंका अग्निके संयोगसे बहना जलके साथ सामान्य (समानधर्म होना) है ॥ ७ ॥

इसीप्रकारसे कांसा तांवा पीतर पारा आदिमे समझना चाहिये पूर्वसूत्रकेसमान इसकाभी व्याख्यान जानना चाहिये ॥ ७ ॥

विषाणी ककुद्मान् प्रान्तवालधिः सास्नावान् इति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम् ॥ ८ ॥

विषाणी (सींगवाला अर्थात् जिसके सींग हों) ककुद्मान् (कौहानवाला अर्थात् जिसके कौहान हो) प्रांतवालधिः (अंतमे जिसके वाल हों ऐसी पूंछवाला) सास्नावान् (गलेमें जिसके कांवर हो) ऐसा होना गौहोनेमें दृष्टलिङ्ग (प्रत्यक्ष चिह्न) है ॥ ८ ॥

सींग, कौहान, अंतमे जिसके वाल हो ऐसी पूंछ वा गलेमें कम्बल वा काँवरसहित होना गौहोनेका दृष्ट (प्रत्यक्षसे विदित वा सिद्ध) चिन्ह है ॥ ८ ॥

इससूत्रके कहनेके प्रयोजनका सम्बंध अगले सूत्रकेसाथ है जिसमें यह वर्णन कियाहै कि स्पर्शभी वायुका जिसका तात्पर्य यह है. कि जैसे सींग आदिका होना गौहोनेका दृष्टलिङ्ग है ऐसेही स्पर्श वायुका लिङ्ग (लक्षण) है यदि यह शंका हो कि सींग भैंसेकेभी होते हैं तो यह समझना चाहिये कि यहां विशेष सींगसे अभिप्राय है जैसे सींग गौ (बैल वा गाय)में होतेहैं वैसे भैंस वा भैंसामें नहीं होते विशेप अर्थ कहांसे लियागया इसका उत्तर यह है कि दृष्टशब्दसे विशेष अर्थका ग्रहण है केवल सींगहीमें नहीं सब चिन्होंमें जो विशेपता गौमें भैंसे आदिसे हो ग्रहण होसक्ता है क्योंकि दृष्ट होनेसे विशेष भेद प्रत्यक्ष देखपरता है कोहान वा डिला गलकम्बल (कांवर) भैंसेमे नहीं होते इसी प्रकारसे पूंछमें लंबाई आदिके भेदसे गौ व भैंसकी पूंछमें भेद होताहै इसप्रकारसे जैसे इन चिन्होंका होना गौका लक्षण है इसीतरह स्पर्श वायुका लक्षण है यह अगले सूत्रमें जनाया है यह दृष्टांत वायुमें इस अभिप्रायसे दियाहै कि जो पदार्थ दृष्ट (देखाहुवा) है अर्थात् जो इन्द्रियग्राह्य दृश्य होनेसे प्रत्यक्षसे विदित होता है उसमें अधिक प्रमाणकी अपेक्षा नहीं होती वायु अदृश्य पदार्थ है अदृश्य पदार्थ लिङ्ग (लक्षण) व अनुमानहीद्वारा जानाजाताहै इससे दृष्टांतसे यह सूचित किया है कि जैसे सींग आदि दृ-

द्दलिंगोंसे दृश्यपदार्थ गौका ज्ञान होताहै इसीप्रकारसे त्वच (चमडा) द्वारा स्पर्शका बोध होनेसे स्पर्शलिङ्ग (चिन्ह) से स्पर्श गुणवाले अदृश्य वायु पदार्थका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥

स्पर्शश्च वायोः ॥ ९ ॥

स्पर्शभी वायुका ॥ ९ ॥

सूत्रमें लिङ्ग है इतना और कहना अपेक्षित है लिंगशब्दकी पूर्वसूत्रसे अनुवृत्ति होतीहै क्रिया इसमें शेष है इसका आक्षेप करनेसे सूत्रका पूरा वाक्यार्थ यह होताहै, "स्पर्श भी लिंग है वायुका" तात्पर्य इसका यह है कि जैसे विषाणी होना आदि गौ होनेका लिङ्ग (लक्षण) है इसीप्रकारसे स्पर्शभी वायुका लिंग है लिंग होनेमें साधर्म्य होनेसे स्पर्शके साथभी शब्दको कहाहै इस सूत्रके भावका विशेष वर्णन पूर्वही सूत्रमें करदियागयाहै इससे अधिक व्याख्यानकी आवश्यकता नहींहै ॥ ९ ॥

न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गो वायुः ॥ १० ॥

और दृष्टपदार्थोंका लिङ्ग स्पर्श नहींहै इससे वायु

* पूर्वोक्तविषाणित्वादिगोत्वे लिङ्गवत् स्पर्शश्च लिङ्गमस्ति कस्य लिङ्गं वायोरर्थात् विषाणित्वादिगोत्वस्य वा गोलिङ्गवतस्पर्शश्च वायोर्लिङ्गमस्तीति सूत्रस्य भावार्थ । सूत्रका वाक्यार्थ संस्कृतमेंभी संस्कृत जानने वालोंके लिये लिखदिया है ॥

अदृष्टलिङ्ग (अदृष्टलिङ्गवाला) है अर्थात् ऐसा है जिसका लिङ्ग स्पर्श अदृष्ट है ॥ १० ॥

पृथिवी जल व तेज इन दृष्ट (देखेगये वा प्रत्यक्ष) पदार्थोंका गुण वा लिंग स्पर्श नहीं है क्योंकि यह रूपवान् दृश्य पदार्थ हैं व रूपकेसाथ स्पर्शका एकान्तिक सहचार नहीं है विना रूपके स्पर्श गुणका बोधगत होनेसे व रूपके साथ सहचार न होनेसे रूपवान् दृष्टपदार्थोंसे भिन्न कोई द्रव्यपदार्थ जिसमें स्पर्श गुण आश्रित है अवश्य है यह अनुमान किया जाताहै वही अदृष्ट लिंग स्पर्शसे जाननेके योग्य स्पर्शका आश्रय (अधिकरण) पदार्थ वायु है यह सूत्रका अभिप्राय है ॥ १० ॥

अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् ॥ ११ ॥

द्रव्यवान् न होनेसे अर्थात् किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे द्रव्य है ॥ ११ ॥

गुण कर्मविना द्रव्यके आश्रय नहीं रहसकते वायु किसी द्रव्यमें आश्रित नहींहै इससे द्रव्य है गुणकर्म नहीं है ॥११॥

क्रियावत्त्वाद्गुणवत्त्वाच्च ॥ १२ ॥

क्रियावान् व गुणवान् होनेसेभी ॥ १२ ॥

वायुमें चलना मेघ आदिकोंको प्रेरण धारण आदि क·

रना शरीरके भीतर रस मल धातुओंका प्रेरण आदि करना यह क्रिया है स्पर्शगुण है क्रियावान् व गुणवान् होनेसेभी वायु द्रव्य है यह सिद्ध होताहै क्योंकि क्रिया व गुणद्रव्यहीमें होते हैं अथवा परमाणुरूप वायुमें द्व्यणुक आदि कार्यरूप होनेमें आरंभक संयोग व उसके (संयोगके) अनुकूल क्रियाहै इससेभी वायुका क्रियावान् व गुणवान् होना कहा जासक्ता है परंतु प्रथम जो कहा गया है वह साधारण ग्रहणके योग्य होनेसे उत्तम व विशेष स्वीकार करनेके योग्य है ॥ १२ ॥

अद्रव्यवत्त्वे न नित्यत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

द्रव्यवान् न होनेसे अर्थात् किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य होना (वायुका नित्य होना) कहा गयाहै ॥ १३ ॥

परमाणुलक्षण वा परमाणुरूप वायुका किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे वायुका नित्यत्व (नित्य होना) कहागया है वायुके वर्णनका सम्बंध पूर्वसे चलाआता है इससे वायुशब्दका ग्रहण होताहै अर्थात् पूर्वसे वायुशब्दकी अनुवृत्ति होतीहै व परमाणुलक्षण इतना कहना सूत्रमें शेष (बाकी) है अभिप्रायसे ग्रहण किया जाताहै सूत्रका भाव यह है कि परमाणुरूप वायु किसी द्रव्यमें आश्रित नहींहै इससें नित्य

है क्योंकि द्रव्य अपने समवायिकारण या असमवायिकारणके नाश होनेसे नष्ट होताहै परमाणुलक्षण वायुके निरवयव होनेसे वायुमें इन दोनोंका सम्बंध नहीं है अर्थात् यह दोनों कारण नहीं हैं विनाशक (नाश करनेवाले)के अभावसे वायुका नाश नहीं होता इससे परमाणुरूप वायु नित्य है क्रिया व गुणवान् कारण होनेमें सावयव (अवयवसंयुक्त) कार्य पदार्थ होताहै कारणके अभावसे वायु निरवयव व नित्य है क्योंकि सावयव कार्यहीका नाश होताहै जो यह संशय हो कि परमाणु हो या स्थूल हो आकाशसे भिन्न अर्थात् आकाशरहित देश वा स्थानमें रहना संभव न होनेसे आकाशमें वा आकाशके साथ सम्बंध होनेसे वायु आकाशमें आश्रित है वायुका किसी द्रव्यमें आश्रित नहोना कहना यथार्थ नहींहै तो उत्तर यह है कि यहां वायुका कारणवान् व कार्यरूप नहोना व निरवयव होनेसे सावयवके समान सावयव आधाररूप पदार्थमें आश्रित न होनेका प्रतिपादन करना इष्ट है आकाश निरवयव किसीका अधिकरण (आश्रय) नहीं होसक्ता सम्बंध समीपता मात्र होनेसे आश्रित होना अथवा आकाश व वायुमें कारणकार्य भाव होना सिद्ध नहीं होसक्ता इससे यह संशययुक्त नहींहै व इससे कुछ दूषण नहीं होता ॥ १३ ॥

वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ॥१४॥

वायुका वायुके साथ सम्मूर्च्छन (विरुद्धदिशाओंसे वेगसे आयेहुयोंका एक दूसरेके साथ धक्का लगना वा भिडजाना) होना वायुके अनेक होनेका लिङ्ग (चिन्ह वा लक्षण) है ॥ १४ ॥

अन्य अन्यविरुद्ध दिशाओंसे समवेगसे आये हुये दो वा अधिक वायुओंका जब परस्पर भिडजानेसे एकका दूसरेमें धक्का लगताहै तब उपरको चलते हैं उपरको वायुओंका चलना तृणआदिके उपर उडनेसे जाना जाताहै वायुका तिर्यग्गमन (तिरछा चलना) स्वभाव है उसका उपरको जाना विना परस्परके घात (टक्कर वा धक्का) व प्रेरणके संभव नहोनेसे परस्परके घातको सिद्ध करता है व इसीसे वायुका अनेक होना विदित होताहै ॥ १४ ॥

वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद्दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ॥ १५ ॥

वायुके सन्निकर्षमें (विना आड वा रोकके शरीरके साथ संयोग होनेमें) प्रत्यक्षके अभाव (नहोने) से दृष्टलिङ्ग नहीं है अर्थात् वायुका लिङ्ग दृष्ट नहीं है ॥ १५ ॥

जैसे धुवाँ अग्निका प्रत्यक्षलिङ्ग (चिन्ह) है धुवाँसे अग्निका अनुमान होताहै इसतरह वायुका दृष्टलिङ्ग (प्रत्यक्षलिंग) नहीं है क्योंकि वायुके संनिकर्षमें वायुका लिंग प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् देखनेमें नहीं आता इससे वायुका लिंग स्पर्श अदृष्ट है ॥ १५ ॥

सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ॥ १६ ॥

और सामान्यतो दृष्टसे (सामान्यतो दृष्ट अनुमानसे ज्ञात होनेसे) अविशेष है (विशेषरहित है वा विशेषसे विशेषित नहीं है) ॥ १६ ॥

अविशेषशब्दका साधारण अर्थविशेष नहीं है यह ज्ञात होता है परंतु यहाँ इस सूत्रमें यह अर्थ ग्रहणके योग्य नहीं है क्योंकि वायुमें द्रव्यत्वजाति विशेष होनेसे विशेष है अर्थात् द्रव्य है गुण व कर्म नहीं है यह द्रव्यत्वव्याप्यता विशेषण है तथा पृथ्वी जल तेज द्रव्य जातिसे पृथक् है इससे जातिविशेष है इससे अविशेष है इसका अर्थ यह है कि विशेष रहित है अथवा विशेषसे विशेषित नहीं है अर्थात् यथा पृथ्वी घट आदि कार्यरूप द्रव्य विशेषोंसे विशेषित होती है इस प्रकारसे वायु नहीं है व केवल सामान्यतो दृष्ट अनुमानसे जिसमें कारण कार्य सम्बंध नहीं होता जानाजाता है जो बिना कारणकार्यसम्बंध सामान्यसे (समानधर्म होनेके

विचारसे), अनुमान किया जाताहै उसको सामान्यतो दृष्ट कहते हैं वायु भी अन्य द्रव्योंके समान होना इस प्रकारसे अनुमान किये जानेसे कि स्पर्श जो ज्ञात होताहै यह गुण है गुण द्रव्य आश्रित होताहै इससे जिसमें यह आश्रित है वह अन्य द्रव्यके समान कोई द्रव्य विशेष है पृथ्वी जल तेज काल दिशा आकाश आत्मा व मनका विशेष गुण होना विचारसे सिद्ध नहीं होता इससे इन आठ द्रव्यसे भिन्न जिसमें आश्रित है वह स्पर्श गुणवान् वायु है यह सामान्यतो दृष्ट अनुमानका भेद है अर्थात् अनुमान तीन प्रकारका होता है उनमेंसे एक सामान्यतो दृष्ट है तीन प्रकारका अनुमान न्यायशास्त्रमें वर्णन कियाहै एक यह सामान्यतो दृष्ट जो वर्णन कियागया और पूर्ववत् व शेषवत् पूर्ववत् यह है कि जिसमें कारणको देखके कार्यका अनुमान किया जाय जैसे अतिसघन वृष्टि करनेवाले मेघ बिजुली चमकते देखके वृष्टि होनेका अनुमान करना व कार्यलिंगसे कारणका अनुमान करना शेषवत् है जैसे कोई सोतामनुष्य जिसने जल वृष्टि होते नहीं देखा जागनेमें जहाँतक दृष्टिगोचर भूमि होतीहै जलसंयुक्त देखकर वृष्टि होनेका अनुमान करे तथा नदीके प्रवाहकी बढती देखकर उपर हुई वर्षाका अनुमान करना आदि शेषवत् है ॥ १६ ॥

तस्मादागमिकम् ॥ १७ ॥

तिससे आगमिक (वेदमें प्रसिद्ध) है ॥ १७ ॥

तिससे (पूर्वसूत्रमें कहाहुवा विशेषरहित होनेसें) वायु वेदमें कहागया वा प्रसिद्ध है तात्पर्य इसका यह है कि वेद अविशेषपदार्थको अर्थात् जातिप्रकार वा विशेषभेदरहित पदार्थको वर्णन करता है वायु अपनी वायु जातिप्रकारभेदसे अनुमान नही कियागया सामान्य होना स्वीकार कियागया है इससे अविशेष (विशेषरहित) वायुका नाम वेदमें वर्णित है विशेषरहित पूर्वसूत्रमें कहनेसे सामान्यही होने विशेष व जातिप्रकार न होनेसे अभिप्राय है क्योंकि जो द्रव्य विशेष व जातिप्रकाररूपसे होताहै वह अनित्य होताहै यथा परमाणुरूप पृथिवी सामान्य व नित्य है व पृथिवी द्रव्य कार्यरूप जातिप्रकारसे अर्थात् घटजाति पाषाणजाति धातुजाति वृक्षजाति आदि भेद वा विशेषरूपसे अनित्य है इस प्रकारसे वायु नही है वायु नित्य विशेषजाति प्रकाररहित है अविशेष होनेसे वायु यह नाम वेदमें कथित है ॥१७॥

संज्ञाकर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिंगम् १८

संज्ञा व कर्म हमसे विशिष्टों (विशेष गुण व सामर्थ्यवालों)का लिङ्ग है ॥ १८ ॥

तुशब्द जो संस्कृत मूलसूत्रमें है वह प्रकरणकी समाप्तिका सूचक है अर्थात् यह सूचनके लिये है कि स्पर्शलिङ्ग

समाप्त करके उससे भिन्न अब अपनेसे विशिष्टोंका प्रकरण आरंभ किया जाता है तुशब्दका अनुवाद यथार्थ भावसूचक भाषामें ठीक न होता इससे अनुवादमें छोडदिया है उसके अभिप्रायको वर्णन करदिया है संज्ञा व कर्म हमसे विशिष्टोंका लिङ्ग है यह कहनेका तात्पर्य यह है कि संज्ञा (नाम) व कर्म हमसे विशिष्ट जो ईश्वर व सिद्ध महर्षि हैं उनका लिंग है यथा वेदमें कहेहुये अनेक दृष्ट व अदृष्ट पदार्थोंके नाम व उनका व्याख्यान व कर्म (कार्य) पृथिवी आदिका होना अङ्कुर आदिका उत्पन्न होना हमसे ईश्वरके होनेका लिङ्ग है इस प्रकारसे नाम व कर्म लिंगद्वारा ईश्वर तथा महर्षि व सिद्धोंके होनेका अनुमान होता है अर्थात् वेदमें अनेक प्रकारके नाम वर्णित देखके उसके वर्णन करनेवालेका अनुमान होता है कि सर्वज्ञ ईश्वरका वर्णन किया हुवा है क्योंकि आदिसृष्टिमें विना किसीके उपदेश लौकिक जन आपसे सम्पूर्ण विद्यारूप वेदके वर्णन करनेमें जिसमें वायु आदि अप्रत्यक्ष पदार्थके नाम गुण व ज्ञानका वर्णन है समर्थ नहीं हो सक्ता है तथा पृथिवी आदि व अङ्कुर उत्पन्न होना आदि कर्म देखके कर्ता ईश्वरका अनुमान होता है क्योंकि कर्म विना कर्ताके नहीं होता व लोकमें कोई ऐसा देख नहीं परता न किसीके सामर्थ्यसे ऐसा कार्य होना संभव है तथा अनेक विद्याके ग्रंथ व स्मृतियोंको देखके

जिनमें अनेक प्रकारके नाम व व्याख्यान हैं उनके कर्ता म-हर्षियोंका अनुमान वा ज्ञान होता है इस प्रकारसे नाम व कर्म लिंगसे (लिंगद्वारा) विशिष्ट पुरुषोंका ज्ञान होता है१८

प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ॥१९॥

संज्ञा व कर्मका प्रत्यक्ष प्रवृत्त किया गया होनेसे अर्थात् किसी कर्तासे प्रत्यक्ष प्रवृत्त कियेजानेसे॥१९॥

संज्ञा व कर्मका किसी कर्तासे प्रवृत्त किया जाना प्रत्यक्ष होनेसे संज्ञा व कर्मलिंगसे अर्थात् संज्ञा व कर्मद्वारा संज्ञा व कर्मके कर्ताका अनुमान होताहै यह सूत्रका भावार्थ है विशेष व्याख्यान इसका यह है कि यथा यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि उत्पन्न बालकका नाम विशेष जब पिता आ-चार्य वा कोई रखता है तबसे उसकी प्रसिद्धि होती है आ-पसे संज्ञाकी प्रवृत्ति नहीं होती न होसक्ती है तथा घट पट गृह आदि कार्य विना कर्ताके उत्पन्न नहीं होते कोई कर्म विना कर्त्ता नहीं होता परंतु साधारण लौकिक नाम व क-र्मोंका कर्त्ता तो प्रत्यक्ष होता है इस जगत् कार्यका तथा जिन संज्ञाओंका कोई कर्त्ता दृष्ट नहीं है उसका अनुमान किया जाता है यथा अनेक औषधियोंके नाम व गुण इस प्रकारसे वर्णन करना कि न्यवलाके डाठके अग्रभागमें जिस औषधिका स्पर्श होजाता है उससे सम्पूर्ण सर्पका विष दूर

होता है इत्यादि और अनेक अदृष्ट पदार्थोंका वर्णन विना कोई परोक्ष जाननेवाले सर्वज्ञके कोई संसारी मनुष्य अज्ञान सृष्टिकी आदि उत्पत्तिमें विना उपदेशके संभव नहीं होता इससे कोई विशेष होनेका अनुमान होता है संसारमें कोई ऐसा समर्थ दृष्ट न होनेसे व विना कर्ताके संज्ञा व कर्मका होना प्रत्यक्ष न होनेसे ईश्वरका अनुमान तथा अन्य विशेषसंज्ञा व कर्मद्वारा सिद्ध व महर्षियोंका अनुमानसे ज्ञान होताहै ॥ १९ ॥

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ २० ॥

निष्क्रमण (निकलना) प्रवेशन (प्रवेश करना) आदि आकाशका लिङ्ग (चिन्ह) है ॥ २० ॥

विना शून्यात्मक आकाशके निकलना व प्रवेश करना अर्थात् पैठना नहीं होसक्ता सावयव मूर्तिमान् पदार्थ रोकका कारण होता है जहां प्रवेश होता है व जहां निकलना होताहै वहाँ पृथिवी जल तेज वायुसे भिन्न स्पर्शरहित आकाश द्रव्य होनेका अनुमान होता है क्योंकि जहाँ पृथिवी आदि वायुपर्यंत पदार्थ होते हैं वहाँ रोकवा स्पर्श अवश्य होता है जिस शून्य देशमें निकलना व पैठना होता है वहाँ रोक व स्पर्श ज्ञात नहीं होता इससे निकलना व पैठना उक्त पृ-

थिवी आदिसे भिन्न आकाशका लिङ्ग है सूत्रमें इतिशब्द जो संस्कृतमूलमें है वह प्रकार अर्थवाचक है अर्थात् यह सूचक है कि इसी प्रकारसे जैसे निकलना व पैठना आकाशका लिंग है फेंकना आदिकोभी आकाशका लिंग समुझना चाहिये इतिशब्दहीका अर्थ आदि अनुवादमें रखदिया है२०

तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात्कर्मणः ॥ २१ ॥

कर्मके एक द्रव्यमें आश्रित होनेसे वह (निकलना व पैठना आदि कर्म) लिङ्ग नहीं हैं ॥ २१ ॥

पूर्वसूत्रमें निकलना व प्रवेश करना आकाशका लिङ्ग कहा है यह पूर्वपक्ष वा अन्यका मत कहकर इस सूत्रमें प्रतिषेध किया है कि ऐसा मानना यथार्थ नहीं है निकलना आदि आकाशके लिंग नहीं हो सक्ते क्योंकि कर्म है कर्म सावयव मूर्तिमान् द्रव्यमें आश्रित होता है आकाश निरवयव पदार्थ है और कर्मका यह लक्षण है कि वह एकही द्रव्यमें आश्रित होताहै इससे जिसमें कर्म होताहै उससे भिन्न दूसरे द्रव्य आकाशमें आश्रित नहीं हो सक्ता क्योंकि अनेक द्रव्यमें आश्रित नहीं होता अर्थात् उसके अनेक आश्रय होनेका निषेध किया है और सिद्ध नहीं हो सक्ता आकाश व कर्मका समवाय व समवेत भाव नहीं है इससे कर्म आकाशका समवायिकारण नहीं है जिसमें समवायिसम्बन्ध होताहै

उसको समवेत कहते हैं कर्म मूर्तिही मात्रमें समवेत है जो यह शंका हो कि समवायिकारण नहीं है तो असमवायिकारण मानना चाहिये तौ असमवायिकारण होनेका अगले सूत्रमें निषेध किया है ॥ २१ ॥

कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ॥ २२ ॥

अन्यकारण (असमवायिकारण)के लक्षण वैधर्म्यसे (विरुद्धधर्म होनेसे)भी ॥ २२ ॥

समवायिकारणसे अन्य (भिन्न) जो असमवायिकारण है उसके (उसके होनेके) लक्षणका भी वैधर्म्य आकाशमें होनेसे निकलना आदि आकाशके लिङ्ग (अनुमानके हेतु) नहीं हो सक्ते अर्थात् असमवायिकारण भी नहीं हो सक्ते कि जिससे आकाशके लिङ्ग माने जावै कर्म व उसके कार्यरूप संयोग व विभाग मूर्त्त द्रव्यहीमें होते हैं अमूर्त्त द्रव्य आकाशमें न होनेसे अर्थात् आकाशमें वैधर्म्य होनेसे कर्म आकाशका समवायि व असमवायिकारण दूनौं नहीं हो सक्ता यह दोनों सूत्रोंका अभिप्राय है ॥ २२ ॥

संयोगादभावः कर्मणः ॥ २३ ॥

संयोगसे कर्मका अभाव होता है ॥ २३ ॥

कर्म आकाशका निमित्तकारण होकर भी आकाशके

अनुमानका हेतु नहीं होता यह सूचित करनेके लिये अर्थात् कर्मके निमित्त कारण होनेके प्रतिषेधमें यह वर्णन किया है कि संयोगसे (संयोग होनेपर) कर्मका अभाव होता है तात्पर्य यह है कि संयोगसे कर्मका अभाव (नाश) होनेसे संयोग विशेषका अभावही (न होनाही) कर्मका निमित्तकारण है आकाश निमित्तकारण नहीं है संयोगसे कर्मके अभाव होनेका उदाहरण वा निदर्शन यह है यथा फल पत्र आदिकोंका नीचे गिरनेका कर्म पृथिवी आदिके संयोगसे तथा तीर वा अन्य फेंकेहुये वा गमन करते हुयेका गमनकर्म निशाने वा रोकनेवाले पदार्थके संयोगसे (संयोग होनेपर) नष्ट हो जाता है इत्यादि आकाशके होनेसे कर्मका होना अथवा न होनेसे न होना दोमें एक भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि आकाश सदा बना रहताहै विना कर्ताकी इच्छा आदिकारण विशेषके कर्म नहीं होता व आकाशका अभाव (न रहना) कहीं सिद्ध नहीं होता जिस द्रव्यका संयोग कर्मका नाशक होता है उसके बाहर भीतर उसके अणुओंके अंतर्गत आकाशव्यापक होनेसे विद्यमान रहताहै इससे आकाश कर्मका कारण नहीं है संयोग विशेषका अभाव ही कर्मका निमित्त कारण है ॥ २३ ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः॥२४॥

कारणगुणपूर्वक कार्यगुण देखागया है अर्थात् कारणपूर्वक कार्यगुण (कार्यगुणका होना) प्रत्यक्ष होता है ॥ २४ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय भूमिका रचनेसे है अर्थात् शब्दही आकाशका अनुमापक (अनुमान करानेवाला वा अनुमानका हेतु) लिङ्ग है यह प्रतिपादनकरनेके मनोरथसे प्रथम भूमिका रचनेमें यह कहा है कि कार्यगुण कारणगुणपूर्वक होता है अर्थात् जब कारणगुण प्रथम विद्यमान होता है उसके पश्चात् कार्यगुण प्रकट वा प्रत्यक्ष होता है जैसे घटपटकेरूप आदि अवयव व कारणरूप कपाल व तन्तुकेरूप आदिसे पश्चात् प्रकट होते हैं इस प्रकार शब्द जो श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रियसे ज्ञात होता है कारणगुणपूर्वक कार्यगुण भावसे विदित नहीं होता कार्यगुण न होनेसे शब्द नित्यकारणद्रव्यका गुण होना अनुमान किया जाता है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि शब्दका आश्रय (आधार) द्रव्य नित्य है ॥ २४ ॥

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥ २५ ॥

कार्यान्तर (अन्यकार्य अर्थात् एकसे अधिक कार्य)

प्रकट न होनेसे शब्द स्पर्शवान् (स्पर्शवाले) पदार्थोंका गुण नहीं है ॥ २५ ॥

शब्द किस द्रव्यका गुण है यह निश्चय करनेके विचारमें यह कहा है कि कार्यान्तर (अन्यकार्य अर्थात् एकसे अधिक अन्य अन्य विचित्र कार्य) उत्पन्न व प्रकट न होनेसे शब्दस्पर्शवाले पदार्थोंका गुण नहीं है तात्पर्य यह है कि स्पर्शवाले (स्पर्शगुणसंयुक्त) जो पृथिवी जल तेज व वायु द्रव्य हैं उनका गुण नहीं है क्यों नहीं है कार्यान्तर उत्पन्न न होनेसे अर्थात् रूपवान् व स्पर्शवान् अवयव कारणोंमें रूपआदि गुण होते हैं वह एकही प्रकारका कार्य गुण रूप आदि प्रकट करते हैं कार्यमें विचित्रता नहीं होती यथा पृथिवी आदिके विशेषकार्य द्रव्य घटपट आदिकोंमें कार्यगुण आकाररूप आदि उनके कपाल व तन्तुओं आदिसे एकही प्रकारके प्रकट होते हैं एक प्रकारके होनेपर फिर उन्हीं अवयवोंसे चित्रविचित्र कार्यरूप परिमाण आदि उत्पन्न नहीं होते परन्तु शब्दमें इसके विपरीत कार्यान्तर होनेकी उपलब्धि होती है जैसे एकही वीणा वेणु मृदंग शंखआदिमें प्रथमसे अधिक उससे भी अधिक व मन्द उससे भी मन्द शब्द प्रकट होता वा किया जाता है और वीणा आदिके शब्दरहित अवयवोंसे उत्पन्न होता है व नष्ट हो जाता है इस प्रकारसे रूपआदिरहित घटपटके कपाल व तन्तु अवयवोंसे

घटपटके रूप आदि कार्यका प्रकट होना प्रत्यक्ष नहीं होता और जिस द्रव्यका जो विशेषगुण होता है वह उस द्रव्यमें द्रव्यके रहने तक बना रहता है शब्दस्पर्शवाले-द्रव्यसे प्रकट होकर नष्ट हो जाता है द्रव्य स्थित रहता है स्पर्शवाले आश्रय द्रव्योंसे पृथक् देशान्तरमें ज्ञात होता है इससे (इन हेतुओंसे) शब्द स्पर्श गुणवाले द्रव्योंका विशेष गुण नहीं है॥

परत्र समवायात्प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः ॥ २६ ॥

परमें समवाय होनेसे और प्रत्यक्ष होनेसे न आत्माका गुण है न मनका गुण है ॥ २६ ॥

स्पर्शवालोंका गुण नहीं है तो स्पर्शरहित आत्मा व मनका गुण होगा इस शंका निवारणके लिये आत्मा व मनके गुण न होनेमें यह वर्णन किया है परमें समवाय (सम्बंध) होनेसे व प्रत्यक्ष होनेसे आत्मा व मनका गुण नहीं है परमें समवाय होनेसे अभिप्राय यह है कि आत्मा व मनसे पर (भिन्न) द्रव्योंमे शब्दका समवाय (नित्यसम्बंध) होना विदित होता है यथा वीणा बजाया जाताहै शंख बजाया जाताहै वा शंख व वीणामें शब्द होताहै इत्यादि जो आत्मा व मनका गुण होता तो जैसे मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं मैं जानता हूं मैं इच्छा करता हूं यह बोध होताहै ऐसाही यह बो

होता कि मैं वजाया जाता हूं मैं बजता हूं मैं शब्दवान् (शब्दवाला) हूं परंतु ऐसा नहीं होता इससे शब्द आत्मा व मनका गुण नहीं है तथा प्रत्यक्ष होनेसे अर्थात् रूप आदिके समान वाह्य इन्द्रियग्राह्य होनेसे अप्रत्यक्ष आत्मा व मनका गुण नहीं है जो आत्मा व मनका गुण होता तो दुःखआदिके समान बहेरेको भी शब्दका ज्ञान होता ऐसा न होनेसे भी आत्मा व मनका गुण न होना सिद्ध होताहै प्रत्यक्ष होनेके हेतुसे आत्मा व मनके गुण न होनेके समान दिशा व कालकेभी गुण न होनेके सूचित कर दियाहै क्योंकि काल भी वाह्य इन्द्रियग्राह्य नहीं है केवल बुद्धिसे जानाजाताहै व दिशाका भी बुद्धिहीसे सम्बंध है वाह्यइन्द्रियसे स्वाभाविक बोध नहीं होता वही दिशा एकस्थानके सम्बंधसे जो होताहै दूसरे स्थानसे अन्य समझा जाताहै इससे दिशा व कालकाभी गुण होनेका प्रतिषेध समुझना चाहिये ॥२६॥

परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ॥ २७ ॥

परिशेषसे (वाकी रहनेसे) आकाशका लिङ्ग है २७

इस सूत्रमें शब्द यह शेष (वाकी) है अर्थात् परिशेपसे शब्द आकाशका गुण है यह सूत्रका पूरा अर्थ है उक्त प्रकारसे पृथिवी जल तेज वायु काल दिशा आत्मा व मन द्रव्योंके गुण होनेके निषेध होजानेपर जो द्रव्य शेष रहता है

उसीके गुणा होनेका अनुमान होताहै क्योंकि शब्द गुण है गुणका आश्रय वा अधिकरण द्रव्य अवश्य होगा द्रव्यरहित गुणकी स्थिति नहीं होती इससे शेष रहेहुये द्रव्य आकाशका गुण है यह सिद्ध होताहै ॥ २७ ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते॥२८॥

द्रव्यत्व (द्रव्यहोना) नित्यत्व (नित्य होना) वायुसे अर्थात् वायुके वर्णनके समान व्याख्यात हैं २८

वायुके वर्णनके समान आकाशकाभी द्रव्य व नित्य होना व्याख्यात समुझना चाहिये अर्थात् जैसे परमाणुरूप वायु किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य है इसी तरह आकाश किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य है स्पर्श गुणवान् होनेसे जैसे वायु द्रव्य है इसी प्रकारसे शब्द गुणवान् होनेसे आकाश द्रव्य है ॥ २८ ॥

तत्वं भावेन ॥ २९ ॥

उसका एकहोना भावसे (भावके समान) व्याख्यात है ॥ २९ ॥

जैसे भाव (सत्ता)का एकहोना कहा गयाहै उसी तरह आकाशकों जानना चाहिये अर्थात् जैसे सत्ता एक है वैसही भाव एक है ॥ २९ ॥

शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च ३०

शब्द लिङ्गके विशेष न होनेसे व विशेष लिङ्गके अभावसे ॥ ३० ॥

शब्द जो आकाशका गुण है उसके विशेष न होनेसे अर्थात् उसमें विशेपता भेद न होनेसे और अन्य विशेप लिङ्ग भेद साधक न होनेसे आकाशका एक होना सिद्ध होता है अर्थात् जैसे आत्मामें किसीमें सुख व किसीमें दुःखरूप कार्य होताहै इस विलक्षणतासे अर्थात् एकही समयमें कोई सुखी होताहै व कोई दुःखी होताहै इससे आत्माका अनेक होना सिद्ध होताहै क्योंकि एक होनेमें वही सुखी वही दुःखी नहीं हो सक्ता इस प्रकारसे शब्दमें विशेप भेद होना ज्ञात नहीं होता कि कहीं किसी आकाशमें एक प्रकारका शब्द व दूसरेमें दूसरे प्रकारका शब्द है शब्दमात्रमें भेद नहीं होता जो भेद किसी प्रकारका ज्ञात होताहै वह निमित्तकारणके भेदसे होता है इससे शब्दलिंगके विशेप न होनेसे व शब्दसे भिन्न अन्य कोई विशेप लिङ्ग अर्थात् कोई भेदसाधक लिङ्ग जिससे आकाशके अनेक होनेका अनुमान किया जाय न होनेसे आकाश एक है ॥ ३० ॥

तदनुविधानादनेकपृथक्त्वं चेति ३१

उसके (उक्त एकत्व)के अनुविधान (सहचार वा व्याप्ति)से एकत्व व पृथक्त्व (भिन्न होना)है ॥ ३१ ॥

पूर्वसूत्रमें जो भावके समान व विशेषलिङ्ग न होनेके हेतुसे आकाशका एकत्व (एक होना) वर्णन किया है उस एकत्वके सहचारसे अर्थात् इस व्याप्ति ज्ञानसे कि जहाँ एकत्व है वहाँ एकत्वके साथ पृथक्त्व भी होता है अर्थात् जो एक होता है वही एक व पृथक् होता है आकाशके एकत्वहीसे अर्थात् एक होनेहीसे आकाशका एक होना व पृथक्भी होना अर्थात् अन्यद्रव्योंसे पृथक् द्रव्यपदार्थ होना सिद्ध होता है इतिशब्द जो संस्कृतमें सूत्रमें है वह आन्हिककी समाप्तिका सूचक है क्योंकी किसी वाक्य वा व्याख्यानके समाप्त करनेमें विवक्षासे (वक्ताकी इच्छासे) इतिशब्दका प्रयोग किया जाताहै ॥ ३१ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीमत्प्यारेलालात्मजप्रभुदयालुविरचिते द्वितीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ॥ २ ॥

पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रे गन्धाभावलिङ्गम् ॥ १ ॥

पुष्प व वस्त्रके सन्निकर्ष (समीपता वा संयोगविशेष) होनेमें गुणान्तरसे (अन्यगुणसे) अर्थात् कारणगुणसे प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) न होना वस्त्रमें गंधके अभाव होनेका लिङ्ग है ॥ १ ॥

अब भूतोंके लक्षणकी परीक्षा करनेके वर्णनमें प्रथम औपाधिकगुण व स्वाभाविक गुणके भेदको इस सूत्रमें व्यक्त किया है स्वाभाविक रूप रस गंध स्पर्श गुण वह है जो कारणगुणसे कार्यगुणरूप उत्पन्न होते हैं व द्रव्यमें जवतक द्रव्य है बने रहतेहैं व औपाधिक वह हैं जो अन्य द्रव्यका गुण उसके संयोग वा संस्कारसे उस द्रव्यमें जिसमें वह नहीं है उपाधिसे हो जाता है फिर नष्ट भी होजाता है यथा वायुमें गंध व शिलातलमें शीतका बोध होना औपाधिक है व पुष्पमें गंध व अग्निमें गरमी स्वाभाविक है इन दोनोंके भेद जनानेके अर्थ यह कहा है कि पुष्प व वस्त्र दोनोंके सन्निकर्ष (समीपता वा संयोगविशेष) होनेमें यद्यपि पुष्पके संयोगसे वस्त्रमें भी गंधका बोध होता है प-

रंतु वस्त्रमें गंधका अभाव है क्योंकि वस्त्रमें गंध स्वाभाविक नहीं है जो स्वाभाविक गंध वस्त्रमें होता तो वस्त्रके कारण-रूप अवयव तन्तुओंमें पुष्पसम्बंधसे पूर्वही गंध होता व उसकारण गंधगुणसे वस्त्रमें कार्यरूप गंधगुण उत्पन्न वा प्रकट होता है परन्तु गुणान्तरसे अर्थात् कारणगुणसे वस्त्रमें गंध उत्पन्न न होना वस्त्रमें गंधके अभाव होनेका लिङ्ग है क्योंकि जो स्वाभाविक गुण है वही लक्षण होता है व लक्षण कहाजाता है औपाधिक गुण लक्षण नहीं होसक्ता जो यह संशय हो कि वस्त्र पृथिवीद्रव्यका कार्य है उसमें गंध है वस्त्रके जलानेसे वस्त्रमें गंधका होना प्रत्यक्ष होता है तो यहाँ पुष्पके समान गंधविशेषके होनेसे अभिप्राय है यह समुझना चाहिये ॥ १ ॥

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥ २ ॥

पृथिवीमें गंध (गंधगुण वा गंधलक्षण) व्यवस्थित (विशेषरूपसे अवस्थित वा स्थित) है अर्थात् पृथिवीका विशेषगुण वा लक्षण गंध है ॥ २ ॥

पृथिवीका स्वाभाविक अन्यद्रव्योंसे भेद जनानेवाला विशेष लक्षण या गुण गंध है पृथिवीमें गंधका विशेष होना इस प्रकारसे विचारनेसे ज्ञात होता है कि प्रथम जो स्पर्शसे स्पर्शवान् पदार्थ ज्ञात होता है उसको वायु कहतेहैं उसका

स्पर्शही लिङ्ग वा गुण है उससे अधिक स्पर्श व रूप दो गुणवाला द्रव्य तेज है रस व गंध तेजमें न होनेसे व स्पर्श वायुमें भी होनेसे रूपमात्र जो वायुसे अधिक है तेजका स्वाभाविक व विशेषगुण है तेजसे अधिक स्थूल स्पर्श रूप रस तीनगुणवाला द्रव्य जल है गंध जलमें विना पार्थिव-द्रव्यके संयोगके न होनेसे व स्पर्श व रूप वायु व तेजमें भी होनेसे इनसे विशेष जो रस गुण यथा खारा व मीठा होना आदि जलमें ज्ञात होता है यह जलका स्वाभाविक विशेष-गुण है जलसे अधिक स्थूल स्पर्श, रूप, रस, गंध, चारगुण-वाली पृथिवी है स्पर्श आदि तीन गुण उक्त वायुआदिमें भी होनेसे तीनसे विशेष चौथा गंध होनेसे गंधमात्र पृथि-वीका विशेषगुण होना सिद्ध होता है इससे पृथिवीमें गं-धका व्यवस्थित होना कहा है आकाशके गुणका विचार पूर्वही विस्तारसे होगया है इससे व वायुसे क्रमवर्णन क-रना उचित समुझकर वायुसे व्याख्यान किया है यद्यपि और गुण भी आकाश वायु आदि पदार्थोंमें है जैसा आगे ग्रंथमें वर्णन कियाहै परन्तु शब्द व स्पर्श आदि पांच ज्ञान-इन्द्रियके विषय विशेष होनेसे मुख्य व उक्त क्रमसम्बंधी होनेसे एक एक पांच आकाशआदि द्रव्योंके विशेषगुण व लक्षण समझे जाते हैं ॥ २ ॥

एतेनोष्णता व्याख्याता ॥ ३ ॥

इससे अर्थात् इसीप्रकारसे उष्णता व्याख्यात (व्याख्यान की गई) है ॥ ३ ॥

जैसे पृथिवीमें गंध विशेषगुण है इसी प्रकारसे तेजमें उष्णताको व्याख्यात समुझना चाहिये ॥ ३ ॥

तेजस उष्णता ॥ ४ ॥

तेजका लिङ्ग वा लक्षण उष्णता है ॥ ४ ॥

पूर्वसूत्रमें तेजको भी इसीप्रकार समुझ लेना चाहिये इतनाही कहकर इस सूत्रमें स्पष्ट वर्णन कर दिया है कि तेजका स्वाभाविक लक्षण उष्णता है सो प्रत्यक्ष विदित होता है अधिक व्याख्यानकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४ ॥

अप्सु शीतता ॥ ५ ॥

जलमें शीतता है अर्थात् जलमें विशेषगुण शीतता है ॥ ५ ॥

शीतता जलमें होना स्वाभाविक है अर्थात् जलका स्वाभाविक वा विशेष लक्षण है ॥ ५ ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥ ६ ॥

अपरमें अपर होना व युगपत् (अनेक एक-

साथ) होना चिर (बहुतकाल वा देर) होना व क्षिप्र (जल्द) होना ऐसे ज्ञान होना कालके लिङ्ग (चिन्ह) है ॥ ६ ॥

इतिशब्द जो सूत्रमें है वह ज्ञानके प्रकारका सूचक है इसीसे इतिशब्दका अर्थ ऐसा ज्ञान यह अनुवादमें रक्खा-गया है अपरमें अपर कहनेसे परमें पर होनेका भी ग्रहण होता है अब अपरमें अपर व परमें परज्ञान होने आदिके दृष्टान्त ये हैं जैसे जन्मसे बहुत दिन वा अधिक काल व्य-तीत होनेपर वृद्धा अवस्था युवा अवस्थाकी अपेक्षापर कही जाती है व युवा अवस्था वृद्धा अवस्थाकी अपेक्षा अपर (कमकालवाली वा पूर्वकी) कही जाती है अनेकका एकसाथ बोध होना यह है जैसे ये एकही साथ पैदा हुये वा हुयेथे वह एकही समयमें वा साथही काम करते हैं इ-त्यादि तथा वह देरसे काम करता है वह जल्द काम करता है इस प्रकारसे अपर होनेका प्रत्यय (बोध) युगपत् (एक-साथ) होनेका प्रत्यय विलम्ब होनेका प्रत्यय शीघ्र (जल्द) होनेका प्रत्यय यह कालके लिङ्ग (लक्षण) है ॥ ६ ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥७॥

द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुसे (वायुके समान) व्या-ख्यात (व्याख्यान किये गये) समुझना चाहिये ॥७॥

जैसे परमाणुरूप वायु गुणवान् होनेसे द्रव्य है व किसी-द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य है इसी प्रकारसे काल परत्व अपरत्व आदि गुणसंयुक्त होनेसे द्रव्य व किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य है ॥ ७ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ ८ ॥

एक होना भावसे (भावके समान) व्याख्यात समुझना चाहिये ॥ ८ ॥

अपर होना शीघ्र होना आदि जो कालके लिङ्ग हैं उनके विशेष न होनेसें व अनेक होनेमें भी आत्माओंके दुःख सुख आदिके समान विशेषलिङ्ग न होनेसे सत्ता (भाव) के समान काल भी एकही है अब यह शंका होती है कि पल मुहूर्त रात्रि दिन महीना वर्ष आदि भेद होनेसे कालका अनेक होना विदित होता है इसका उत्तर यह है कि अनेक होनेका बोध भ्रमरूप है उपाधिमात्रसे अनेक होना ज्ञात होता है जैसे एकही शुक्ल स्फटिकमणि जपाकुसुम (गोडहरका फूल) आदि अनेक पुष्प अरुण नील पीत आदिके आभाससे अरुण आदि अनेक रूपसे ज्ञात होता है इसी प्रकारसे सूर्यके गमन आगमन सम्बंधसे मुहूर्त आदिसे लेकर वर्ष आदिकोंकी संख्या होती है अर्थात् सूर्यकी चालसे परिमाण बाँधनेकी संख्या है कालकी संख्या नहीं

होती है और जो विद्यमान नहीं है होनेवाला हो उसको होगा यह कहाजाता है नित्यपदार्थका कभी अभाव नहीं होता उत्पत्तिनाशसे रहित होता है इससे नित्योंमें उक्त-प्रकारसे त्रिकालसम्बंधी प्रत्ययोंका अभाव होता है इसप्रकारसे अन्वय व व्यतिरेकसे (योगहोने व न होने) रूपसे कालपदार्थोंमें कारण है और केवल साथ उत्पन्न होने आदि प्रत्ययोंसे अनित्यकार्य पदार्थोंमें कारण नहीं है पुष्पफल आदिकोंका हेमन्त वसन्त वर्षा आदि ऋतु नामसे भी काल निमित्तकारण है यह विचारना चाहिये ॥ ९ ॥

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्॥१०॥

जिससे इससे यह अर्थात् इससे यह निकट वा दूर है ऐसा ज्ञान होता है वह दिशाका वा दिशा-सम्बंधी लिङ्ग है ॥ १० ॥

इससे यह दूर है अथवा निकट है इससे यह दूर है वा निकट है यह दिशासम्बंधी पर व अपर बुद्धि जिससे होती है वह दिशाका लिङ्ग (लक्षण) है कालके समान पर अपर होनेका ज्ञान दिशाके होनेका लक्षण है परन्तु कालसम्बंधी पर अपर व दिशासम्बंधी पर अपरके प्रत्ययमें यह भेद है कि कालमें परत्व व अपरत्व मुहूर्त दिन मास वर्ष आदिके अधिक गत होने व अल्प गत होनेकी अपेक्षा कहा जाता है

व दिशामें देशविशेषके अधिक व न्यून होनेकी अपेक्षा कहाजाता है पर व अपर वा निकट व दूर प्रत्यक्ष देशमें वोध होना दिशाका विशेष लिङ्ग है व उपाधिविशेषसे अन्य भी दिशाके भेद कहे जाते हैं जैसा आगे वर्णन किया है अब दिशाका द्रव्य होना व नित्य होना वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥

द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुसे अर्थात् वायुके समान व्याख्यात हैं ॥ ११ ॥

परत्व व अपरत्व गुण होनेसे द्रव्य व अन्यद्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्य होनेसे वायुके समान दिशाको भी द्रव्य व नित्य समुझना चाहिये ॥ ११ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ १२ ॥

एक होना भावके समान ॥ १२ ॥

दिशाका कोई विशेष लिङ्ग न होनेसे व दिशामें विशेषलिंग अर्थात् भेद जनानेवाला लिङ्ग न होनेसे दिशा भी भावके समान एक है व एक होनेसे पूर्वोक्त प्रकारसे एक व पृथक् होना भी सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

कार्यविशेषेण नानात्वम् ॥ १३ ॥

कार्यविशेषसे अनेकत्व होता है ॥ १३ ॥

यद्यपि वस्तुसे उक्त लक्षण अनुसार दिशा एकही है तथापि कार्यविशेषसे उत्पन्न मूर्तरूप उपाधिसे पूर्व पश्चिम आदि नामसे अनेक दिशा कहे जाते हैं ॥ १३ ॥

आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥ १४ ॥

पूर्वमें हुये होनेवाले व वर्तमानमें हुये सूर्यके संयोगसे पूर्वदिशा मानी जाती है ॥ १४ ॥

जिस और प्रथम सूर्यका संयोग हुवा है व होगा व वर्त्तमानमें संयोग होना देख परता है उसको पूर्वदिशा कहते हैं किसीको इस स्मरणसे कि कल्हके दिन प्रातःकाल इस दिशामें प्रथम सूर्यका संयोग हुवा था पूर्वभूत संयोगसे पूर्व दिशाका ज्ञान होता है किसीको वर्तमानमें प्रातःकाल प्रथम सूर्य उदय होते हुये देखके पूर्वदिशाका ज्ञान होता है किसीको पूर्वस्मरणसे कल्ह इस दिशामें सूर्य निकलैगा यह प्रत्यय होनेसे पूर्वदिशाका ज्ञान होता है ॥ १४ ॥

तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च ॥१५॥

तैसेही दक्षिणा पश्चिम उत्तर भी ॥ १५ ॥

जो पूर्वको मुख किये हो उसके दाहिनीतरफ दक्षिणदिशा व बांई तरफ उत्तर दिशा व जहां सूर्यका अस्त होता

है उसको पश्चिम दिशा कहते हैं व त्रिकालमें सूर्यका संयोग विशेष मध्यान्ह व सायंकालमें होने आदिसे पूर्वदिशाके समान दक्षिण पश्चिम आदिका ज्ञान होता है ॥ १५ ॥

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि १६

इसीसे (इसीप्रकारसे) मध्यके दिशा व्याख्यात हैं अर्थात् व्याख्यात समुझना चाहिये ॥ १६ ॥

मध्यकी दिशा जैसे पूर्व व दक्षिणके मध्यमें दोनोंके योगसे दक्षिण पूर्वदिशा कही जाती है इसी प्रकारसे दक्षिण पश्चिम पश्चिमोत्तर व उत्तर पूर्वनामसे सूर्यकेसंयोगविशेषोंसें दिशाओंका व्यवहार होता है इन चारों दिशाओंको क्रमसे आग्नेयी नैर्ऋती वायवी ऐशानी नामसे भी कहते हैं सूर्यके संयोगभेदसे यह दिशाभेद कल्पित हैं दिशा एकही है जिसका लिङ्ग यहांसे यह बोध होना है इसीमें उक्त दिशा और ऊपर नीचे सब दिशा उपाधिविशेषके भेदसे घटित होजाते हैं ॥ १६ ॥

सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः ॥ १७ ॥

सामान्यके प्रत्यक्ष होनेसे विशेषके प्रत्यक्ष न होनेसे व विशेषकी स्मृतिसे संशय होता है ॥ १७ ॥

सामान्य (साधारणधर्म)के प्रत्यक्ष होनेसे विशेप (एक-कोटिव्याप्य)के प्रत्यक्ष (ज्ञान) न होनेसे विशेपकी स्मृतिसे अर्थात् दो कोटिओंमेंसे जिनके साधारणधर्मका ज्ञान वा समधर्म होनेका ज्ञान होता है उन दोनों विशेपोंके स्मरणसे संशय होता है यथा स्थाणु (ठूंठ वा थूना)की उंचाई व मोटाई पुरुपके समान दूरसे कुछ अंधकारमें देखके दोनोंका साधारण समधर्म होनेमात्रके ज्ञान होनेसे व एककोटिव्याप्य ज्ञानकी स्थाणुही है अथवा पुरुपही है ऐसा विशेप प्रत्यक्ष न होने वा निश्चय न होनेसे व विशेपके स्मरणसे अर्थात् दोनों कोटिविशेप स्थाणु व पुरुपके स्मरणसे एकके निश्चय न होनेतक संशय होता है दोनों कोटिका ज्ञान संशयका हेतु (कारण) है ॥ १७ ॥

दृष्टं च दृष्टवत् ॥ १८ ॥

दृष्टके समान दृष्ट भी ॥ १८ ॥

पूर्वदृष्ट (देखे हुये)के समान वर्तमानकालमें दृष्ट (प्रत्यक्ष) वस्तुभी संशयका हेतु होता है अर्थात् पूर्व देखे हुयेके समान वर्तमानकालमें देखे हुयेसे विशेप निश्चय न होनेमें संशय होता है संशय होनेका अर्थ पूर्वसूत्रसे ग्रहण किया जाताहै दृष्टके समान दृष्टके संशयके हेतु होनेका उदाहरण यह है यथा आडीमें पिण्ड छिपे हुये गौ वा गवय (नीलगाव)के सींगमात्र देखनेसे पूर्व देखे हुये गौ अथवा

गवयके समान सींग होनेसे यह संशय होता है कि आडीके भीतर गौ है अथवा गवय है यह संशय दो प्रकारके होता है एक जब धर्मी प्रत्यक्ष नहीं होता प्रत्यक्ष समान होनेका भ्रम होता है अर्थात् दृश्यमान धर्मी यथार्थरूपसे ज्ञात नही होता यथा ऊर्ध्वत्व (ऊंचाई) विशिष्ट धर्मीको देखके स्थाणु अथवा पुरुष होनेका संशय पूर्वही कहागया है दूसरा जब एक अंश या अवयव यथार्थ प्रत्यक्ष होता है परन्तु सामान्य (समान धर्म होने)से उसका अनेकमें होना संभव होनेसे व विशेष अङ्गके प्रत्यक्ष न होनेसे संशय होता है जैसा अभी गौ व गवयका दृष्टान्त कहागया है पूर्ववालेको धर्मीके बाहेर दृश्य होनेसे बहिर्विषयक व ऐसेको जिसमें विशेष अङ्ग या अवयव छिपा रहता है अन्तर्विषयक नामसे कहते हैं ॥ १८ ॥

यथा दृष्टमयथादृष्टत्वाच्च ॥ १९ ॥

जैसा दृष्ट है वैसा दृष्ट न होनेसे भी ॥ १९ ॥

जैसा पूर्वही किसी समयमें कोई पदार्थ दृष्ट (प्रत्यक्ष) हुवा है कालान्तरमें वही वैसा दृष्ट न होनेसे संशय होता है जैसा किसी पुरुषको किसी समयमें केशवान् देखकर कालान्तरमें दूरसे केशरहित देखके यह संशय होवै कि वही पुरुष है वा अन्य है ॥ १९ ॥

संभव होता है. कर्म होनेका निषेध अगले सूत्रमें वर्णन करते है ॥ २३ ॥

नापि कर्माचाक्षुषत्वात् ॥ २४ ॥

चक्षुका विषय वा चक्षुगोचर न होनेसे कर्म भी नहीं है ॥ २४ ॥

कर्म चक्षुगोचर होता है अर्थात् आंखसे देखा जाताहै. शब्द चक्षुका विषय अर्थात् चक्षुगोचर न होनेसे कर्म नहीं है ॥ २४ ॥

गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ॥ २५ ॥

विद्यमान गुणरूपका अपवर्ग (जल्द नाश होना) कर्मके साथ साधर्म्य है ॥ २५ ॥

इस शंकानिवारणके लिये कि उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना) आदि कर्मके समान शब्दका शीघ्रतर (बहुत जल्द) नाश होनेसे शब्दका कर्म होना संभव है. यह कहाहै कि, गुण स्वरूपका अर्थात् गुणस्वरूपशब्दका जल्द नाश होना कर्मके साथ साधर्म्य है. शब्दपदका ग्रहण पूर्वसम्बंध व प्रकरणसे होता है सूत्रमें शेष (बाकी) है. सूत्रका भाव यह है कि, शब्द गुणस्वरूपही है अर्थात् गुणही है. गुण होनेमें जल्द

नाश होनेकी शंका युक्त नहीं है, क्योंकि कर्मही मात्रमें जल्द नाश होनेका ऐकान्तिक नियम नहीं है. सुख व दुःख आदिके साथ दो होने आदिका ज्ञान आदि गुण भी जल्द ... होते हैं इसी प्रकारसे शब्द गुणका नाश होता है. ज- ... अनाश होना गुण व कर्म दोनोंमें होनेसे ऐकान्तिक न ...होनेसे शब्द व कर्मका इस अंशमें केवल साधर्म्य (समधर्म होना) सिद्ध होता है. शब्दका कर्म होना सिद्ध नहीं होता२५

सतो लिङ्गाभावात् ॥ २६ ॥

सत्के (विद्यमानके) लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण)के अभावसे (न होनेसे) सत् नहीं है ॥ २६ ॥

शब्दके सत् वा विद्यमान होनेका लिङ्ग (लक्षण) न होनेसे शब्द सत् (विद्यमान) नही है यह सूत्रका अर्थ है. शब्द सत् नहीं है यह सूत्रमें शेष है. तात्पर्य यह है कि, जो शब्द नित्य विद्यमान होता तो उच्चारणसे पहिले भी उसके सत् होनेका कोई लिङ्ग (कोई लक्षण वा प्रमाण) होता. ऐसा कोई लक्षण नहीं है कि जिससे उच्चारण व श्रवणसे पहिले शब्दका अस्तित्व सिद्ध होवै, शब्दके सत् होनेका लिङ्ग न होनेसे अह सिद्ध होता है कि, शब्द सत् नहीं है अर्थात् नित्य विद्यमान नहीं है, उत्पन्न व नष्ट होता है, अनित्य है, अनित्य होनेसे यद्यपि गुण हो परंतु नित्य आका-

शका विशेपगुण शब्द नहीं होसकता इससे शब्द आकाशका गुण व नित्य नहीं है ॥ २६ ॥

नित्यवैधर्म्यात् ॥ २७ ॥

नित्यके वैधर्म्य (विरुद्धधर्म) होनेसे ॥ २७ ॥

नित्यपदार्थके विरुद्धधर्म शब्दमें होनेसे शब्द नित्य नहीं है अर्थात् नित्यपदार्थ आदिअंतरहित होता है. शब्द उच्चारणसे पहिले नहीं होता व उत्पन्न होकर नष्ट होजाता है. आदि अन्तवान् होनेसे व नित्यके विरुद्ध शब्दका नाश प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेसे शब्द नित्य नहीं है ॥ २७ ॥

अनित्यश्चायं कारणतः ॥ २८ ॥

कारणसे (कारणसे उत्पन्न होनेसे) यह अनित्य है ॥ २८ ॥

यह अर्थात् शब्द कारणसे उत्पन्न होनेसे अनित्य है, क्योंकि जो कार्यरूप कारणसे उत्पन्न होता है वह अनित्य होता है, यथा भेरी व दण्डके संयोग आदि कारणसे उत्पन्न होता है इसी प्रकारसे अन्यत्र भी कारणसे उत्पन्न होना समुझ लेना चाहिये, इससे शब्द अनित्य है ॥ २८ ॥

न चासिद्धं विकारात् ॥ २९ ॥

और विकार होनेसे असिद्ध नहीं है ॥ २९ ॥

शब्दमें विकार होनेसे असिद्ध नहीं है अर्थात् कारणसे उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है. अभिप्राय यह है कि, जो शब्दके कारणवान् होनेमें शंका हो तौ ऐसी शंका करना युक्त नहीं है, क्योंकि शब्दका कारणवान् होना अर्थात् कारणसे उत्पन्न होना असिद्ध नहीं है अर्थात् सिद्ध है. किस हेतुसे सिद्ध है, विकार होनेसे शब्दमें अधिक होना व मन्द होना यह विकार है, विशेषकारणसे अधिक व मन्द होता है. जो कारणजन्य (कारणसे उत्पन्न) न होता तौ शब्दमें विकार न होता एकही स्वरूपसे ज्ञात होता, परन्तु एकरूपसे विद्यमान नहीं रहता. भेरी वा ढोलमें अधिक दण्डके घातसे तीव्र व मन्दसे मन्द होता है इससे कारणसे उत्पन्न होना सिद्ध है ॥ २९ ॥

अभिव्यक्तौ दोषात् ॥ ३० ॥

प्रकट होनेमें दोषसे अर्थात् दोष होनेसे ॥ ३० ॥

कारणरहित शब्दहीसे शब्दकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) होनेमें व्यञ्जकही व्यङ्ग्य होनेका दोष प्राप्त होता है अर्थात् वही प्रकट करनेवालाही प्रकट कियागया हुवा जाता है, वही व्यंजक (प्रकट करनेवाला) व वही व्यङ्ग्य (प्रकटकिया गया) होना असंभव है, ऐसा होना कहीं दृष्ट नहीं है. कारणरहित वही व्यंजक वही व्यङ्ग्य माननेमें यह भी दोष होगा कि, समान देशवाले व समान इन्द्रियग्राह्य शब्दोंके

होनेसे एक अक्षर ककार वा अन्यके उच्चारणके साथही सब वर्ण प्रकट होजाना चाहिये, क्योंकि कोई भेदका कारण न होनेसे सब समानदेशवाले समान इन्द्रियग्राह्य शब्दोंकी समान प्रकटता वा समानही गति होना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता, इससे कारणरहित माननेमें उक्त दोषोंकी प्राप्ति होनेसे शब्दका कारणवान् होना सिद्ध होता है ॥ ३० ॥

संयोगाद्विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः ॥ ३१ ॥

संयोगसे व विभागसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि वा उत्पत्ति होती है ॥ ३१ ॥

संयोग आदिसे शब्द उत्पन्न होनेके दृष्टान्त यह है, जैसे भेरी दण्डके संयोगसे व बाँसके दो खण्ड करनेमें विभागसे व कूप व पक्कमन्दिर आदिमें शब्द करनेसे शब्दसे शब्दकी उत्पत्ति होती है, यह तीन कारण हैं ॥ ३१ ॥

लिङ्गाच्चानित्यः शब्दः ॥ ३२॥

और लिङ्ग होनेसे शब्द अनित्य है ॥ ३२ ॥

लिङ्गशब्द चिन्हवाचक है चिन्ह वा लिङ्गोंसे वर्णोंसे प्रयोजन है लिङ्गसे अर्थात् वर्णलिङ्ग होनेसे वर्णात्मक शब्द नित्य है. वर्णात्मक शब्द जातिमान् होनेपर भी वीणाआ-

रिदिके ध्वनिके समान श्रोत्रग्राह्य होनेसे वीणा आदिके ध्वनिके समान अनित्य है. कार्यरूप वर्णात्मकसे पृथक् कारणरूप आकाश देशमें विद्यमान आकाशगुणके नित्य होनेका अनुमान होता है, परन्तु सूत्रमें वर्णात्मक शब्दकी अनित्यता प्रतिपादन करनेका प्रयोजन है ॥ ३२ ॥

द्वयोस्तु प्रवृत्तेरभावात् ॥ ३३ ॥

परंतु दोकी प्रवृत्तिके अभावसे ॥ ३३ ॥

तुशब्द जो सूत्रमें है उसका अर्थ परन्तु रक्खाहै. तुशब्द वा परन्तुशब्द सूत्रमें पूर्वपक्षके व्यावृत्तिके अर्थ है, अर्थात् शब्द अनित्य नहीं है यह कहनेका तात्पर्य है, शब्दके नित्य होनेमें यह हेतु वर्णन किया है. दोकी प्रवृत्ति न होनेसे अर्थात् जो शब्द नित्य न होता, शीघ्रही नष्ट हो जाता तो दो गुरु व शिष्यमें जो उपदेश अथवा अध्यापक व अध्ययनमें शब्दकी प्रतीति है उसका अभाव होता, क्योंकि जो शब्द अध्यापक (पढानेवाला) पढानेमें उच्चारण करता उनका उच्चारणके पश्चात् जल्द नाश होजानेसे नष्ट शब्दोंका ग्रहण शिष्य न करसक्ता, क्योंकि जो होता है उसीका धारण वा ग्रहण संभव होसकता है इससे शब्द नित्य है. गुरुके अध्यापनमें शब्दके नाश होनेका प्रमाण न होनेसे व उसके पश्चात् कोई नाश करनेवाला कारण सिद्ध न होनेसे शब्दको नित्य मानना चाहिये. यह मीमांसाका मत है कि

वर्णात्मक शब्द नित्य है. जो नित्य न होता तो गुरु शिष्यमें उपदेश व अध्यापनकी प्रवृत्ति न होती ॥ ३३ ॥

प्रथमाशब्दात् ॥ ३४ ॥

प्रथमाशब्दसे ॥ ३४ ॥

वेदमें सामिधेनी जो यज्ञके अग्निवारनेमें ऋचा पढी जाती है उसमें कहा है "त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां" अर्थ तीनवार प्रथमाको व तीनवार उत्तमाको कहा जो शब्द नित्य न होता तो उसी शब्दको तीन वार कहना असंभव होता, क्योंकि जो उच्चारणके पश्चात् नष्ट होगया वह फिर वाच्य नहीं होसक्ता, इससे नित्यता सिद्ध होती है ॥ ३४ ॥

सम्प्रतिभावाच्च ॥ ३५ ॥

पहिचान होनेसे भी ॥ ३५ ॥

शब्दके स्मरण व पहिचानसे भी शब्दकी नित्यता सिद्ध होती है. यथा मैत्र वही श्लोक पढता है जो चैत्र पढता था यह वही अक्षर है, ऐसा बोध बिना शब्दकी नित्यता नहीं होसक्ता ॥३५॥ अब इस पक्षका उत्तर आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं

संदिग्धा सति बहुत्वे ॥ ३६ ॥

बहुत होनेपरभी संदिग्ध हैं ॥ ३६ ॥

वर्णात्मकशब्द नित्य है इसके प्रमाण जो दो गुरु व शिष्यकी प्रवृत्ति न होना आदि प्रमाण कहा है वह बहुत हों तौ भी संदिग्ध (संदेहयुक्त) हैं व अनैकान्तिक है, जैसे नृत्य करनेमें अंगोंमें क्रियाविशेष बहुत व नानाप्रकारसे होती है व स्थिर नहीं रहती, इसीप्रकारसे शब्दमें जानना चाहिये, अन्यथा वह नाच सीखता है वह तीनवार नाचता है मैत्र उसीतरह नाचता है, जैसे चैत्र इन सब क्रियाओंकी नित्यता सिद्ध होना चाहिये परन्तु क्रिया नित्य नहीं है वा नहीं होती. क्रियाके समान वर्णात्मक शब्दका भी नित्य होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३६ ॥

संख्याभावः सामान्यतः ॥ ३७ ॥

सामान्यसे संख्याका होना है ॥ ३७ ॥

जो यह शंका हो कि पचास वर्ण हैं आठ अक्षरका मंत्र है, तीन अक्षरका मंत्र है, ऐसा कहना यथार्थ नहीं होसक्ता. उच्चारणभेदसे वर्णोंकी संख्या अनन्त होना चाहिये, इसके समाधानके लिये सूत्रमें यह कहा है कि, संख्याका होना सामान्यसे है अर्थात् यद्यपि ककार गकार आदि उच्चारणभेदसे अनन्त हो परन्तु एकजाति ककार गकार आदि मानकर पचास आठ तीन संख्याओंका व्यवहार होता है, जैसे द्रव्य नव गुण चौबीसकी संख्या सामान्यसे कही जाती है, कार्य-

रूप द्रव्य व गुण अनन्त है परन्तु सामान्यसे (जातिभेदसे) नव द्रव्य चौवीस गुण आदि कहे गये हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये वाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीमत्प्यारेलालात्मजप्रभुदयालुविरचिते द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमान्हिकम् ॥ २ ॥

समाप्तश्चायं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयाध्यायप्रारंभः ॥

प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ॥ १ ॥

इन्द्रियोंके अर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

द्वितीय अध्यायमें बाहरके द्रव्योंका वर्णन करके उद्देशक्रमके अनुसार अब आत्मपरीक्षाके निमित्त भूमिका रचना करनेके प्रयोजनसे यह वर्णन किया है कि इन्द्रियोंके अर्थ (विषय) जो गंध रस रूप स्पर्श शब्द हैं यह प्रसिद्ध हैं, अर्थात् यह साधारण सब जानतेहैं कि नासिकासे ग्राह्य अर्थ गंध, नेत्रसे ग्राह्य अर्थ रूप, रसनासे ग्राह्य अर्थ रस, त्वचा(चमडा)से ग्राह्य अर्थ स्पर्श, कर्णसे ग्राह्य अर्थ शब्द हैं. तात्पर्य यह है कि इन्द्रियोंके अर्थ तो प्रसिद्धही हैं इससे

विशेष विचारके योग्य नहीं हैं. अब इनसे विशेष जो अप्रसिद्ध है उसका विचार करना चाहिये ॥ १ ॥

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ॥ २ ॥

इन्द्रियोंके अर्थोंकी प्रसिद्धि (सामान्यबोध) इन्द्रियके अर्थोंसे भिन्न अर्थका हेतु (लिङ्ग) है ॥ २ ॥

इन्द्रियके अर्थोंका बोध इन्द्रियके अर्थ जो रूप रस गंध स्पर्श शब्द हैं उनसे भिन्न अर्थ जो आत्मा है उसका लिङ्ग है यह अभिप्राय है. यद्यपि ज्ञानही आत्माका मुख्य लिंग होना इसमें विवक्षित है, तथापि इन्द्रियोंसे ज्ञान होनेमें रूप आदि साक्षात्कार होना साधारण व अतिप्रसिद्ध है, इससे इन्द्रियके अर्थोंकी प्रसिद्धिको लिङ्ग होना कहा है, यह प्रसिद्धि (रूप रस आदि इन्द्रियविषयोंका बोध) कार्यरूप घटके समान अथवा गुणरूप वा क्रियारूप किसीमें अवश्य आश्रित होगी व यह प्रसिद्धि इन्द्रिय करणद्वारा होती है, अर्थात् प्रसिद्धिके करण इन्द्रिय हैं, करण कर्तासे प्रयोजित होता है, जैसे कुल्हारी वसूला वा अन्य हथियार करणरूप विना कर्ताके स्वतः (आपसे) काम नहीं देसके कर्ताके अधीन होता है, इसी प्रकारसे इन इन्द्रियोंका कोई प्रयोजककर्ता होना चाहिये, इससे जिसमें यह प्रसिद्धि

आश्रित है व जो चक्षु घ्राण आदि इन्द्रियोंका प्रयोजक (प्रेरणकरनेवाला) है वह आत्मा है इसतरह विचारसे इन्द्रियोंके अर्थोंकी प्रसिद्धि इन्द्रिय अर्थोंसे भिन्न आत्माके बोधका हेतु वा लिङ्ग है. अब यह शंका करके शरीरही प्रसिद्धिका आश्रय मानना चाहिये, क्योंकि इन्द्रिय व शरीरहीके साथ विषयोंके ज्ञान होनेका सम्बंध देखाजाता है, अन्य आश्रय कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन है चेतनतारूप आदिके तुल्य शरीरका कार्य होनेसे शरीरहीका गुण वा इन्द्रियोंका गुण है इसका उत्तर आगे सूत्रमें वर्णन करते है२

सोऽनपदेशः ॥ ३ ॥

वह अनपदेश है अर्थात् हेत्वाभास है ॥ ३ ॥

प्रसिद्धि शरीर वा इन्द्रियका कार्य होनेसे प्रसिद्धि शरीरमें आश्रित शरीरका गुण है, इस प्रकारसे प्रसिद्धिको शरीरका गुण होना सिद्ध करनेमें जो शरीरका कार्य होना हेतु मानना है, वह हेतु अनपदेश है (हेत्वाभास) है, क्योंकि जैसे देहकारणसे उत्पन्न घटपट आदि देहके कार्य होनेसे देहके आश्रित वा देहके गुण नहीं होते, इसीप्रकारसे प्रसिद्धि (इन्द्रियजन्यज्ञान)के शरीरसे सिद्ध होनेसे प्रसिद्धिका शरीरका गुण होना वा शरीरमें आश्रित होना सिद्ध नहीं होता इससे उक्त हेतु युक्त व ऐकान्तिक न होनेसे हेत्वाभास है॥३॥

कारणाऽज्ञानात् ॥ ४ ॥

कारणोंके ज्ञानरहित होनेसे अथवा कारणोंमें ज्ञान न होनेसे ॥ ४ ॥

शरीरके कारण जो पृथ्वी जल आदिके अंणु है अथवा कर चरण आदि अवयव हैं उनमें ज्ञान नहीं है. जो गुण कारणमें होता है वही कार्यमें होसक्ता है, शरीरके कारणोंमें ज्ञान न होनेसे कार्य शरीरमें भी ज्ञान होना संभव नहीं होता, जो यह मानाजाय कि शरीरके कारणोंमें भी चैतन्य है तो एकमति होना संभव न होनेसे माननेके योग्य नहीं है, क्योंकि बहुत चेतनोंका एकमति होना विदित नहीं होता, तथा अन्य हेतु यह है कि हाथ कटजानेपर जो कर्म उससे हुवाथा उसका स्मरण न होना चाहियें, क्योंकि अन्यके कियेको अन्य (और वा दूसरा) स्मरण नहीं करसक्ता और शरीरके नाश होनेके पश्चात् उस शरीरसे किये हुये पाप व पुण्यका भोग न होना चाहिये. जो सुख व दुःखका होना अकस्मात् मान लिया जावें तो विना कारणके कार्य होना संभव न होनेसे मिथ्या होगा और जो सत्यही माना जाय तो कियेहुयेकी हानि व न कियेहुयेका भोग होनेका प्रसङ्ग होगा, ऐसा अंगीकार करना युक्त नहीं है. इससे कारणोंके ज्ञानरहित होनेसे कार्य शरीरका गुण ज्ञात नहीं है और न होसकता है ॥ ४ ॥

कार्येषु ज्ञानात् ॥ ५ ॥

कार्योंमें ज्ञानसे ॥ ५ ॥

कारणोंमें (पृथिवी आदिके अणुओंमें) ज्ञान न होनेसे उनके कार्यशरीर व इन्द्रियोंमें ज्ञान नहीं होसकता, परन्तु शरीर वा इन्द्रियोंसे रूपआदि विषयोंका ज्ञान होता है कार्योंमें (कार्यरूप शरीर व इन्द्रियोंमें) ज्ञान होनेसे यह विदित होता है कि जिसके सम्बंधसे कार्यशरीर व इन्द्रियोंमें ज्ञान होता है वा है वह शरीर व इन्द्रियोंसे भिन्न है॥५॥

अज्ञानाच्च ॥ ६ ॥

अज्ञानसे भी ॥ ६ ॥

अज्ञानसे (अज्ञान होनेसे) भी यह ज्ञात होता है कि ज्ञान शरीर व इन्द्रियोंका गुण नहीं है, तात्पर्य यह है कि मृतशरीरमें ज्ञानका अभाव होता है जो शरीरका गुण ज्ञान होता है तो मरनेके पश्चात् भी शरीरमें अवश्य रहता द्रव्यका गुण द्रव्यके होतेहुय नष्ट न होना चाहिये, जीते हुयेमें ज्ञानका होना प्रत्यक्ष होता है, मरनेपर अज्ञान होना भी प्रत्यक्ष होता है इससे शरीरके अज्ञान (ज्ञानरहित) होनेसे भी ज्ञान शरीरका गुण नहीं है यह सिद्ध होता है॥६॥

अन्यदेव हेतुरित्यनपदेशः ॥ ७ ॥

हेतु अन्यही होता है इससे अनपदेश (हेत्वाभास) है ॥ ७ ॥

यह आशंका निवारणके लिये कि चक्षु (नेत्र) कर्ण आदि करण होनेके द्वारा अधिष्ठाताका अनुमान करना युक्त नहीं है, क्योंकि चक्षु कर्ण आदि इन्द्रियोंके साथ तादात्म्य (एकरूप होना) ज्ञात होता है और न आत्मासे उनकी उत्पत्ति पाईजाती है, विना इन दोके सिद्ध हुये आत्मा व इन्द्रियोंका अविनाभाव (विना एकके दूसरेका न होना) सम्बंध होना सिद्ध नहीं होता व विना अविनाभाव सम्बंध इन्द्रिय व शरीरद्वारा आत्माके होनेका अनुमान नहीं होसक्ता. सूत्रमें यह कहा है कि हेतु अन्यही होता है अर्थात् हेतु (जिससे साध्यसिद्ध किया जाता है) साध्यसे भिन्न होता है इन दोनोंका तादात्म्य नहीं होता, अन्यथा साध्य व हेतुमें कुछ विशेषता न रहै इससे साध्यात्मक (साध्यरूप) ही हेतुको मानकर हेतु मानना अनपदेश (हेत्वाभास) है क्योंकि वही साध्य व वही साध्यका हेतु वा साधक मानना प्रमाण व युक्तिविरुद्ध है ॥ ७ ॥

अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ॥ ८ ॥

अर्थान्तर (सम्बंधरहित भिन्न पदार्थ) अर्थान्तरका (भिन्न पदार्थका) अनपदेश (हेत्वाभास) होता है॥८॥

जिन पदार्थोंमें एक दूसरेके साथकुछ सम्बंध नहीं है वह एक दूसरेके हेतु नहीं होसकते ऐसे पदार्थोंको एक दूसरेका हेतु मानना अनपदेश (हेत्वाभास अर्थात् दुष्ट वा मिथ्या-

हेतु) है, जैसे घोडाके पास धूम होतेहुये देखकर फिर कभी धूम (धुवा) देखकर धूमको घोडा होनेका हेतु मानना हेत्वाभास है-अर्थात् धूमसे घोडाका अनुमान नहीं होसकता, क्योंकि एक दूसरेके साथ कुछ सम्बंध नहीं है, धूमका अग्निके साथ सम्बंध है, इससे अग्निके अनुमानका हेतु होसकता है अन्यपदार्थका नहीं होसकता अज्ञानसे वा भ्रमसे सम्बंधरहितको हेतु मानना वा छलसे ऐसेको हेतु कहना अनपदेश (हेत्वाभास) होता है इस कथनका अभिप्राय यह है कि, जिसप्रकारसे अर्थान्तर अनपदेश होता है इसप्रकारसे हमारे पक्ष (आत्माके सिद्धकरनेके पक्ष) मे अनपदेश (सम्बंधरहित हेतु वा मिथ्याहेतु) नहीं है. शरीर व इन्द्रियमें ज्ञान होना सिद्ध न होनेसे आत्माका अनुमान करना एकप्रकारका यथार्थ अनुमान है, क्योंकि अनुमानके लिये कई प्रकारके लिङ्ग है लिङ्गोंके भेद आगे वर्णन करते है॥८॥

संयोगिसमवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च ॥ ९ ॥

संयोगि समवायि एकार्थसमवायि व विरोधि॥९॥

संयोगि आदि यह चार प्रकारके लिङ्ग हे यह सूत्रका अभिप्राय है. संयोगसे सम्बंध रखनेवाला लिङ्ग (हेतु वा चिन्ह) संयोगि है, जैसे रथोंको विलक्षण गतिसे चलते हुये

देखकर यह अनुमान करना कि यह देश सारथिमान् है अर्थात् इस देशमें अच्छे सारथी हैं, यह संयोगि लिङ्ग है. क्योंकि रथोंके विलक्षण वा अच्छी गतिमें अच्छे सारथीके होनेका संयोग है. समवेत(समवाय अर्थात् नित्यसम्बन्ध-संयुक्त)का लिङ्ग समवायि है, जैसे किसी विशेष पशुका कोई अवयव (अङ्ग)विशेष देखकर उस पशुके होनेका अनुमान होना इत्यादि समवायि लिङ्ग है. एकही द्रव्यमें पदार्थमें समवायसंयुक्त रूप स्पर्श आदिमेंसे एकके जाननेसे अन्यकी (दूसरेकी) अनुमिति होना एकार्थसमवायि है. परस्पर विरोधवाले पदार्थोंमें एकके भावसे (होनेसे) दूसरेके अभावके अनुमितिका हेतु वा लिङ्ग विरोधि है, विरोध-सम्बन्धीको विरोधि कहते हैं, एकार्थसमवायि व विरोधिको आगे सूत्रमें स्पष्ट वर्णन किया है, इससे यहाँ दृष्टान्त वर्णन नहीं किया व बुद्धिसे जहाँ उनकी प्राप्ति हो विचारलेना चाहिये ॥ ९ ॥

कार्यं कार्यान्तरस्य ॥ १० ॥

कार्य कार्यान्तर(अन्यकार्य)का अर्थात् कार्यान्तरका लिङ्ग होता है ॥ १० ॥

एकही अर्थमें सम्बन्ध होनेसे एक कार्य अन्य कार्यके होनेका लिङ्ग होता है, यथा रूपकार्य अन्य स्पर्शकार्यका लिङ्ग होता है, क्योंकि जो रूपवान् होता है उसमें स्पर्श अवश्य है ।

होता है तथा अन्य कार्योंमें भी जो एक पदार्थसे सम्बन्ध रखते है. एक कार्य दूसरे कार्यका लिङ्ग होता है, यथा नींबू नारङ्गी आदिमें समवाययुक्त जो उनके विशेष रूप गन्ध रस आदि कार्य गुण हैं उनमेंसे एक सुगन्धमात्र ज्ञात होनेसे विना रूप आदि प्रत्यक्ष हुये सुगन्धविशेषसे रूप रस आकारविशेषका अनुमानसे ज्ञान होजाता है कि यह नींबूकी गन्ध है, जिसमें यह गन्ध है वह इस रूप रस आकारवाला पदार्थ है इत्यादि यह एकार्थसमवायि लिङ्ग है १०

विरोध्यभूतं भूतस्य ॥ ११ ॥

भूतका (हुयेका) अभूत (न हुवा) विरोधि है ११

जो अभूत (न हुवा) भूत (हुये) पदार्थका लिङ्ग होता है वह विरोधि है अर्थात् उसको विरोधि लिङ्ग कहते हैं, यथा मेघ होनेपर जो वृष्टि न हुई तो न हुई, वर्षा. वायु व मेघके संयोग हुयेका लिङ्ग है. क्योंकि वायुके संयोगविशेषसे जलका गिरना रुकजानेसे या मेघोंके छिन्न भिन्न होजानेसे वृष्टि नहीं होती, तथा इसदेशमें नकुल (न्यौला या न्योरा) नहीं हैं इससे यह देश निर्भय सर्पवाला है. नकुलसे सर्पको भय होता है, क्योंकि सर्पका विरोधी है. नकुल न होनेसे देशको निर्भय सर्पवाला होना अथवा सर्पोंका निर्भय होना जानना आदि विरोधिलिङ्गके उदाहरण हैं ॥ ११ ॥

भूतमभूतस्य ॥ १२ ॥

भूत अभूतका अर्थात् भूत अभूतका लिङ्ग है १२

यह दूसरा विरोधिका भेद है, यथा भयरहित सर्पवाला होनेसे यह देश नकुलशून्य (नकुलसे रहित) है, यह भूत (हुये या स्थित) भयरहित सर्पोंके होनेसे अभूत (न हुवा या अप्राप्त) अर्थात् नकुल न हुये वा नकुलरहित देशका अनुमान करना यह विरोधिलिङ्ग है. अथवा भूत अभूतका दृष्टान्त यह समुझना चाहिये, यथा देवदत्तने यथार्थ न्याय किया यह ज्ञात होनेमें हुये न्यायका बोध पक्षपात न करने लांच न लेनेका साधारण लिङ्ग है अर्थात् हुये न्यायसे न हुये पक्षपात व उत्कोचग्रहण (लांच लेना)का अनुमान होताहै यह विरोधि है. क्योंकि लांच लेने व पक्षपातसे अन्याय होताहै, न्यायके विरोधि है इससे यह विरोधिलिङ्ग है. यदि यह शङ्का हो कि अर्थापत्तिहीसे अर्थात् न्याय होना कहने वा जाननेहीसे अन्याय व पक्षपात न होना ज्ञात हो जाताहै, फिर अन्य विरोधी नाम कहनेका क्या प्रयोजन है? सो इसका उत्तर यह है कि, इस शास्त्रमें अर्थापत्ति उपमान शब्द प्रमाणको अनुमानहीके अन्तर्गत माना है इससे अनुमानके कई प्रकारके भेद वर्णन किये हैं अनुमानहीमें यह सब आजाते हैं इससे शंका करना युक्त नहीं है ॥ १२ ॥

भूतो भूतस्य ॥ १३ ॥

भूत भूतका ॥ १३ ॥

भूतका भूत लिङ्ग होना यह तीसरे प्रकारका विरोधी है. इसका दृष्टांत यह है, यथा विस्फूर्जित (फूलते क्रोधित फुफकार छोंडते हुये) सर्पको देखकर झाडीके अन्तरमें नकुल वा अन्य कोई सर्पका विरोधी है यह अनुमान होताहै. भूतशब्द यहां विद्यमानही अर्थका वाचक ग्रहण किया जाताहै. किंचित् या सूक्ष्म भूतकालका सम्बन्ध होनेसे भूत कहाहै. वर्तमानकालका परिमाण बहुतही थोडा केवल भूत व भविष्यत्का भेददर्शक (जनानेवाला) मात्र होताहै. यथा कोई शब्द जो मुखसे उच्चारित होगया वह भूत होजाता है व जिस शब्दका उच्चारण किया जाता है, जबतक उसका उच्चार पूर्ण वा समाप्त नहीं हुवा उतनाही उसका वर्तमानकाल है, व जिसका उच्चार किया जायगा वह भविष्यत् है, इसी प्रकारसे सर्पको क्रोधित हुये देखकर व नकुलभी सर्पको क्रोधित देखनेसे पूर्वही विद्यमान होगया है वा रहाहै तब सर्पको क्रोध हुवा है, इससे सूक्ष्म रूपसे भूतका सम्बन्ध होनेसे भूतशब्द कहा गया है. क्योंकि सर्पमात्रको देखकर नकुलके होनेका अनुमान नहीं होता. जब प्रथम क्रोधित हुवा देखा जायगा उसके पश्चात् अनुमान किया जायगा, इसीप्रकारसे अन्यत्र विद्यमान विरोधीके प्रत्यक्ष होनेसे अ-

प्रत्यक्ष विरोधीके अनुमान करनेमें भूतका लिङ्ग भूत होना यह तीसरे प्रकारका विरोधिलिङ्ग समुझना चाहिये १३

प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ॥ १४ ॥

अपदेश (हेतु) के प्रसिद्धि (व्याप्ति वा व्याप्तिज्ञान) पूर्वक होनेसे ॥ १४ ॥

स्मरण की गई व्याप्तिसे विशिष्ट जो हेतु कहा जाताहै उसीको प्रसिद्धिपूर्वक अपदेश (हेतुवचन) कहते हैं. अपदेश यथार्थहेतु वा हेतुवचनको कहते हैं, यथार्थहेतु प्रसिद्धि पूर्वकही होताहै. जो प्रसिद्धिपूर्वक हेतु होताहै उससे जो अनुमान किया जाताहै वह प्रमाणरूप सत्य होताहै. पूर्वमें कहे हुये संयोगिसमवायि, एकार्थसमवायि, विरोधि अपदेश (यथार्थ व्याप्तिसहित हेतु) हैं इससे श्रोत्र आदि करणोंसे अधिष्ठाताका तथा ज्ञानगुणसे उसके आश्रय आत्माका अनुमान करना जो कहा गया है इन सबमें व्याप्ति है, व्याप्ति होनेसे अनुमान यथार्थ है, परन्तु शरीरके कार्य होनेसे शरीरहीका गुण ज्ञान है यह कहनेवालेका हेतु मिथ्या है, क्योंकि हेतु प्रसिद्धिपूर्वक नहीं है अर्थात् व्याप्तिका अभाव है, ज्ञान व शरीरका सहचार सिद्ध नहीं होता. अब व्याप्ति क्या पदार्थ है यह जाननेके लिये व्याप्तिको वर्णन करतेहैं. साध्य (सिद्धकरनेके योग्य) व साधन (जिस हेतुसे सिद्ध

किया जाय) इन दोनोंका अथवा साधनमात्रके नियत धर्मका व्यभिचाररहित साथ सम्बन्ध रहनेको व्याप्ति कहतेहैं, जैसे धूम व अग्निका सम्बन्ध व्याप्ति है परंतु प्रथम अग्निकारणसे धूम उत्पन्न होताहै, फिर विना अग्निके सम्बन्ध अग्निसे भिन्न हो दूरदेशको चलाजाता है और यह भी नियम नहीं है कि अग्नि सदा धूमहीसहित हो ईंधनसे जलका अंश धूमरूपसे निकलजानेपर अग्नि धूमरहित रहजाता है. तपेहुये धातुमें अग्नि वा तेज धूमरहित होता है. जलका अंश धूमरूपसे निकलनेमें प्रमाण यह है कि जितनाही ईंधनमें जलका अंश अर्थात् आर्द्रता (ओदाई) अधिक होती है उतनाही धूम अधिक होता है. जितनाही कम होता है उतनाही धूम कम होता है. उक्त (कहेहुये) प्रकारसे विना धूमके भी अग्नि व विना अग्निके भी धूम होता है इससे अग्नि व धूमका सहचार न मानना चाहिये, इस आशंकाका उत्तर यह समुझना चाहिये कि, पीछे पृथक् भी अग्नि व धूम रहते है परन्तु यह धर्म नियत और निश्चित है कि धूम

---

१ साधनमात्रके नियतधर्मका सहचार कार्यमे होता है, कार्य विना कारणके नहीं होता, कारण विना कार्यके भी होता है इससे कार्य कारणसहितही होनेसे कार्यसाधनमे कारणके अनुमान करनेमें साधनमात्रका नियतसहचार है (व्याप्ति) है दोनोंका सहचार (साथ रहना) पृथिवी व गन्ध, अग्नि व प्रकाश आदिमें है क्योंकि गन्धविना पृथिवी व पृथिवीविना गन्ध दोनों एक दूसरे पृथक् नहीं रहते, ऐसही प्रकाश अग्नि आदिमें समुझना चाहिये ।

विना अग्निके उत्पन्न नहीं होता, इस सहचार (साथ होनेके सम्बन्ध)से विशेषप्रकारका धूम अग्निसे उठते हुयेका जिससे अग्निके होनेका भ्रमरहित अनुमान हो,. बुद्धिहीसे विचार व ग्रहण करना चाहिये इसमें अधिक विस्तारसे लिखनेमें विशेप फल नहीं है. विना अग्निके धूम उत्पन्न नहीं होता यह नियतधर्मका अग्नि व धूमके साथ सम्बन्ध होना व्याप्ति है. कोई आधारआधेयसम्बन्धको अर्थात् आधाररूप शक्तिमानमें आधेयरूप जो शक्तिसम्बन्ध है उसको व्याप्ति कहते है, यथा अग्निमे धूम उत्पन्न करनेकी शक्ति है इसशक्ति आधेयका उसका आधार अग्निके साथ जो सम्बन्ध है वह व्याप्ति है. इसीप्रकारसे अन्यत्र (औरमें) समुझना चाहिये. यथा ज्ञानगुणका आधार आत्मा है अर्थात् आत्माहीमें ज्ञान रहताहै अथवा आत्माकी शक्ति है, आत्मा ज्ञानशक्तिमान् (ज्ञानशक्तिवाला) है इससे आत्मा व ज्ञानमें आधारआधेयभावसे अथवा नियतधर्मभावसे जैसा पूर्वही कहा गया है सहचार (साथ रहनेका नियम) है यही व्याप्ति है, इस व्याप्तिके यथार्थ होनेमें अनुमान सत्य होता है, व जिस व्याप्तिका साध्यसे भिन्न अनेकमें सम्बन्ध होता है वा व्याप्तिज्ञान भ्रमसंयुक्त होता है उस व्याप्तिमें अनैकान्तिकदोप होने वा भ्रम होनेसे उसके द्वारा जो अनुमान होता है वह भी मिथ्या होनेसे प्रमाणकरनेयोग्य नहीं होता जैसा आगे वर्णन करतेहै ॥ १४ ॥

अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसनसंदिग्धश्चा- नपदेशः ॥ १५ ॥

अप्रसिद्ध अनपदेश है व असन व संदिग्ध भी अनपदेश है अर्थात् अप्रसिद्ध, असन व संदिग्ध तीन प्रकारका अनपदेश (हेत्वाभास) है ॥ १५ ॥

अप्रसिद्धको मुख्य मानकर प्रथम कहकर पीछे असन व संदिग्ध दो और भी कहनेके अभिप्रायसे द्वितीयवार अन-पदेशपद व चकारको सूत्रमें कहा है. अप्रसिद्ध अनपदेश वह है जो व्याप्त न हो वा जिसके साथ व्याप्तिका ग्रहण न हो वा व्याप्तिके विरुद्ध हो, इसप्रकारसे व्याप्यत्वके असिद्ध व विरुद्धके संग्रहको अप्रसिद्ध कहतेहैं व जो पक्षमें न हो वा पक्षका धर्म न हो उसको असन कहते हैं, यह कहीं स्वरूपके अभावमें व कहीं संदेह व सिद्धके साधनकी इच्छाके अभावमें होता है, व संदिग्ध वह है जो पक्षमें साध्यके सत् व असत् दोनों कोटिसम्बन्धी होनेसे संशयको उत्पन्न करे यह संशय कहीं समानधर्म जानने वा विचारनेसे कहीं असाधारण धर्म जाननेसे व कहीं पक्षहीमें साध्य व साध्यका अभाव दोनोंके साथ हेतुका साहचर्य्य (साथप्रवृत्ति या सम्बन्ध) होनेके ज्ञानसे होता है, इन तीनमेंसे आदिका साधारण अनैकान्तिक है, अर्थात् साधारण पक्षमात्रमें साधनहेतु

घटित न होने व पक्षसे भिन्नमें भी घटित होनेसे कुछ सिद्धान्त नहीं होता इससे साधारण अनैकान्तिक है, द्वितीय असाधारण अनैकान्तिक है व तृतीय अनुपसंहारी (अभावरूप) है ॥ १५ ॥

यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः ॥ १६ ॥

जिससे विषाणी (सींगवाला)है तिससे घोडा है अर्थात् इस हेतुसे कि इसके सींग हैं यह घोडा है१६

इस सूत्रमें एकप्रकारके हेत्वाभासका उदाहरण वर्णन किया है. सींग होनेके हेतुसे घोडा सिद्ध करना सर्वथा असिद्ध व विरुद्ध है, क्योंकि घोडेके सींग न होना प्रत्यक्षसे सिद्ध है इससे सींग होनेका हेतु हेत्वाभास है अर्थात् मिथ्या वा दुष्ट हेतु है. अब यह जानना चाहिये कि पांचप्रकारके हेतुमें दोष होनेसे पांच हेत्वाभास होते हैं. जहां ऐसा कथन हो कि शश (खरहा) आदि पक्ष हो अश्वत्व (घोडाहोना) साध्य हो व विषाणीहोना हेतु हो जैसा कि सींग होनेसे घोडा होना कहा है वहां पांचो हेतुदोष हैं ऐसा समुझना चाहिये. ऐसा असंभव हेतु कहना ही मिथ्याज्ञान वा अज्ञानसे होता है. साध्य व हेतुसे कुछ सम्बन्ध नहीं है. अब जहां कुछ हेतुका सम्बन्ध होता है इससे जो हेतु नहीं है परन्तु हेतु ऐसा होनेका भ्रम होता है, ऐसे

धारण कहतेहैं, यथा आकाश नित्य है शब्दका आश्रय होनेसे इस अनुमानमें शब्दका आश्रय नित्यपरमाणु आदि हैं अर्थात् शब्द नित्यही पदार्थमें रहता है अथवा शब्दका आश्रय अनित्य घट आदि है, यह साधारणसे ज्ञात नहीं होता अर्थात् यह हेतु न निश्चयसे सपक्ष (नित्यद्रव्य)में रहता है और न विपक्ष (अनित्य द्रव्य)में रहता है, इससे असाधारण अनैकान्तिक (सव्यभिचार) है. जिस हेतुसे साध्यके सिद्ध होनेका अभाव हो साध्यहीका विरोधी हो वह विरुद्ध है, जैसे यह कहाजाय कि शब्द नित्य है. जिससे उत्पन्न होताहै अर्थात् उत्पन्न होनेसे तो इसमें हेतु विरुद्ध है, क्योंकि जो उत्पन्न होताहै वह अनित्य होताहै. जो हेतु अपने पक्षके सिद्ध करनेके लिये कहाजाता है अर्थात् साध्यके सिद्ध होने वा निश्चयके अर्थ कहा जाताहै परन्तु अन्य विरोधी हेतुके प्रतिबंध (रोक)से निश्चयको उत्पन्न न करसके किन्तु यह (पक्ष) पक्षसाध्यवाला है अथवा साध्याभाववालाहै ऐसे संदेहको उत्पन्न करै उसको संदिग्ध वा प्रकरणसम वा सत्प्रतिपक्ष कहतेहै. यथा शब्द नित्य है जिससे नित्य आकाशका गुण है अर्थात् नित्य आकाशका गुण होनेसे इस नित्य होनेके हेतुका विरोधी वा प्रतिबन्धक यह हेतु होनेसे कि शब्द अनित्य है, जिससे घट आदिके समान उत्पन्न कार्य है अर्थात् घटके तुल्य कार्य होनेसे यह संशय

होता कि शब्द नित्य है अथवा अनित्य है यह प्रकरणसम है, जो हेतुभी साध्यके समान किसी अन्य हेतुसे सिद्ध करनेके योग्य हो उसे साध्यसम वा असिद्ध कहते हैं, यथा छाया द्रव्य है चलनेसे इसमें चलना क्रिया जो हेतु है यही साध्य (सिद्ध करने योग्य) है, सिद्ध नहीं है, अर्थात् यह साध्यहै कि छायामें चलनेकी क्रियाहै वा नहीं है यह सिद्ध होनेके पश्चात् छायाका द्रव्य होना सिद्ध होसकताहै, ऐसे हेतुको सिद्ध न होनेसे असिद्ध व साध्यके समान साध्य होनेसे साध्यसम हेत्वाभास कहतेहैं. असिद्धके तीन भेद और आश्रयासिद्धि, स्वरूपासिद्धि, व्याप्यत्वासिद्धि, आधुनिक ग्रन्थकारोंने वर्णन किया है परन्तु बहुत विस्तार करना इष्ट न होने व जिज्ञासुओंको विशेष फलदायक न समुझनेसे नहीं लिखा. विशेष फल न होना यह है कि सब अंश सिद्ध करने वा किसीमें कुछ अंश सिद्ध करनेसे तीनोंमें साध्यके समान हेतुके सिद्ध करनेकी आवश्यकता होतीहै इससे लक्षणहीसे उक्त तीनों प्रकारमें साध्यसम होनेका ज्ञान होसकता है. भिन्ननामसे वाच्य हों वा न हों, जो हेतु साध्यकी सिद्धि करनेका समय निवृत्त होजानेपर अर्थात् साध्यका सम्बन्ध निवृत्त होनेपर साध्यकी सिद्धिके लिये कहा जाय उसको अतीतकाल वा बाध कहतेहैं, यथा संयोगसे व्यङ्ग्य (प्रकट होने योग्य) होनेसे शब्द नित्य है

प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र लिङ्गम् ॥ १९ ॥

अपने आत्मामें दृष्ट (ज्ञातहुई) प्रवृत्ति व निवृत्तिपर (अन्य) आत्मा होनेमें लिङ्ग है ॥ १९ ॥

अपने आत्माके अनुमानको वर्णन करके अब पर (अन्य) आत्मा होनेका अनुमान वर्णन करतेहैं. इच्छा व द्वेषसे प्रवृत्ति व निवृत्तिरूप प्रयत्नविशेष होते हैं उनसे हितकी प्राप्ति व अहितके त्यागके अर्थ चेष्टा लक्षणरूप शरीरके कर्म उत्पन्न होतेहैं, ऐसाही परशरीरमें चेष्टा देखकर यह अनुमान होता है कि, जैसे हमारी चेष्टा प्रयत्नसे उत्पन्न होतीहै इसी प्रकारसे यह चेष्टा प्रयत्नसे उत्पन्न हुई है, और प्रयत्न आत्मासे उत्पन्न होता है जैसे हमारे आत्मासे प्रयत्न होता है वा आत्मामें होता है, इसी प्रकारसे अन्य आत्मामें होनेसे हमारे आत्माके समान परके आत्माका भी होना सिद्ध होता है ॥ १९ ॥

इति श्रीवैशेषिकदर्शने तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ॥ २ ॥

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ॥ १ ॥

आत्मा व इन्द्रियके अर्थोंके सन्निकर्ष होनेमें ज्ञानका भाव (होना) व अभाव (न होना) मनका लिङ्ग (मनके होनेका लक्षण) है ॥ १ ॥

पूर्व आह्निकमें हेतु व हेत्वाभासको वर्णन किया है. अब
आत्मपरीक्षा वर्णन करनेमें आत्मपरीक्षामें उपयोगी जान-
कर प्रथम मनकी परीक्षाको वर्णन किया है, अर्थात परन्तु
जो मन ज्ञानका करण वर्णन किया जायगा र्थात् इच्छासे
रित होकर मन अन्य इन्द्रियोंसे भिन्न केव अभिमत अर्थका
साथ जो अभिमत विषयका ग्राहक है, सम्बन्ध होताहै इससे
है वह आत्मा है यह सिद्ध होगा. इस होनेसे मनका अणु
घन करके अर्थात् आत्माकी परीक्षा
प्रमाणमें उपयोगी समुझकर मनत्वे वायुना व्या-
है कि, आत्मा व इन्द्रियके अ
विषयके साथ सन्निकर्ष होने होना) व नित्यत्व (नित्य-
न्निकृष्ट होनेमें ज्ञानका) व्याख्यात हैं २
अभाव होता है वह

जब नेत्र इन्द्रियमें सन्निकृष्ट हो किसीका मन रूपमें आस-
क्त हो जाता है तब दूसरेके कहे हुयेको नहीं सुनता. जब
अच्छा गान सुननेमें वा किसी विषयमें श्रवणइन्द्रिय वा अन्य
इन्द्रियके साथ गान वा अन्य विषयविशेषमें आसक्त हो
जाताहै तब कोई वस्तु शरीरमें साधारण लगजाय वा शरी-
रसे पृथक् होजाय. कोई समीपमें कुछ कहै उसको वह नहीं
जानता, इस प्रकारसे सन्निकर्ष होनेमें ज्ञानका भाव (होना)
व सन्निकर्ष न होनेमें ज्ञानका अभाव (न होना) ज्ञात हो-
ने मनका अणु (सूक्ष्म) होना सिद्ध होताहै, क्योंकि जो
मन वा व्यापक होता तो सब इन्द्रियोंके साथ सदा सं-
युक्त रहनेसे सब इन्द्रियोंके विषयको जानता. अब यह शङ्का
है कि, ~ करणधर्म होनेसे मनसे अनेक पदार्थका ज्ञान
प्रकारसे यह · मनके विभु (व्यापक) होनेमें दोष नहीं
आत्मासे उत्पन्न हो न विशेषगुणशून्य (रहित) द्रव्य होनेसे
है वा आत्मामें होता ज्ञानके असमवायिकारणके संयोगका
होनेसे हमारे आत्माके रू से आत्माके समान है. स्पर्शके सदा
सिद्ध होता है ॥ १९ ॥ ाशके समान है, इन विभुपदार्थोंके
ी विभु है यह अनुमान होताहै.

इति श्रीवैशेषिकदर्शने भु होता तो सब इन्द्रियोंके
प्रथममाह्निकम् के विषयोंका ज्ञान एक
र्यविरोधसे विभु होना

सिद्ध नहीं होता. जो यह संशय हो कि, किसी विशेष पदार्थके भक्षण करनेमें उसके रूप रस गंधका साथही ज्ञान होता है तो ऐसा प्रत्यय होना भ्रममात्र है. यथार्थमें ज्ञान क्रमहीसे होता है परन्तु मनकी शीघ्रता ऐसी है कि, जिससे पृथक्ताका बोध नहीं होता. मन स्मृतिमें धारण करते हुये अत्यन्त शीघ्रतासे एक दूसरे इन्द्रियके अर्थको जानता है, इसमें साथ ज्ञान होनेके समान अभिमान होता है. जो यह संशय हो कि, मन विभु है परन्तु अनेकका ज्ञान एक-साथ होना इच्छाके आधीन है/ [illegible]तनेमें आत्मा इच्छा क-

[illegible] ना नहीं होता तो यह
[illegible] न होनेमें होती तो
[illegible] न होजाता, परन्तु
[illegible] अर्थात् इच्छासे
[illegible] अभिमत अर्थका
[illegible] म्बन्ध होताहै इससे
[illegible] होनेसे मनका अणु

आता, [illegible]
कालके समान [illegible]
आश्रय (आधार) होने
अभाव (न होने) से आके
समान धर्मवाला होनेसे मनमें
इसका उत्तर यह है कि, मन
साथ संयोग होनेसे सब इन्द्रियों
साथ होता, परन्तु ऐसा न होनेसे

[illegible]त्वे वायुना व्या-

[illegible]व्यत्व (द्रव्यहोना) व नित्यत्व (नित्य-
[illegible] वायुसे (वायुके समान) व्याख्यात हैं २

उसका (उक्तमनका) द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात समुझना चाहिये, अर्थात् जैसे अदृश्यवायु स्पर्श गुणवान् होनेसे द्रव्य व निरवयव व द्रव्य आश्रित न होनेसे नित्य कहागया है इसी प्रकारसे ज्ञानजनक (उत्पन्न करनेवाला) संयोग आदि गुणवान् होनेसे मन द्रव्य व उत्पत्तिविनाश होनेका कोई प्रमाण न होनेसे नित्य है. यथा रूप आदि प्रत्यक्ष होनेमें चक्षु आदि करण हैं, तथा सुख दुःख आदिके प्रत्यक्ष होनेमें मन करण है इससे मनभी चक्षु आदिके समान इन्द्रिय है, अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंके समान नित्य द्रव्यरूप अन्तर इन्द्रिय मन है ॥ २ ॥

प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम् ३

प्रयत्नोंके युगपद् (अनेकका एकवारगी होना) न होनेसे व ज्ञानोंके युगपद् न होनेसे एक है ३

प्रत्येक शरीरमें मन एक है वा अनेक हैं यह संदेहनिवारणके अर्थ यह सिद्धान्त वर्णन किया है कि, युगपद् प्रयत्नोंके न होनेसे अर्थात् अनेक प्रयत्नोंका एकसाथ न होनेसे व युगपद् ज्ञानोंके न होनेसे एक है अर्थात् मन एक है. जो अनेक मन होते तो अनेक अङ्गोंमें युगपद् प्रयत्न व युगपद् ज्ञान होते अर्थात् एक एक अङ्गमें एक एक प्रयत्न व ज्ञान होनेसे एकवारगी कई अङ्गोंमें अनेक प्रयत्न व ज्ञान

एकसाथ होते, ऐसा न होनेसे एक है. यदि यह संशय हो कि, नाचनेवालीके हाथ व पांवकी अंगुलियोंमें युगपद् प्रयत्न कर्म होते हैं. अनेक मनोंके होनेसे युगपद् प्रयत्न व क्रिया होना संभव होता है तो यह अयुक्त है. यह केवल मनके अतिशीघ्रसंचार(बहुत जल्द चलने)से समुझना चाहिये. जैसा पूर्वहीं वर्णन किया गया है, हाथपावकी वीस अंगुलियोंमें नृत्यसमयमें युगपद् प्रयत्न व क्रिया होने व युगपद् होनेकी प्रतीति भ्रमरूप है युगपद् होनेका प्रत्यय (बोध) ऐसा समुझना चाहिये, जैसे कमलके सौ पत्र विथरेहुये देखनेमें एकसाथ अनेक ज्ञान होना ज्ञात होताहै परन्तु मन भिन्न २ क्षणोंमें उनमें प्राप्त होताहै, परन्तु मनकी अतिशीघ्रगति होनेसे भिन्न २ क्षणमें अतिवेगसे ग्रहण किये जानेसे भिन्नताका बोध नहीं होता. जो यह आशंका हो कि, विच्छूआदिक दोखण्ड करनेमें भी दोनों खण्ड भिन्न २ चलतेहै इससे अनेक मनका होना अवश्य मानना चाहिये, तौ अदृष्टवशसे अन्य मनके प्रवेश करनेसे विच्छू आदिके खण्डोंका चलना संभव है परन्तु एकही समयमें अनेक इन्द्रियोंके अनेक रूप रस आदि प्रत्यक्ष वा ज्ञात न होनेसे व किसी विषयमें अति आसक्त होनेमें अन्यका ज्ञान न होनेसे मनका अनेक होना सिद्ध नहीं होता इससे एकहीहै ॥ ३ ॥

तीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ ४ ॥

प्राण अपान निमेष उन्मेष जीवन मनोगति (मनकी गति) इन्द्रियान्तरविकार (एक इन्द्रियके विषय प्रत्यक्ष होनेसे दूसरे इन्द्रियमें भी विषयसम्बन्धके स्मरणसे विकार होना) सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न भी आत्माके लिङ्ग हैं ॥ ४ ॥

पूर्वही ज्ञानमात्रको आत्माका लिङ्ग होना कहाहै उससे अधिक प्राणआदि भी आत्माके लिङ्ग है यह यहां वर्णन किया है. प्राण (शरीरके भीतरसे उपर आनेवाला वायु), अपान (शरीरमें उपरसे नीचे जानेवाला वायु), निमेष (नेत्रके पलकोंका लगना वा मिलना), उन्मेष (नेत्रोंके पलकोंका विभाग वा अलग होना), जीवन (जीना मनोगति (मनकी गति), इन्द्रियान्तरविकार (उक्तप्रकारसे एक इन्द्रियसे दूसरे इन्द्रियमें विकार होना) सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह शरीरमें तभीतक होतेहैं. जबतक आत्माका सम्बन्ध है. मृतकशरीरमें नहीं होते इससे इनको भी आत्माके लिङ्ग होना कहाहै. कोई यह कहते हैं कि, प्राण व अपान अर्थात् शरीरके भीतर उपर व नीचे जानेवाले वायुओंके होनेसे कोई प्रयत्नसे वायुके प्रेरण करनेवाला होनेका अ-

नुमान होताहै, क्योंकि वायुका तिर्यग्गमन (तिरच्छा चलना) स्वभाव है. स्वभावसे विपरीत विनाप्रयत्नव प्रयत्नकरनेवालेके संभव नहीं होता, तथा निमेष व उन्मेष (पलकोंका लगना व खुलना) संयोग व विभागजनक (उत्पन्नकरनेवाले) कर्मरूप हैं. कर्मविना प्रयत्नकरनेवालेके नहीं होता, जैसे जड-काठकी पुतरी आपसे विना दूसरे प्रयत्नसे करानेवालेके कुछ कर्म नहीं करसकती, दूसरे कर्ताके करानेसे नृत्यआदि कर्म करतीहै इसी प्रकारसे जड पलकें कुछ नहीं करसक्तीं, जिसके प्रयत्नसे पलकोंमें वायुमें ऊपर व नीचे जानेका कर्म होता है वह आत्मा है, परन्तु यह कहना यथार्थ नहीं है, क्योंकि सुषुप्तदशामें जब आत्माके प्रयत्नका अभाव होताहै अपने व अन्य पदार्थका कुछ ज्ञान आत्माको नहीं होता, तब भी प्राणअपानका ऊपर नीचे जाना वन्द नहीं होता व जागरित अवस्थामें भी आत्माके प्रयत्नसे होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि आत्मा विशेष प्रयत्नसे भी विना अभ्यास प्राण अपान निमेषको रोक नहीं सकता, कुछदेरतक रोकनेसे आत्माके प्रयत्नसे विरुद्ध होना विदित होता है, अर्थात् रुक नहीं सकते इसमें ईश्वरकृत नियम सम्बन्धहीं मानना योग्य है, ईश्वरकृत नियमसे आत्माके सम्बन्ध रहनेहीतक प्राण आदि शरीरमें होते हैं विना आत्माके नहीं होते इस हेतुसे आत्माके लिङ्ग होना वर्णन किया है, जीवनशब्दका

तीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ ४ ॥

प्राण अपान निमेष उन्मेष जीवन मनोगति (मनकी गति) इन्द्रियान्तरविकार (एक इन्द्रियके विषय प्रत्यक्ष होनेसे दूसरे इन्द्रियमें भी विषयसम्बन्धके स्मरणसे विकार होना) सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न भी आत्माके लिङ्ग हैं ॥ ४ ॥

पूर्वही ज्ञानमात्रको आत्माका लिङ्ग होना कहाहै उससे अधिक प्राणआदि भी आत्माके लिङ्ग है यह यहां वर्णन किया है. प्राण (शरीरके भीतरसे उपर आनेवाला वायु), अपान (शरीरमें उपरसे नीचे जानेवाला वायु), निमेष (नेत्रके पलकोंका लगना वा मिलना), उन्मेष (नेत्रोंके पलकोंका विभाग वा अलग होना), जीवन (जीना मनोगति (मनकी गति), इन्द्रियान्तरविकार (उक्तप्रकारसे एक इन्द्रियसे दूसरे इन्द्रियमें विकार होना) सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह शरीरमें तभीतक होतेहैं जबतक आत्माका सम्बन्ध है. मृतकशरीरमें नहीं होते इससे इनको भी आत्माके लिङ्ग होना कहाहै. कोई यह कहते हैं कि, प्राण व अपान अर्थात् शरीरके भीतर उपर व नीचे जानेवाले वायुओंके होनेसे कोई प्रयत्नसे वायुके प्रेरण करनेवाला होनेका अ-

नुमान होताहै, क्योंकि वायुका तिर्यग्गमन (तिरच्छा चलना) स्वभाव है. स्वभावसे विपरीत विनाप्रयत्न व प्रयत्नकरनेवालेके संभव नहीं होता, तथा निमेष व उन्मेष (पलकोंका लगना व खुलना) संयोग व विभागजनक (उत्पन्नकरनेवाले) कर्मरूप हैं. कर्मविना प्रयत्नकरनेवालेके नहीं होता, जैसे जड़-काठकी पुतरी आपसे विना दूसरे प्रयत्नसे करानेवालेके कुछ कर्म नहीं करसकती, दूसरे कर्ताके करानेसे नृत्यआदि कर्म करतीहै इसी प्रकारसे जड पलकें कुछ नहीं करसक्तीं, जिसके प्रयत्नसे पलकोंमें वायुमें उपर व नीचे जानेका कर्म होता है वह आत्मा है, परन्तु यह कहना यथार्थ नहीं है, क्योंकि सुषुप्तदशामें जब आत्माके प्रयत्नका अभाव होताहै अपने व अन्य पदार्थका कुछ ज्ञान आत्माको नहीं होता, तब भी प्राणअपानका उपर नीचे जाना बन्द नहीं होता व जागरित अवस्थामें भी आत्माके प्रयत्नसे होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि आत्मा विशेष प्रयत्नसे भी विना अभ्यास प्राण अपान निमेषको रोक नहीं सकता, कुछदेरतक रोकनेसे आत्माके प्रयत्नसे विरुद्ध होना विदित होता है, अर्थात् रुक नहीं सकते इसमें ईश्वरकृत नियम सम्बन्धही मानना योग्य है, ईश्वरकृत नियमसे आत्माके सम्बन्ध रहनेहीतक प्राण आदि शरीरमें होते हैं विना आत्माके नहीं होते इस हेतुसे आत्माके लिङ्ग होना वर्णन किया है, जीवनशब्दका

अर्थ यहां उपचार वा लक्षणसे जीवनकार्य ग्राह्य (ग्रहण योग्य) है अर्थात् प्राणधारण करना, वृद्धि होना, घाव आदिका भर आना इत्यादि आत्माके होनेमें होते हैं, मृतक शरीरमें नहीं होते इससे जीवनकार्य आत्माके लिङ्ग है. मनकी गति आत्माका लिङ्ग है, क्योंकि आत्माकी प्रेरणासे इन्द्रियों व उनके विषयोंमें मनका संयोग व विभागरूप कर्म होताहै, आत्माकी इच्छाविना वा आत्माके नरहनेमें नही होता. जिस विषयमें आत्माकी अभिलाषा होतीहै उसीविषयके ग्रहण करनेवाले इन्द्रियमें आत्माकी प्रेरणासे मन प्राप्त होताहै. मनका प्रेरक जो है वही आत्मा है अर्थात् उसको आत्मा मानते हैं, जो मन व आत्मा पृथक् न मानेजावै तो मन जब किसी विषयविशेषमें लग्न होकर आसक्त होजावै फिर उसको उससे निवृत्त न होना चाहिये. प्रवृत्त व निवृत्त कियेजानेसे यह अनुमान होताहै कि, कोई दूसरा है कि, जो प्रथम प्रेरित करके मनको किसी विषयविशेषमें लगाताहै व फिर विचार कर वा किसी कारणसे उससे निवृत्त भी करता है. यथा रूप सौंदर्य्य आदिमें मन लुब्ध हो जाताहै परन्तु विचारद्वारा आत्मा मनको रोक सकताहै व मोहसे मनके अधीन हो विषय प्राप्त होनेके प्रयत्नमें प्रवृत्त होताहै. रोकना व न रोकना आत्माके अधीन संभव होनेसे मन व आत्माका पृथक् होना सिद्ध होताहै.

जो चक्षु आदि इन्द्रियोंसे मन पृथक् न समझा जाय तौ स्वप्नमें ज्ञान न हो. स्वप्नमें जब चक्षु आदि इन्द्रिय किसी विषयको ग्रहण नहीं करते, उस समयमें शरीरसे दूरदेशतें गमन करने, नानाप्रकारके पदार्थ देखने व सुननेमें जो कारण है यह मन है व सब बाह्य इन्द्रियोंसे पृथक् है. इन्द्रियान्तरका विकार होना आत्माका लिङ्ग है, जैसे फलविशेषके रूप व रस (स्वादु) व गन्धमें ऐसा सम्बन्ध होनेसे कि, एक दूसरेसे भिन्न नहीं रहते. किसी फलविशेष यथा आम नारंगी आदिके रूपको देखकर उसके स्वादुके स्मरणसे जिव्हा व दांतोंमें जल आना वा अतिसुन्दर रूप देखकर स्पर्शकी इच्छा होना आदि आत्माका लिङ्ग इस हेतुसे है कि, उक्तदृष्टान्तमें अन्य इन्द्रियमें विकार स्वादु वा स्पर्श सुखसम्बन्ध व्याप्तिके स्मरणसे होताहै, ऐसा स्मरणविना एक कर्ता व इन्द्रियोंसे भिन्नके नहीं हो सकता, क्योंकि एक इन्द्रिय दूसरे इन्द्रियके विषयको ग्रहण नहीं करती, व जैसे अन्यके देखे वा जाने हुयेको अन्य स्मरण नहीं कर सकता, ऐसेही अन्य इन्द्रियसे अनुभूत विषयको अन्य इन्द्रिय स्मरण नहीं कर सकता, इससे जो एक इन्द्रियके विषय प्रत्यक्ष होनेसे जिस इन्द्रियने अपने विषयको ग्रहण नहीं किया अर्थात् जिस इन्द्रियका विषय प्रत्यक्ष नहीं हुवा उस इन्द्रियके विषय प्राप्त होनेकी अभिलाषा करता है व उसके सुख

स्मरणसे अन्य इन्द्रियमें विकार होनेका हेतु होताहै वह आत्माहै. सुख आदि भी ज्ञानके समान आत्माके लिङ्ग हैं, क्योंकि सुख आदि गुण हैं. गुण होनेसे रूप आदिके समान किसी द्रव्यमें आश्रित होना चाहिये, परन्तु सामान्य तो दृष्ट अनुमानसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गयाहै. आठ द्रव्य पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा मनमें आश्रित होना सिद्ध नहीं होता. यथाइच्छा किसी उक्त द्रव्योंमें आश्रित ज्ञात नहीं होती इत्यादि इससे आठ द्रव्यसे पृथक् (भिन्न) कोई द्रव्य है जिसमें सुखआदि आश्रित हैं जो सुखआदिका आश्रय है वह आत्मा है इसरीतिसे सुखआदि आत्माके लिङ्ग वा अनुमानके हेतु हैं ॥ ४ ॥

तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ ५ ॥

उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुसे (वायुके समान) व्याख्यात हैं ॥ ५ ॥

जैसे स्पर्शगुणवान् होनेसे वायु परमाणु द्रव्य व निरवयव कारणरहित होनेसे नित्य कहा गया है, वैसही ज्ञान सुख दुःख इच्छा आदि गुण होनेसे आत्मा द्रव्य व निरवयव कारणरहित होनेसे नित्य है ॥ ५ ॥

यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावा-दृष्टलिङ्गं न विद्यते ॥ ६ ॥

सन्निकर्षमें यह यज्ञदत्त है ऐसा प्रत्यक्ष न होनेसे दृष्ट (प्रत्यक्ष) लिङ्ग नहीं है ॥ ६ ॥

इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षमें ऐसा कोई प्रत्यक्ष लिङ्ग (लक्षण वा चिह्न) नहीं है, जिससे यह ज्ञान हो कि, यह आत्मा यज्ञदत्त है. प्रत्यक्षके अभावसे दृष्टलिङ्ग नहीं है अर्थात् जैसे धूम दृष्ट लिङ्ग है जिसके देखनेसे अग्निका अनुमान होता है, ऐसा यज्ञदत्तका शरीर प्रत्यक्ष होनेमें आत्माका कोई दृष्ट (प्रत्यक्षसे ग्रहण किया गया वा प्रत्यक्ष हुवा) लिङ्ग नहीं है. अनुमान प्रत्यक्ष लिङ्गपूर्वक होता है इससे आत्माका अनुमान नहीं होसकता यह सूत्रका भाव है ॥६॥

सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ॥ ७ ॥

सामान्यतो दृष्टसे भी विशेष नहीं है ॥ ७ ॥

सामान्यतो दृष्टलिङ्ग (समानधर्मसे देखेहुये चिन्ह)से अनुमान करना विशेष आत्माके सिद्ध करनेका लिङ्ग नहीं है, अर्थात् सामान्यतो दृष्टसे यही साधारण सिद्ध होगा कि, कोई द्रव्य है जिसमें यह इच्छा आदि गुण आश्रित हैं, परन्तु वह मन है वा आत्मा है वा अन्य है यह विशेष निश्चय

नहीं होता कि, मन व इन्द्रियोंसे भिन्न कोई आत्मा है, इ-
ससे आत्माके होनेका यथार्थज्ञान नहीं होता ॥ ७ ॥

तस्मादागमिकः ॥ ८ ॥

तिससे आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) है ॥ ८ ॥

तिससे (विशेष चिन्ह वा लक्षण न होनेसे) आत्माका होना वेदप्रमाणसे सिद्ध है अर्थात् वेदमें आत्माका वर्णन है इससे आत्माका होना सिद्ध है. अब यह शंका होती है कि, जो वेदही प्रमाणसे मानलेना था तो इस शास्त्ररचनासे क्या फल था इसका उत्तर आगे सूत्रमें वर्णन किया है ॥ ८ ॥

अहमिति शब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकः ॥ ९ ॥

मैं इस शब्दके व्यतिरेक (भेदसे) केवल वेदसे सिद्ध नहीं है ॥ ९ ॥

पूर्वसूत्रमें केवल वेदप्रमाणसे सिद्ध होना कहाहै, अब अनुमानसे भी सिद्ध होना वर्णन कियाहै कि, जैसे घटशब्दसे घटपदार्थका बोध होताहै ऐसेही मैंशब्द जिसके लिये कहा जाता है वह कोई पदार्थ है वही मैंशब्दवाच्य पदार्थ आत्मा है. भेदशब्द सूत्रमें इसलिये कहा है कि, मैंशब्दका प्रयोग वा व्यवहार पृथिवी आदि सब द्रव्य पदार्थोंसे भिन्नके लिये

होताहै, क्योंकि कभी ऐसा प्रत्यय नहीं होता कि, मैं पृथिवी हूं जल हूं तेज हूं वायु हूं आकाश हूं इत्यादि जो यह कहा जाय कि, अन्यपदार्थमें मैंशब्द न कहाजाय परन्तु शरीरमें कहना युक्त है तो शरीरके लिये मैंशब्द नहीं कहाजाता, क्योंकि मेरा शरीर, मेरा हाथ, मेरा शिर इत्यादि कहनेहीसे भेद होना सिद्ध होता है कि मैंशब्दवाच्य पदार्थ व शरीर व शरीरके अवयवोंके साथ सम्बन्धसम्बन्धीभाव है, मैंशब्दवाच्य आत्मा शरीर नहीं है, इसप्रकारसे मैंशब्दके भेदसे अर्थात् मैंशब्दवाच्य आत्माका भेद सिद्ध होनेसे आत्मा केवल वेदसिद्ध नहीं है. अनुमानसे भी सिद्ध होता है, जो यह शंका हो कि, मैंशब्दभी सामान्य है. विना विशेपलक्षणके मैंशब्द भी दूषितप्रमाण है तो युक्त नहीं है. मैंशब्दसे केवल आत्माहीका ग्रहण होता है, अन्यका नहीं होता, क्योंकि अपनेही पक्षधर्म होने केवलसे मैं इस प्रवृत्तिका निमित्त हूं ऐसा बोध होता है, यह भाव मैं होनेका अन्यपदार्थमें नहीं होता. इससे सामान्य होनेपर भी आत्माके विशेपबोधका सूचक है. जो यह शंका हो कि, इससे कोई विशेप फल नहीं है ऐसा प्रमाण सुननेसे भी होसकता है तो ऐसा नहीं होसक्ता. विना मनन संदेहयुक्त हृदयका अश्रद्धामल साफ नहीं होता व विना हृदय स्वच्छ (साफ) हुये निदिध्यासन (उत्तम ध्यान)का अधिकार नहीं होता व

विना निदिध्यासन मिथ्या ज्ञानके नाश करनेवाले तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार नहीं होता. शाब्द (शब्दसे हुवा) ज्ञान व आनुमानिक ज्ञान मिथ्याज्ञानको नही मिटासक्ता इससे मनन करना उचित है. जो यह संशय हो कि, परोक्ष प्रत्यक्ष नहीं) आत्माका लिङ्ग (चिन्ह) कैसे विदित होसक्ता है तो उत्तर यह है कि, यद्यपि बाह्य इन्द्रिय चक्षु आदिसे आत्मा प्रत्यक्ष नही होता परन्तु बुद्धि व मनके संयोगसे प्रत्यक्ष होता है, बाह्य इन्द्रियहीकी अपेक्षा परोक्ष कहा जाता है, बुद्धि व मनकी अपेक्षा परोक्ष नही है. जो आत्मा न हो, मैं सुखी हूं मै दुःखी हूं मै देखता हूं, मैं इच्छाकरता हूं, ऐसा ज्ञान न होवै यह निश्चितवस्तुका ज्ञान होनेसे अवस्तुक (मिथ्यावस्तुका) और संदिग्धवस्तुक (संदेहयुक्त वस्तुका) ज्ञान नही है व विना लिङ्गके उत्पन्न होनेसे अनुमान नहीं है और शब्दसम्बन्धी ज्ञान भी नहीं है, क्योंकि विनाशब्दकी अपेक्षा मै होनेका ज्ञान होता है. यदि यह कहाजाय कि, प्रत्यक्षाभास (मिथ्याप्रत्यक्षरूप) है तो सत्यप्रत्यक्ष भी होना चाहिये, क्योंकि सत्यसर्पका भ्रम वा आभास रस्सीमें होता है, विना सत्यके आभास नही होता. अन्य कोई सत्यपदार्थ जिसके समधर्म होनेका आभास मैं प्रत्ययमें माना जावै, प्रत्यक्ष नहीं है इससे मैं होनेका प्रत्यय आत्माका लिङ्ग है ॥ ९ ॥

यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोहं यज्ञदत्त इति ॥ १० ॥

जो मैं देवदत्त हूं मैं यज्ञदत्त हूं ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष वा इन्द्रियजन्य ज्ञान है ॥ १० ॥

तो अनुमानसे क्या प्रयोजन है यह सूत्रमें शेष है, पूर्वपक्षविधायक यह वाक्य है. पूर्वपक्ष यह है कि जो मैं यज्ञदत्त हूं मैं देवदत्त हूं ऐसा प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य ज्ञानसे सिद्ध होता है तो अनुमानसे सिद्ध करने व अनुमानके लिये प्रयासकरनेसे क्या प्रयोजन है. अब इसका उत्तर वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

दृष्टयात्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः ॥ ११ ॥

दृष्ट (मनसे ग्रहण कियेगये वा प्रत्यक्ष हुये) आत्मामें अनुमान होनेमें एकही दृढ होनेसे प्रत्यक्षके समान प्रत्यय (बोध) होताहै ॥ ११ ॥

दृढ होनेसे अभिप्राय प्रमाण होनेकी शंका निवृत्त होने यथार्थ निश्चय प्राप्त होनेसे है. जैसे दूरसे तडाग आदिका जल देखनेपर भी यह संशय होता है कि मृगतृष्णारूप ज-

लभ्रान्ति न हो फिर बकुल आदि पक्षियोंको देखकर दृढ नि-श्चय किया जाता है कि जल है ऐसही आत्माका बोध होने-परभी विपरीत संभावना उसमें होनेसे प्रमाण न होनेकी शंका होती है. यह शंका निवृत्त होना मुख्य एकही तत्त्वका निश्चय होना कि आत्मा है ऐसा संदेहरहित बोध होना दृढ होना है, इससे प्रत्यक्ष होनेपर भी यथोक्त (जैसा कहा गया है) दृढता होनेके व शंका निवृत्त होनेके लिये अनु-मान करना युक्त है यह पूर्व सूत्रमें कीहुई शंका वा पूर्वप-क्षका उत्तर है ॥ ११ ॥

देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छतीत्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः ॥ १२ ॥

देवदत्त जाताहै यज्ञदत्त जाताहै यह उपचारसे शरीरमें प्रत्यय (बोध) होताहै ॥ १२ ॥

जो मुख्य अर्थ है परन्तु किसी साधर्म्य वा सम्बन्धमु-ख्यके साथ होनेसे मुख्य अर्थके समान कहाजाताहै व स-मुझा जाताहै उसको उपचार वा लक्षणा नामसे कहते हैं. उपचारसे शरीरमें प्रत्यय होताहै, इसका तात्पर्य यह है कि, यद्यपि शरीर जड है स्वतः (आपसे) प्रवृत्त होनेमें समर्थ नहीं है तथापि चेतन आत्माके सम्बन्धसे शरीरमें उपचा-रसे जानेका प्रयोग होता है, यह शंका संभव होनेसे कि

नाम आत्माका होताहै, क्योंकि मरेहुये पुरुपको कोई यह नहीं कहता कि शरीर मरगया, शरीर तो सम्पूर्ण बनारहता है. ऐसा जो कहाजाताहै कि, यज्ञदत्त मरगया तो आत्माका नाम होना विदित होता है इससे यह कहनेमें कि, देवदत्त जाताहै यज्ञदत्त जाताहै, शरीरमें जानेका प्रत्यय न होना चाहिये इसके समाधानके लिये यह कहा है कि, उपचारसे शरीरमें जानेका प्रत्यय होताहै नहीं, जड शरीर कुछ करनेको समर्थ नहीं होता. यथा यह कहा जाता है कि, मैं गोरा हूं मैं मोटा हूं यह बोध उपचारसे होता है, तथा शरीरमें जानेका प्रत्यय है, मेरा शरीर है यह प्रत्यय भेददर्शक है. मेरा प्रत्यय (बोध वा ज्ञान) यथार्थ है. जो नामका संकेत आत्मामें मानाजाता है व कहाजाता है कि, देवदत्त जाता है तो आत्मा निराकार है, निराकार चल नहीं सकता, इससे शरीर व आत्माके सम्बन्धसे उपचारसे शरीरमें चलनेका प्रत्यय होता है. देवदत्त जानता है, इच्छा करता है इत्यादि प्रयोगोंका मुख्य अर्थसे शरीरविशिष्ट देवदत्तनामसे प्रयुक्त आत्मामें प्रत्यय होता है ॥ १२ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १३ ॥

उपचार तो संदिग्ध (संदेहयुक्त) है ॥ १३ ॥

तोशब्द पूर्वपक्षका द्योतक (जाननेवाला) है. पूर्वपक्ष यह है कि, यद्यपि आत्मामें मुख्य व शरीरमें उपचारसे मैंशब्द व

नामका प्रत्यय होना कहा है परन्तु नामका प्रत्यय व प्रयोग आत्मा व शरीर दोनोंमें होता है, केवल एकमें नहीं होता इससे यह संदिग्ध (संदेहयुक्त) है कि, कौन मुख्य है कौन उपचार है, किसी एकमें मुख्य होनेका निश्चय नहीं होता ॥ १३ ॥

अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ॥ १४ ॥

मैं यह बोध अपने आत्मामें होनेसे व परमें नहोनेसे भिन्न होना प्रत्यक्ष है ॥ १४ ॥

मैं हूं यह प्रत्यय (बोध) अपने आत्मामें होताहै, परमें (आत्मासे भिन्न शरीर आदिमें) नहीं होता इससे अपने आत्मामें मानना मुख्य है. क्योंकि, मैं यज्ञदत्त सुखी हूं इत्यादि व्यवहार शरीरमें मुख्य होना प्रतीत न होनेसे शरीर आदिसे भिन्न आत्माहीमें मैंशब्दका प्रयोग मुख्य होना विदित होताहै व शरीरमें औपचारिक (उपचारसम्बन्धी) अर्थसे वाच्य होताहै. मैं सुखी हूं दुःखी हूं यह ज्ञान अपनेही आत्मामें होता है, शरीर आदि व परके आत्मामें सुख दुःख व मैंका प्रत्यय न होनेसे आत्मामात्रमें मुख्य होने व शरीर आदिमें औपचारिक होनेमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १४ ॥

देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमाना-त्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहङ्कारः ॥ १५ ॥

देवदत्त चलता है यह वोध उपचारसे अभिमानद्वारा शरीरप्रत्यक्ष (जिस्में शरीर प्रत्यक्षका विषय होता है वह) अहङ्कार है अर्थात् शरीरको प्रत्यक्ष वा प्रत्यक्षका विषय करनेवाला अहङ्कार है ॥ १५ ॥

देवदत्त चलता है ऐसा प्रत्यय अभिमानसे होताहै. अभिमानरूप अहङ्कार ही शरीरको प्रत्यक्षका विषय करता है, अर्थात् प्रत्यक्ष होनेके प्रत्ययका कारण होता है. अभिमानसे ऐसा प्रत्यय होता है इससे औपचारिक है अर्थात् उपचारसे ऐसा प्रयोग वा प्रत्यय शरीरमें होता है ॥ १५ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १६ ॥

उपचार तो संदिग्ध है ॥ १६ ॥

देवदत्त जाता है वा चलता है इसमें उपचार है अथवा मै देवदत्त सुखी हूं इसमें उपचार है. शरीर व आत्मामें बहुतसे प्रयोगविशेषण एकही प्रकारसे होनेसे एकमें निश्चय न होने व न करसकनेसे उपचार संदिग्ध (संदेहयुक्त)है ॥ १६ ॥

न तु शरीरविशेषाद्यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानं विषयः ॥ १७ ॥

शरीरविशेषसे (शरीरके भिन्न होनेसे) यज्ञदत्त व विष्णुमित्रका ज्ञान विषय (प्रत्यक्षका विषय) नहीं होता ॥ १७ ॥

ज्ञानशब्द यहाँ सामान्यसे सुख दुःख आदि आत्माके विशेष गुणोंका वाचक है. शरीरके विशेष होनेसे यज्ञदत्त व विष्णुमित्रोंका ज्ञान प्रत्यक्षका विषय न होना, अर्थात् बाह्य-इन्द्रियग्राह्य न होना कहनेका अभिप्राय यह है कि, जो मैं-शब्द शरीरके लिये कहा जाता अर्थात् मैंशब्दसे शरीर-वाच्य (कहनेयोग्य) होता व ज्ञान सुख दुःख आदि शरीरके गुण होते तो, यथा यज्ञदत्त व विष्णुमित्रके शरीर-विशेष होनेसे भिन्न प्रत्यक्ष होते हैं, वैसही उनके ज्ञानभी रूपआदि गुणोंके समान प्रत्यक्ष होते अर्थात् जैसे रूप-आदि शरीरके गुणोंका प्रत्यक्ष होता है, ऐसही शरीरके गुण सुख दुःख इच्छा आदिकोंका प्रत्यक्ष होता परन्तु ऐसा नहीं होता, इससे ज्ञान सुख आदिका आश्रय शरीरसे भिन्न अन्य द्रव्य आत्मा मानने योग्य है, व शरीरमें मैं आदिका प्रयोग वा प्रत्यय औपचारिकही है इससे हमारे प्रतिज्ञाकी हानि नहीं है यह भाव है ॥ १७ ॥

अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दव्यतिरेकाव्यभिचाराद्विशेषसिद्धेर्नागमिकः १८

मैंका बोध मुख्य व योग्य (दृश्यगुणों)से शब्दके समान व्यतिरेक (भेद)का व्यभिचार न होनेसे अर्थात् व्यतिरेककी व्याप्तिसे विशेषकी सिद्धिसे आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) नहीं है ॥ १८ ॥

आत्माके निर्णय करनेमें प्रथम पूर्वपक्ष यह है कि, आत्मा आकाशके समान निरवयव व रूपरहित द्रव्य होनेसे प्रत्यक्ष नहीं है इससे मैं गोरा हूं मैं कृश (दुबला) हूं इस बुद्धिका विषय शरीरहीको मानना चाहिये. कहीं मैं सुखी हूं ऐसी सुख होने आदिकी बुद्धि भी होती है, तथापि आश्रयरहित भासमान जो सुख आदिक है उनका शरीरहीमें समारोप है, अर्थात् उपचारसे शरीरहीमें आरोपित किये जाते हैं, यही मानना उचित है. यथा उष्ण (गरम) व सुगन्धित जलमें उष्णता (गरमी) व सुगन्ध आश्रयरहित भासमान होनेसे उष्णता व सुगन्धका जलमें समारोप होता है, क्योंकि जलसे भिन्न अन्य कोई जलके बोधमें विदित नहीं होता, ऐसही मैं होनेका प्रत्यय वा बोध शरीरहीमें वास्तवरूप है. सुख आदिकभी शरीरमें आरोपित होते हैं इससे आत्मामें प्रत्यक्षाकार ज्ञान नहीं है. जो सुख आदिका

आश्रय (आधार) होनेसे कल्पना किया जाता है वा कल्पना करनेके योग्य है, वह केवल आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) है और कोई प्रमाण नहीं है, इसके उत्तरमें यह कहा है कि, मैंका बोध अर्थात् मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं यह प्रत्यय न आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) है व न लैङ्गिक (अनुमानसम्बन्धी) है क्योंकि नेत्र मूंदे हुयेको विना किसी इन्द्रियके विषय प्रत्यक्ष हुयेविना शब्द व लिङ्गके द्वारा आपही बोध होता है. जो रूप व अवयवरहित होना प्रत्यक्ष होनेका बाधक कहा है वह बाह्यइन्द्रियोंके प्रत्यक्ष होनेमें होता है, क्योंकि बाह्यइन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेमें रूपआदि होनेकी आवश्यकता होती है. मनसे प्रत्यक्ष होनेमें रूपआदि व सावयव होनेकी आवश्यकता नहीं है. निरवयव व नीरूप होनेपर भी आत्मा मनसे प्रत्यक्ष होता है. अब यह शंका है कि जो आत्माके होनेका निश्चित प्रमाण होता तो ऐसा भी मानलिया जाता परन्तु आत्माहीके होनेका प्रमाण नहीं है, इसके उत्तरके लिये सूत्रमें यह कहा है कि शब्दके तुल्य व्यतिरेकका व्यभिचार न होनेसे अर्थात् व्यतिरेक (भेद)की व्याप्तिद्वारा विशेषकी सिद्धिसे आगमिक नहीं है, अर्थात् जैसे पृथिवी आदि द्रव्योंसे शब्दका व्यतिरेक (भिन्न होना) व्यभिचाररहित (अन्यथा होनेके दोषसे रहित) है अर्थात् व्याप्तिरूप है, उस व्यतिरेक व्या-

सिसे आठ द्रव्योंसे भिन्न उसके आश्रय (आधार) रूप विशेषकी सिद्धि होती है, अर्थात् विशेषद्रव्य आकाशकी सिद्धि होती है ऐसही पृथिवी आदि द्रव्योंमेंसे इच्छाकी भिन्नता (इच्छाका सम्बन्ध न होना) सिद्ध होनेसे उसका आश्रय द्रव्यविशेष आत्मा है यह सिद्ध होता है. अव जो यह शंका हो कि यह भी अनुमान ही है, प्रत्यक्ष प्रमाण आत्माका नहीं है इसके उत्तरके लिये मेंका बोध मुख्य व योग्य (दृश्य गुण) से (मुख्य वा योग्य गुणद्वारा होनेसे) यह कहा है, अर्थात् विना शब्द व हेतुकी अपेक्षा अपनेमें मेंका बोध होना मुख्य व सुखआदि योग्य गुणके अधिकरण होनेसे अनुमानके योग्य होनेसे प्रत्यक्ष व अनुमान दोनों प्रकारसे आत्मा सिद्ध होता है यह अभिप्राय है ॥ १८ ॥

सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ॥ १९ ॥

सुख दुःख व ज्ञानकी उत्पत्ति विशेष न होनेसे आत्मा एक है ॥ १९ ॥

आत्माका अनेक होना प्रतिपादन करनेके अभिप्रायसे प्रथम इस सूत्रमें यह पूर्वपक्ष है कि आत्मा एक है यद्यपि चैत्र व मैत्र आदिके शरीर भिन्न होते हैं परन्तु सुख दुःख व ज्ञानकी उत्पत्तिमें अर्थात् होनेमें कुछ विशेपता नहीं

होतो वा नहीं है, सब शरीरोंमें सुख दुःख व ज्ञान एकही प्रकारका होता है. जो कोई अन्य चिह्न आत्माके भेद सिद्ध करनेका होता तो आत्मामें भेद होना सिद्ध होता, परन्तु नहीं है इससे यथा शब्दोंके भिन्न स्थानोंमें नानाप्रकारसे उत्पन्न होनेपरभी विशेषलिङ्ग न होनेसे अर्थात् शब्दलिङ्गके विशेष न होनेसे आकाश एक है व पर व अपर प्रत्यय लिङ्गके विशेष न होनेसे दिशा एक है तथा काल एक है, उपाधिभेदमात्रसे अनेक होनेका बोध होता है, ऐसही सुख व ज्ञानलिङ्गके विशेष न होनेसे आत्मा एक है ॥ १९ ॥

व्यवस्थातो नाना ॥ २० ॥

व्यवस्थासे (अवस्थाभेदसे) अनेक है ॥ २० ॥

आत्माके अनेक होनेके सिद्धान्तमें यह कहा है कि व्यवस्थासे (अवस्थाभेदसे) आत्मा अनेक है. व्यवस्था यह है कि, कोई सुखी होता है कोई दुखी होता है कोई विद्वान् व कोई मूर्ख इत्यादि ऐसा भेद एक आत्मामें होना संभव नहीं है. जो यह कहा जावै कि जैसे एकही शरीरमें बाल्य युवा वृद्ध अवस्थाभेद हो जाते हैं परन्तु अवस्थाभेदमें शरीर अन्य नहीं हो जाता, ऐसही आत्माके अवस्थाभेद है तो यह यथार्थ नहीं है. क्योंकि शरीरमें बाल्यआदि अवस्थाभेद कालान्तर (भिन्नकाल)में होता है, आत्मा दुःखी

व सुखी एकही कालमें देखे जाते हैं. एककालमें दो विपरीत धर्म एक धर्मीमें नहीं होसक्ते इससे आत्माका अनेक होना सिद्ध है ॥ २० ॥

शास्त्रसामर्थ्याच्च ॥ २१ ॥

शास्त्रके सामर्थ्यसे भी ॥ २१ ॥

शास्त्रशब्द यहां वेदवाचक है. शास्त्रसामर्थ्यसे अर्थात् शास्त्रप्रमाणबलसे भी आत्माका अनेक होना सिद्ध होता है. वेदमें लिखा है "द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये" अर्थ दो ब्रह्म एक जीवात्मा व द्वितीय परमात्मा जाननेके योग्य हैं, इससे ब्रह्म व जीव एक नहीं है व जीवात्मा अवस्थाभेदसे अनेक हैं. एकमें अवस्थाभेद नहीं होसकता इससे जीव व ब्रह्मको एक मानना असत् है यह फलितार्थ है ॥ २१ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये वांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीमप्यारेलालात्मजप्रभुदयालुविरचिते तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥ समाप्तश्चायं तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थाध्यायप्रारंभः ।

सदकारणवन्नित्यम् ॥ १ ॥

सत्(विद्यमान)कारणरहित नित्य है ॥ १ ॥

जो सत् (विद्यमान) व कारणरहित है वही नित्य है या वही नित्य होता है· क्योंकि जो कार्यरूप होता है वह अनित्य होताहै· सत् होना कहनेका तात्पर्य यह है कि, कोई असत् (अभाव)से सत् (भाव) होना मानते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि, सृष्टिसे पहिले कुछ नहीं रहता, अभावसे भाव (होना)की प्रकटता होती है, अर्थात् विना कुछ पूर्वमें कारण होनेके नानाप्रकारके पदार्थ उत्पन्न होतेहैं, और अभावसे भाव होनेका दृष्टान्त यह देते हैं कि जैसे बीजसे अङ्कुर होनेमें बीज अङ्कुरका कारण नहीं होता, बीजका अभावही अङ्कुरका कारण होता, क्योंकि अङ्कुर उत्पन्न होनेसे पहिलेही बीजके स्वरूपका अभाव होजाताहै, पश्चात् अङ्कुर उत्पन्न होता है, अर्थात् बीजकी आकृति नष्ट होजानेके पश्चात् अङ्कुर उत्पन्न होताहै ऐसही अभावसे भाव होता है ऐसा मानना केवल अज्ञान व भ्रम है· इस सूत्रमें यह कहाहै कि सत् है व कारणरहित है वह नित्य है, अर्थात् जो कारण होता है व कारणरहित होता है वह नित्य है व जो सत् (विद्यमान) कारण है उसीसे कार्यकी उ-

त्पत्ति होती है. विनाकारणके भाव (होने)के कार्य नहीं होसकता व बीजके दृष्टान्तमें भी बीजका अभाव अङ्कुरका कारण नहीं होता, बीजका भावही अङ्कुरका कारण है. बीजके अभावमें अङ्कुर नहीं होता, नहोना संभव होसकता है. बीज केवल रूपान्तरको प्राप्त हो नियमविशेषसे अङ्कुरकी उत्पत्तिका कारण होता है. जो अङ्कुरके साथ नियमका सम्बन्ध न होता और आकार नष्ट हुये बीजसे उत्पत्ति होती तो विना बीज या बीजके पिसेहुये अवयवोंसे अर्थात् पिसानसे अङ्कुर उत्पन्न होता, परन्तु ऐसा नहीं होता इससे जो कारणविशेष है उसीसे कार्यविशेष होता है. कारणके अभावसे भाव मानना अर्थात् कार्यका होना मानना मिथ्या व भ्रम है ॥ १ ॥

तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥ २ ॥

कार्य उसका लिङ्ग है ॥ २ ॥

उसका (उक्तकारणका) लिङ्ग कार्य है अर्थात् कार्य लिङ्गसे कारण (परमाणु)का अनुमान किया जाता है. यथा घटआदि कार्य अपने कारण पृथिवी आदि परमाणुओंके लिङ्ग है क्योंकि जो कारण परमाणु न होते तो विना तन्तु कारणके पट कार्य न होनेके समान कोई कार्य न होसकते. परमाणु कारण व कार्यद्रव्यमें अवयवअवयवीका सम्बन्ध रहता है, इस अवयवअवयवी सम्बन्ध होनेकी अवधि हो-

नेका भी अनुमान होता है, क्योंकि जो अवधि होना न माना जावै तो मेरुपर्वत व सरसोंके परिमाणमें भेद न रहै, क्योंके दोनोंके अनन्त अवयव आरब्ध होनेसे कुछ विशेष न होनेसे भेद न होना चाहिये. वे परिमाण व संख्याकी अवधिके प्रलयपर्यंत कभी अवयवसंख्याओंका अन्त न होगा ऐसा होना असंभव है, इससे परिमाण व संख्याविशेषका अनुमान होना युक्त है, और जो अवयवरहित होनेकी अवधि है वही परमाणु है व नित्यकारणरूप है. द्व्यणुक व त्र्यणुक होना अवधि नहीं है, क्योंकि यह भी अणुसंयोग कार्यरूप विभागके योग्य सावयव है. निरवयव अन्त अणु जिससे अधिक सूक्ष्म न होसके वह परमाणु कहा जाता है व कारणरूप है व कार्यरूप पदार्थ उसके लिङ्ग है ॥ २ ॥

कारणाभावात् कार्याभावः ॥ ३ ॥

कारणके अभावसे कार्यका अभाव होता है ॥ ३ ॥

यथा तन्तु पटका कारण है, तन्तुके भावसे (होनेसे) पटका भाव है, तन्तु न हो तो पट भी नहीं होसक्ता, तथा घटकार्यका पृथिवी कारण है, पृथिवीके भावसे घटका भाव है इत्यादि कारणके भावहीसे कार्यका भाव होता है व कारणका अभाव होनेसे कार्यका अभाव होता है अर्थात् विना कारण कार्य नहीं होता ॥ ३ ॥

अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः४

नित्य नहीं है यह प्रतिषेधभाव (नित्य होनेका प्रतिषेध) विशेषसे है अर्थात् विशेष पदार्थका है ॥४॥

जो अवयवी है वह नित्य नहीं है. वस्तुविशेषके अनित्य होनेसे नित्य होनेका प्रतिषध है. सामान्यसे सब पदार्थ अनित्य हैं ऐसा नित्य होनेका प्रतिषेध संभव नहीं होता, अर्थात् अवयवी (कार्यपदार्थ) मात्रके नित्य होनेका प्रतिषेध है. कारण परमाणुके नित्य होनेका प्रतिषेध नहीं है ॥ ४ ॥

अविद्या ॥ ५ ॥

अविद्या (अज्ञान) है ॥ ५ ॥

अब जो सब पदार्थको सामान्यसे अनित्य मानते हैं अर्थात् कार्य पदार्थको व कारण परमाणुको भी अनित्य मानते हैं उनके मतके प्रतिषेधमें यह कहा है कि, अविद्या है अर्थात् कारण वा परमाणुको अनित्य मानना अविद्या है, अथवा परमाणुके अनित्य होनेमें यह हेतु कहेजातेहैं कि, परमाणु गन्ध रूप रस आदि गुणसहित होनेसे मूर्तिमान् होनेसे सब दिशाओंके अन्य परमाणुओंके साथ संयोगवान् होनेसे व परमाणुके मध्यमें आकाश होना संभव होनेसे व आकाश होनेसे सच्छिद्र (छिद्रसंयुक्त) होनेसे परमाणु सावयव वा अवयवी है, व आकाश परमाणुके मध्यमें नहीं है यह माना

जावै तो आकाशका सर्वगत (सबमें व्यापक) होना सिद्ध नहीं होता व आकाशके व्यापक न होनेका प्रमाण नहीं होता, इससे परमाणुको उक्तप्रकारसे सावयव मानना युक्त है. सावयवहोनेसे कार्यरूप विभागके योग्य होनेसे अन्य सावयव कार्य द्रव्यके समान अनित्य है. नित्य नहीं होसक्ता, इस पूर्वपक्षके हेतुओंके उत्तरमें यह कहा है कि, परमाणुके अनित्य होनेके साधनमें जो हेतु व अनुमान है वह अविद्या है अर्थात् अज्ञान व भ्रमरूप है, क्योंकि सर्वव्यापक आकाशका परमाणुमें होनेसे परमाणुका सावयव होना व परमाणुके अतिसूक्ष्म होनेसे सत्तामात्र रहनेसे उसमें मध्य व बाह्यदेश कहनेका व्यवहार घटित नहीं होता. आकाश दिशामें होता है, आकाशका सम्बन्ध होनेसे दिशा अनित्य नहीं होती, दिशाके अनित्य होनेका प्रमाण नहीं है. परमाणुका निरवयव होना पूर्वहीं वर्णन कियागया है. सावयव कार्यरूप घट पट आदिके रूपआदिकोंके नाश होनेका प्रमाण होता है, कारणरूपके नाश होनेका प्रमाण नहीं होता. क्योंकि कारणका होना आवश्यक है. कारणके भी नाश माननेमें विना कारण कार्य न होसकनेसे कार्यका होना असंभव होगा, इससे जो हेतु परमाणुके अनित्य होनेमें कहेगये हैं वह सब अनैकान्तिक होनेके दोषसे व्याप्तिशून्य होनेसे असत् हैं. सबका अनित्य मानना अविद्या है ॥ ९ ॥

महत्यनेकद्रवत्वाद्रूपाच्चोपलब्धिः ॥६॥

अनेकद्रव्यवान् होनेसे व रूपसे महान् द्रव्यमें (वडेद्रव्यमें) प्रत्यक्ष होताहै ॥ ६ ॥

परमाणु प्रत्यक्ष न होनेका हेतु सूचित करनेके लिये यह कहा है कि प्रत्यक्ष (नेत्रआदि इन्द्रियद्वारासे उत्पन्न ज्ञान) महान् द्रव्यमें अर्थात् महत्परिमाणवान् (वडेपरिमाणवाले) द्रव्यमें होताहै. महत्परिमाणवान् द्रव्य अनेक द्रव्यवान् व रूपवान् होताहै. अनेक द्रव्यवान् होना व रूपवान् होना प्रत्यक्ष होनेका हेतु है इससे अर्थात् अनेक द्रव्यवान् होनेसे व रूपवान् होनेसे महान् द्रव्यमें प्रत्यक्ष होताहै. परमाणु महान् द्रव्य नहीं है इससे प्रत्यक्ष नहीं होता. जो यह संशय हो कि वायु महत्परिमाणवाला द्रव्य है वह क्यों प्रत्यक्ष नहीं होता, इस संदेहनिवृत्तिके लिये रूपसे प्रत्यक्ष होना कहा है. वायुमें रूप नहीं है इससे महान् (वडा) होनेपर भी प्रत्यक्ष नहीं होता. जो यह संशय हो कि महत्परिमाणवाले कार्यद्रव्यमें जो महत्त्व (वडापन) होताहै वह कारणहीसे होना चाहिये परन्तु कारण परमाणुमें महत्त्व नहीं है इससे कार्य त्रसरेणु आदिमें महत्त्व होना कैसे संभव है इस संशय निवारणके लिये अनेक द्रव्यवान् होना कहाहै, अर्थात् महत्त्व उत्पन्न होनेके अर्थ अनेक द्रव्यवान् होनेकी आवश्यकता है. जब अनेक अणुद्रव्योंका समवायिसम्बन्धसे संयोग

होता है तब अनेक द्रव्यवान् होनेसे कार्यद्रव्यमें महत्परिमाण होता है. त्रसरेणु आदि कार्यमें अनेक द्रव्यवान् होनेसे महत्त्व होताहै, परमाणुमें अनेक द्रव्यवत्त्व (अनेक द्रव्यवान् होना) नहीं है इससे महत्त्व व सावयवत्त्व नहीं है ६

सत्यपि द्रव्यत्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद्वायोरनुपलब्धिः ॥ ७ ॥

द्रव्य होने व महान् होनेपर भी रूपके संस्कारके अभावसे वायुकी उपलब्धि नहीं होती अर्थात वायु प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ ७ ॥

यद्यपि वायु द्रव्य है व महत्परिमाणवाला है तथापि रूपके संस्कारके अभावसे (न होनेसे) प्रत्यक्ष नहीं होता. जो यह संशय हो जब स्पर्शवान् है तो रूप भी होना संभव है इसका उत्तर यह है कि, यद्यपि रूप हो परन्तु वायुमें रूपसंस्कार नहीं है. सूत्रमें रूपसंस्कार कहनेसे उस रूपसे अभिप्राय है जो रूप समवायि हो उद्भूत हो (प्रकट) व नेत्र ग्राह्य हो व अभिभूत न हो (प्रबलतेजसे मध्यदिनमें उल्काके तेजके समान छिपा व धुंधला न हो) ऐसा संस्कार न होनेसे रूप प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् जैसे यद्यपि तेजमें रूप है परन्तु ग्रीष्मऋतुके घाम व अग्निसंयोगसे गरम हुये या तपेहुये वस्तुमें जो तेज है जिससे उसके गुण उष्णता (गरमी)का

बोध होता है उसका रूप प्रत्यक्ष नहीं होता, अर्थात् उसमें रूपके संस्कारके अभावसे उसका रूप प्रत्यक्ष नहीं होता ऐसही वायुमें उद्भूत रूप (नेत्रग्राह्य रूप)के अभावसे वायुका रूप प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ ७ ॥

अनेकद्रव्यसमवायाद्रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥ ८ ॥

अनेक द्रव्यके समवायसे व रूपविशेषसे रूपकी उपलब्धि (रूपकी प्रत्यक्षता) होती है अर्थात् रूप प्रत्यक्ष होता है ॥ ८ ॥

पूर्वसूत्रमें रूपके संस्कारके अभावसे वायुका प्रत्यक्ष न होना (नेत्रगोचर न होना) कहा है. अब इस सूत्रमें रूपके प्रत्यक्ष होनेका हेतु वा लक्षण वर्णन किया है कि, अनेक द्रव्यके समवायसे व रूपविशेषसे रूप प्रत्यक्ष होता है. सामान्यसे जो रूप कारणमात्र परमाणु वा द्व्यणुकमें हो वा होता है वह प्रत्यक्ष नहीं होता व परमाणुओंसे उत्पन्न त्रसरेणु आदि जो द्रव्य हैं उन अनेक द्रव्योंके समवायसे कार्यरूप घट पट आदि द्रव्य होते हैं उनमें रूपविशेष इन्द्रियग्राह्य प्रकट होता है. इन्द्रियग्राह्य (इन्द्रियसे ग्रहण करनेके योग्य) विशेषरूप होनेसे विशेषरूप प्रत्यक्ष होता है ॥ ८ ॥

तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातं९

उसी प्रकारसे (वैसही) रस गन्धस्पर्शोंमें ज्ञान व्याख्यात है ॥ ९ ॥

वैसही अर्थात् जैसा रूपमें कहा गया है उसी प्रकारसे रस गन्ध स्पर्शोंमें ज्ञान होना व्याख्यात है यह समुझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि, जैसे अनेक द्रव्यके समवायसे व रूपविशेषसे रूप प्रत्यक्ष होता है वैसही अनेक द्रव्यके समवाय व रसविशेषसे रस, व गन्धविशेषसे गन्ध, स्पर्शविशेषसे स्पर्शका प्रत्यक्ष होना समुझना चाहिये. यथा विशेष न होनेसे यद्यपि पाषाणमें गन्ध व रस हैं परन्तु प्रत्यक्ष नहीं होते, भस्म होनेमें (पाषाणके भस्म होनेमें) प्रत्यक्ष होते हैं. अतिसूक्ष्म विथरे हुये कपूर आदिके अणुओंमें अर्थात् अणुरूपसे विथरे हुये कपूरमें गन्धमात्रका ज्ञान होता है. रूप रस स्पर्श उद्भूत (इन्द्रियग्राह्य वा प्रकट) न होनेसे रूप रस स्पर्श प्रत्यक्ष नहीं होते ऐसही अन्यत्र समुझना चाहिये ॥ ९ ॥

तस्याभावादव्यभिचारः ॥ १० ॥

उसके अभावसे व्यभिचार नहीं है ॥ १० ॥

उसके (प्रत्यक्ष होनेका जो हेतु वा कारण कहा गया है उसके) अभावसे (न होनेसे) गुरुत्व (गुरुवाई) आदि जो गुण प्रत्यक्ष नहीं होते उनके प्रत्यक्ष न होनेमें

हेतुमें व्यभिचार (अतिव्याप्ति व अव्याप्तिदोष) नहीं है, अर्थात् यथार्थ न होनेका दोष नहीं है, किन्तु प्रत्यक्ष न होनाही यथार्थ है. अभिप्राय यह है कि जो गुरुत्व आदिके प्रत्यक्ष न होनेमें ऐसी आशंका की जाय कि, गुरुत्व (गुरुवाई) का अनेक द्रव्य समवायसहित कार्यद्रव्यमें महत्त्व (बडाई) व रूप आदिके साथही रहने वा होनेका सम्बन्ध है अर्थात् जिस द्रव्यमें महत्त्व व उद्भूत वा विशेषरूप रहते हैं उसीमें गुरुत्व भी होता है. महत्त्व व रूपके साथ एकही द्रव्यमें रहनेवाला होनेसे रूपके समान गुरुत्वको भी प्रत्यक्ष होना चाहिये, परन्तु गुरुत्व प्रत्यक्ष नहीं होता इससे अनेक द्रव्यके समवायसे व रूपविशेषसे प्रत्यक्ष होनेका कारण यथार्थ नहीं है तो उत्तर यह है कि, यह कल्पना करनाही मिथ्या है, क्योंकि समानाधिकरण होना (एकही द्रव्यमें रहना) प्रत्यक्षका कारण वा हेतु नहीं कहा गया. अनेक द्रव्यका समवाय व रूपविशेषका होना हेतु कहा गया है. इससे हेतु वा कारण होनेका अभाव है व गुरुत्व व रूपके एकअधिकरण (आश्रयद्रव्य) में रहनेसे एकका दूसरेके समान प्रत्यक्ष होना मानना केवल बुद्धिभ्रम है, क्योंकि गुरुत्व आदिका रूपवान् आदि होना जो प्रत्यक्ष होनेका हेतु है, गुणमें गुण न होनेसे असंभव है व रूपवान् आदि द्रव्योंमें जो गुरुत्व व रूपका सम्बन्ध है उसमें पर-

त्यागकी इच्छा होती है उसके ग्रहण वा त्यागकी इच्छासंयुक्त उपाय वा अनुष्ठानलक्षणरूप जो व्यापार है वह चेष्टा है. गन्ध रस रूप स्पर्श शब्दका जिनके द्वारा बोध होता है अर्थात् नासिका जिव्हा नेत्र त्वक् कर्ण यह इन्द्रिय हैं व जो अर्थ शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध व अन्य पदार्थ इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् जाने जाते हैं वह विषय हैं. शरीरको चेष्टा इन्द्रिय व अर्थका आश्रय इससे कहा है कि, चेष्टा शरीरहीमें होती है, इन्द्रियोंका आश्रय होना शरीरका प्रत्यक्षसे सिद्ध है व पृथिवी जल तेज वायु आकाश भूतोंसे संयुक्त होनेसे शरीरमें प्रत्येक पृथिवी आदिके गुण गन्ध रस रूप आदि भी अवश्य सामान्य व विशेष भेदसे आश्रित है, यह प्रत्यक्ष व अनुमानसे सिद्ध है, अथवा इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रियोंके आश्रय शरीरहीमें अर्थोंका व अर्थोंके सन्निकर्षसे उत्पन्न सुखदुःखका ज्ञान होता है इससे शरीरको अर्थका आश्रय कहा है यह समुझना चाहिये ॥ १ ॥

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात्पञ्चात्मकं न विद्यते ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षोंका संयोग प्रत्यक्ष न होनेसे पंचात्मक नहीं है ॥ २ ॥

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षोंका संयोग प्रत्यक्ष नहीं होता, यथा

प्रत्यक्ष वनस्पती व अप्रत्यक्ष वायुका संयोग प्रत्यक्ष नहीं होता तथा, जो शरीर पंचात्मक अर्थात् पंचभूत पृथिवी जल तेज वायु आकाशके संयोगसे रचित होता तो पृथिवी जल तेज प्रत्यक्ष व वायु व आकाश अप्रत्यक्षोंका संयोगरूप शरीर प्रत्यक्ष न होता. प्रत्यक्ष होता है, इससे पंचात्मक अर्थात् पांचभौतिक (पृथिवी जल तेज वायु व आकाश पांच भूतोंसे रचित) नहीं है ॥ २ ॥

गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च न त्र्यात्मकम् ३

अन्य गुणके प्रकट न होनेसे त्र्यात्मक (पृथिवी जल तेज तीन भूतोंसे संयुक्त) नहीं है ॥ ३ ॥

पूर्वसूत्रमें अप्रत्यक्षोंका संयोग प्रत्यक्ष न हो. न होनेसे शरीरके पंचात्मक होनेका निषेध किया है. अब जो यह मानाजाय कि शरीर त्र्यात्मक है अर्थात् पृथिवी जल तेज इन तीन प्रत्यक्ष भूतोंसे बना है इससे प्रत्यक्ष होता है, इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि अन्यगुणके प्रकट न होनेसे त्र्यात्मक नहीं है. भाव इसका यह है कि, शरीरका त्र्यात्मक होना व प्रत्यक्ष होना संभव था परन्तु जो उसमें अन्य गुण कारणगुणपूर्वक (कारणगुणसे) उत्पन्न होते ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि एक एक गुण गन्ध आदि अन्य गुणके आरम्भक (उत्पन्नकर्ता) नहीं होते यह पूर्वही कहागया है इससे

तीन प्रत्यक्ष भूत पृथिवी आदिसे भी आरब्ध (उत्पन्न) नहीं हैं ॥ ३ ॥

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ॥ ४ ॥.

परन्तु अणुसंयोग (अणुओंका संयोग) प्रतिषेध-रहित है ॥ ४ ॥

पूर्वसूत्रमें जो शरीरके पंचात्मक व त्र्यात्मक होनेका निषेध किया है उसमें यह आशंका होती है कि, जो विना पंचभूतोंके शरीर बना है ऐसा माना जावै तो अन्न आदि पचानेकी अग्नि आदि व गन्ध रूप आदिका होना शरीरमें क्यों विदित होता है इसके समाधानके लिये यह कहा है कि, पूर्वसूत्रोंमें विजातीय अणु किसी द्रव्यमें असमवायिकारण नहीं होते यह प्रतिषेध कियागया है. नियामक (नियम करनेवाला ईश्वर)के नियमसे पृथिवी आदि पंचभूतोंके अणुओंके संयोगका प्रतिषेध नहीं कियागया, अर्थात् पंचभूतोंके परस्परके संयोगका प्रतिषेध नहीं है. पंचभूतोंके सयोगसे शरीर उत्पन्न होता है इनके संयोगसे पाकआदि होनेका बोध उदरमें व रूप व गन्ध आदिका बोध शरीरमें होता है, जो यह जिज्ञासा हो कि, मुख्य प्रकृति शरीरकी क्या है तो शरीर पृथिवीद्रव्यविशिष्ट है क्योंकि विशेष पृथिवीके गुणका बोध शरीरमें होता है. गन्ध पृथिवीका विशेषगुण

शरीरके नाश होनेतक व मृतक शरीरमें भी ज्ञात होता है. पाक (पचानेकी अग्नि) आदि शुष्क (सूखे) मृतक शरीरमें विदित नहीं होते इससे अन्य गुण औपाधिक हैं, गन्धगुण शरीरमें स्वाभाविक है, गन्धके स्वाभाविक होनेसे शरीरका पार्थिव (पृथिवीसे रचित) होना सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ॥ ५ ॥

तिनमें शरीर योनिज व अयोनिज दो प्रकारका है ॥ ५ ॥

तिनमें (पार्थिव शरीरोंमें) योनिज (जो योनिसे उत्पन्न होता है) व अयोनिज (जो योनिसे उत्पन्न नहीं होता) भेदसे शरीर दो प्रकारका होता है. योनिज शरीर मनुष्य व पशु आदिके हैं. अयोनिज शरीर वरुण आदित्य देवताओं व ऋषिओंके प्रसिद्ध हैं. यथा यह लिखा है ब्रह्मणो मानसा मन्वादयः अर्थ ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मनु आदिक पुत्र हैं. जो यह शंका हो कि योनिमें वीर्य प्राप्त होनेसे योनि शरीरकी उत्पत्तिकी कारण होती है वे कारण कार्य कैसे होसक्ता है तो उत्तर यह है कि, योनि शरीरउत्पत्तिका अवश्य कारण नहीं है अर्थात् समवायिकारण नहीं है. क्योंकि मसा खटमल जुंवा आदि योनिके विना उत्पन्न होते हैं यह प्रत्यक्ष अ-

योनिज शरीर है, योनिज शरीर दो प्रकारके होते हैं जरायुज व अण्डज. मनुष्य पशु आदिके शरीर जरायुज हैं, सर्प व पक्षी आदिके शरीर अण्डज हैं ॥ ५ ॥

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ॥ ६ ॥

नियत दिशा व देशपूर्वक न होनेसे ॥ ६ ॥

जो यह शंका हो कि, शुक्र (वीर्य) व शोणित (रुधिर) के परमाणुओंसे उदरदेशमें शरीरकी उत्पत्ति होती है. अयोनिज शरीर कैसे उत्पन्न होसकते हैं इस संशयनिवारणके लिये यह कहा है कि, अयोनिज शरीरका नियत दिशादेशपूर्वक होनेका नियम नहीं है. विना दिशा व देशनियमके उत्पन्न होते हैं जैसे मसा व दंश आदि विना वीर्य व रुधिर परमाणुओंके व उदरदेशके सब देशमें प्राप्त परमाणुओंसे अदृष्टवश उत्पन्न होते हैं ऐसही अन्य शरीरोंकी उत्पत्तिके लिये परमाणु कहीं दुर्लभ नहीं हैं, क्योंकि परमाणुओंके लिये कोई दिशा देश नियत (नियम कियागया) नहीं है, इन्ही परमाणुओंसे जिनका कोई दिशा व देश नियत नहीं है. शरीर उत्पन्न होते हैं अर्थात् अयोनिज शरीके उत्पन्न होनेके लिये सब स्थान सब दिशा व देशमें पृथिवी जल तेज व वायुके परमाणु परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥

धर्मविशेषाच्च ॥ ७ ॥

धर्मविशेषसे भी ॥ ७ ॥

धर्मविशेषसे अयोनिज शरीर देवता व ऋपिओंके होते हैं, प्रथम उत्पत्तिसमयमें परमाणुओंमें संचलनकर्म होता है व पूर्वसंस्कारसे आत्माका संयोग होता है, आत्माके संयोग होनेसे परमाणुओंसे देवता व ऋपिओंके अयोनिज शरीर उत्पन्न होतेहैं जैसे अधर्मविशेषसे मशक व दंश आदिके शरीर अयोनिज उत्पन्न होते हैं ऐसही धर्मविशेषसे देवता व ऋपिओंके शरीर अयोनिज उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥

समाख्याभावाच्च ॥ ८ ॥

नामोंके होनेसे भी ॥ ८ ॥

स्मृति व शास्त्रमें अयोनिजोंके नाम यथा मनु मरीचि आदि पाये जाते हैं इन नामोंके होनेसे अयोनिज शरीरोंके होनेका प्रमाण है ॥ ८ ॥

संज्ञाया अनादित्वात् ॥ ९ ॥

संज्ञाके अनादि होनेसे ॥ ९ ॥

सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मा आदिके नाम वेदमें प्रसिद्ध होनेसे संज्ञाओंका अनादि होना सिद्ध होता है अर्थात् यह शास्त्रसे प्रसिद्ध है कि, प्रलयके पश्चात् जब फिर सृष्टि होती है तब फिर जो नाम जिस देवताविशेषका अधिकार विशेषसे पूर्वकल्पमें होता है वही स्वरूप व अधिकार विशेषसे

देवता व सिद्ध ईश्वर नियमसे उत्पन्न हुये वही नामसे कहे जाते हैं अर्थात् वही पूर्वकल्पके नामसे फिर वेदसे प्रसिद्ध किये जाते हैं, ऐसेही प्रलय व सृष्टिक्रमके अनादि होनेसे व सृष्टिके आदिमें पूर्वसम्बन्धसे ब्रह्मा आदि अयोनिजोंके नाम वेदमें प्रसिद्ध होनेसे संज्ञा (नाम)का अनादि होना सिद्ध होता है, क्योंकि सृष्टिके आदिमें उत्पन्न अयोनिज ब्रह्मा आदिके नाम रखनेको माता पिता नहीं होते, ब्रह्म आदिके नाम वेदमें अनादि सिद्ध होनेसे प्रत्येक कल्पान्तमें नियम-अनुसार ईश्वरइच्छासे वेद प्रकाशित होनेसे प्रसिद्ध होते हैं

सन्त्ययोनिजाः ॥ १० ॥

अयोनिज (विनायोनि उत्पन्न) हैं ॥ १० ॥

पूर्वोक्त (कहेहुये) सूत्रोंके प्रमाणोंसे अयोनिज ब्रह्मा मनु मरीचि आदिके शरीरविशेष हैं ॥ १० ॥

वेदलिङ्गाच्च ॥ ११ ॥

वेदलिङ्गसे (वेदके प्रमाणसे अथवा वेदद्वारा **प्रमाण होनेसे भी ॥ ११ ॥**

वेदके प्रमाणसे भी अर्थात् वेदमें ब्रह्मा आदि अयोनिजोंकी उत्पत्ति व नाम होनेसे भी अयोनिज शरीर होना सिद्ध है. पूर्वसूत्रमें केवल अपने अनुमानसे अयोनिज होनेके हेतु वर्णन करके इस सूत्रमें वेदलिङ्ग कहनेसे वेदवाक्यके

प्रमाणसे अभिप्राय सूचित किया है. अन्यसूत्रोंमें वेदका नाम स्पष्ट नहीं कहा, वेदमें नाममात्र अयोनिज ब्रह्माआदिके होनेसे व स्मृतिमें वर्णित इतिहासके अनुसार अनुमान करके अब सिद्धान्तमें जिनमें स्पष्ट अयोनि उत्पन्न होनेको वर्णन किया है उन वेदवाक्यका प्रमाण दिया है, उन अयोनि उत्पत्तिविधायक वेदवाक्यको वेदलिङ्ग कहा है, यथा अयोनिज ब्रह्माकी उत्पत्तिदर्शक यह वेदवाक्य वा श्रुति है यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ अर्थ जो पूर्वमें (कल्पकी आदिमें) ब्रह्माको उत्पन्न करता है व जो ब्रह्माके अर्थ ब्रह्माकी बुद्धिमें वेदोंको प्रकट वा उदय करता है उस आत्मस्वरूप बुद्धिमें प्रकाशमान देव परमेश्वर शरणको अर्थात् परम अभयस्थान कल्याण वा मोक्षरूपको मैं मुमुक्षु (मोक्ष चाहनेवाला) प्राप्त हूं इत्यादि ॥ ११॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीप्रभुदयालुनिर्मिते चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । समाप्तश्चायं चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पंचमाध्यायप्रारंभः ।

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्या हस्ते कर्म १

आत्माके संयोग व प्रयत्नसे हाथमें कर्म होता है१

इस अध्यायमें कर्मपरीक्षाका वर्णन है, प्रयत्नसे जो कर्म होते हैं उनको प्रथम वर्णन करते हैं उनमेंसे उत्क्षेपणप्रकरण पुण्यकर्म प्रकरण व पुण्य पाप व दोनोंसे रहित कर्मप्रकरणको क्रमसे इस आन्हिकमें वर्णन करेंगे. चेष्टाको अधिकार करके इस सूत्रमें यह कहा है कि, आत्माके संयोग व प्रयत्न (इच्छाविशेष)से हस्त (हाथ)में कर्म होता है. हाथमें कर्म होनेमें हाथ समवायिकारण है. कर्मका प्रयत्नवान् आत्माके साथ संयोग होना असमवायिकारण है व प्रयत्न निमित्तकारण है यही चेष्टाहै, क्योंकि प्रयत्नवान् आत्माके साथ संयोग होना जिस क्रियाका असमवायिकारण हो उसको चेष्टा कहते हैं ॥ १ ॥

तथा हस्तसंयोगाच्च मुसले कर्म ॥२॥

तथा हस्तके संयोगसे मुसलमें कर्म होता है ॥२॥

यथा आत्माके संयोग व प्रयत्नसे हाथमें कर्म होता है तथा आत्माके प्रयत्न व संयोगसहित हाथके संयोगसे मुसलमें कर्म होता है इसमें प्रयत्नवान् आत्मासे संयुक्त हाथके

साथ मुसलका संयोग होना असमवायिकारण है. मुसल समवायिकारण है व प्रयत्न निमित्तकारण है ॥ २ ॥

अभिघातजे मुसलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः ॥ ३ ॥

अभिघात (ठोकर वा चोंट)से उत्पन्नकर्म मुसल आदिमें कर्म पृथक् होनेसे हाथका संयोग कारण नहीं है ॥ ३ ॥

ऊखलमें घात होनेसे जो अकस्मात् (एकवारगी या एकाएक) मुसलमें कर्म उत्पन्न होता है उसमें यद्यपि हाथका संयोग भी रहता है तथापि हाथका संयोग उसमें कारण नहीं है या नहीं होता, उसमें ऊखलका अभिघातही कारण है, क्योंकि जो प्रयत्न या इच्छासे उत्पन्न कर्म होता तो आपहीसे घातसे उत्पन्न अकस्मात् न होता. प्रयत्नसे मुसलका ऊखलमें धारण होता, फिर चेष्टाके अधीन चेष्टा अनुसार उसका उत्क्षेपण होता, अकस्मात् प्रयत्नसे पृथक् कारणसे उत्पन्न होनेसे घातही कारण है हाथका संयोग कारण नहीं है

तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि ॥ ४ ॥

तथा हाथके कर्ममें आत्माका संयोग कारण नहीं है ॥ ४ ॥

कारण नहीं है यह पूर्वसूत्रसे अनुवृत्तिसे ग्रहण किया-जाता है. जैसे घातसे उत्पन्न उत्क्षेपणकर्म जो मुसलमें होता है उसमें हाथका संयोग कारण नहीं होता तैसही जो घातसे अकस्मात् मुसलमें कर्म होने व मुसलके संयोगसे मुसलमें कर्म होनेसे हाथमें भी कर्म होता है उस हाथके कर्ममें आत्माका संयोग कारण नहीं है ॥ ४ ॥

अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म ५

अभिघातसे व मुसलके संयोगसे हाथमें कर्म होता है ॥ ५ ॥

अभिघातसे मुसलमें कर्म होता है व मुसलका संयोग हाथमें होनेसे हाथमें भी कर्म होता है अर्थात् अभिघातसे उत्पन्न संस्कार व मुसलके संयोगसे हाथमें कर्म होता है, यह इसलिये वर्णन किया है जिससे यह संशय नहो कि, हाथके कर्ममें आत्माका संयोग कैसे कारण नहीं है वा कैसे विना आत्माके संयोग कर्म उत्पन्न होता है अर्थात् यह स्पष्ट विज्ञापित करदिया कि, ऐसा कर्म है जिसमें आत्माका संयोग-कारण नहीं है ॥ ५ ॥

आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

आत्माका कर्म भी हाथके संयोगसे ॥ ६ ॥

आत्माशब्द यहां शरीरवाचक है, अर्थात् आत्माशब्दका

अर्थ शरीर है. जैसे अभिघातके संस्कारसे व मुसलके संयोगसे हाथमें कर्म होता है ऐसही हाथके संयोगसे शरीर व शरीरके अन्य अवयवोंमें भी कर्म होता है॥ ६ ॥

संयोगाभावे गुरुत्वात्पतनम् ॥ ७ ॥

संयोगके अभावमें (न होनेमें) गुरुत्वसे पतन होता है ॥ ७ ॥

संयोग न होनेमें गुरुत्व (गुरुवाई)से पतन (गिरना) होता है, संयोगशब्दसे यहां प्रतिबन्धकमात्र (रोकनेवाला संयोग) ग्रहण करना चाहिये. संयोग न होने अथवा न रहनेसे पतन होनेका दृष्टान्त यह है. यथा वृक्षका संयोग छूटनेपर फल गुरुत्वसे पृथिवीमें गिरता है अर्थात् जब किसी अन्यपदार्थके रोक वा संयोगका अभाव होता है तब गुरुत्व पतनका कारण होता है अर्थात् गुरुत्वसे पतन होता है ऐसही वृक्षके शाखा फल आदिके गिरनेमें तथा अन्यत्र समुझना चाहिये ॥ ७ ॥

नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् ॥ ८ ॥

प्रेरणाविशेषके अभावसे न उपर गमन होता है (उपर जाता है) न तिरछा गमन होता है ॥ ८ ॥

बाण आदिमें जो ऊर्ध्वगमन वा तिर्यग्गमन (तिरछा

चलना) होता है वह प्रेरणाविशेषसे होता है. यद्यपि इनमें गुरुत्व है, परन्तु नोदनविशेष (प्रेरणाविशेष)से पतन नहीं होता, ऊर्ध्व वा तिर्यग्गमन होता है. फलका संयोग न रहनेसे पक्षीका प्रयत्न न रहनेसे अर्थात् जिस प्रयत्नसे वह वायुमें उडता है वह न रहनेसे व बाणमें प्रेरणाके संस्कार न रहनेसे पतन होता है, अर्थात् संयोग प्रयत्न व संस्कारके अभावमें यह गिरते हैं. गिरनेमें प्रेरणाविशेष न होनेसे ऊर्ध्व व तिर्यग्गमन नहीं होता ॥ ८ ॥

प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ॥ ९ ॥

प्रयत्नविशेषसे नोदन (प्रेरणाविशेष) होता है ९

यथा ऊपर नीचे सीधे फेंकनेका जैसा प्रयत्नविशेष होता है वैसही प्रयत्नसे नोदनविशेष होता है ॥ ९ ॥

नोदनविशेषादुदसनविशेषः ॥ १० ॥

नोदन(प्रेरणा)विशेषसे विशेष उपरका फेंकना होता है ॥ १० ॥

नोदनविशेषसे दूर उपरका फेंकना होता है, यह वर्णन उपलक्षणमात्रके लिये है. इसी प्रकारसे नोदनविशेषसे ऊर्ध्व तिर्यग्गमन निकट व दूर गमनविशेष समुझना चाहिये ॥१०॥

हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्यातम् ११

हाथके कर्मसे (हाथके कर्मके समान) बालकका कर्म व्याख्यात है ॥ ११ ॥

जैसे उखलके अभिघातसे मुसल व हाथमें जो कर्म उत्पन्न होता है वह प्रयत्नपूर्वक नहीं होता. प्रयत्नपूर्वक न होनेसे पाप व पुण्यका हेतु भी नही समझा जाता, ऐसही बालकका कर्म पापपुण्यका हेतु नहीं होता, अर्थात् यद्यपि बालकका हाथ पैर चलानेका कर्म प्रयत्नपूर्वक होता है तथापि बालकके अज्ञान होनेसे हित व अहित प्राप्त होने व पाप व पुण्यका हेतु नहीं होता ॥ ११ ॥

तथा दग्धस्य विस्फोटने ॥ १२ ॥

तैसही दग्ध (जले वा जलाये)का कर्म विस्फोटन (फूटने)में ॥ १२ ॥

जैसे पूर्वही बालकके कर्मको कहा है कि, पाप व पुण्यका हेतु नहीं होता तैसही जिसके घरमें किसी आततायीनें आग लगादिया है, उस आगसे जलते व शरीरमें फफोडा फूटनेके समयमें आततायीसे जलायागया जो कर्म किसी प्रकारसे उस आततायीके वधके लिये करै वा उससे आततायीको वध करै वह उस दग्ध (जलायेहुये)का कर्म पापका हेतु नहीं होता, न पुण्यका हेतु होता है, क्योंकि ऐसा कहागया है कि, आततायीके वधमें दोष नहीं है. आग लगानेवा-

ले, विष देनेवाले, हथियारसे मारनेवाले, धन चोरालेनेवाले, बलात्कारसे (जबरदस्तीसे) स्त्री छीनलेनेवाले व खेत वा जमीन-छीन लेनेवाले यह छह आततायी कहलाते हैं. अथवा साधारण यही अर्थ सूत्रका ग्रहण किया जासकता है कि, दग्ध (जलेहुये)का कर्म जो आगसे जलते व शरीर फूटनेमें अर्थात् फूटने व जलनेके समयमें व्याकुलतासे कर चरण आदिसे करता है वह प्रयत्न व इच्छासे न होनेसे पाप व पुण्यका हेतु नहीं होता ॥ १२ ॥

प्रयत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम् ॥ १३ ॥

प्रयत्नके अभावमें (न होनेमें) प्रसुप्त (सुषुप्त)का चलनकर्म होता है ॥ १३ ॥

जो यह संशय हो कि, विना प्रयत्न कर्म कैसे होसकता है इससे यह दृष्टान्त दिया है कि, जो प्रसुप्त है अर्थात् अच्छी तरह सोयाहुवा सुषुप्तअवस्थाको प्राप्त है उसके अंगोंका सोतेहुयेमें चलना विना प्रयत्नके होता है, इससे सर्वत्र प्रयत्न ही कर्मका हेतु नहीं है ॥ १३ ॥

तृणे कर्म वायुसंयोगात् ॥ १४ ॥

वायुके संयोगसे तृणमें कर्म होता है ॥ १४ ॥

शरीरके कर्मका वर्णन करके अब अन्यकर्मका वर्णन करते हैं. यथा तृणमें कर्म वायुके संयोगसे होता है यह एक

उपलक्षणमात्र है, ऐसही वृक्ष झाडी आदिमें जानना चाहिये ॥ १४ ॥

मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् ॥ १५ ॥

मणिके चलने व सूजिओंके सरकने वा सन्मुख चलनेमें अदृष्ट (अज्ञात) कारण है ॥ १५ ॥

मणिके चलनेका वर्णन पूर्वटीकाकारोंने यह किया है कि, जलसे पूर्ण सुवर्ण आदिके पात्र जिनमें चोरीके पता लगानेके किये प्रयोग कियाजाता है, मणि कहेजाते हैं ऐसे पात्रमें मन्त्र पढनेवाला प्रयोग करता है. मन्त्रके सामर्थ्यसे वह जहां चोरीका धन होता है उधर चलता है, जिस स्थानमें चोरीका धन होता है वहां पहुचकर स्थिर होता है, अथवा जो चोरके पास जानेका प्रयोग कियाजाता है तो चोरके पास जाकर स्थिर होता है, ऐसे मणिपात्रके चलनेमें अदृष्ट (अज्ञात) कारण है, इसमें धनके स्वामीका सुकृत व चोरका दुष्कृत निमित्तकारण व मणि (उक्तपात्र) समवायिकारण होना अनुमित होता है, ऐसही चुम्बकके समीप होनेमें सूजिओंके अर्थात् लोहेके शलाकोंके चुम्बकके सन्मुख चलनेमें अदृष्ट कारण है. मणिगमनका अथवा यह अर्थ ग्रहण कियाजाय कि, मणिके पास वा सन्मुख चलना मणिगमन है तो तृणकान्तमणिसे आकर्षित हो तृण उसके सन्मुख चलते हैं, त-

णाके इस मणिगमन (मणिके पास जाने)में अदृष्ट कारण है, अथवा आचार्यके लेखसे यह निश्चय करना चाहिये कि, कोई मणि ऐसी होगी जो किसी पदार्थसे आकर्षित होनेसे चुम्बकके सन्मुख लोहेके शलाकाके चलनेके समान चलती होगी उसके गमनमें अदृष्ट कारण है, ऐसही अग्निके ऊपरके तरफ चलनेमें वायुके तिरछा बहनेमें सृष्टिकी आदिमें परमाणुओंमें कर्म होनेमें अदृष्ट कारण समुझना चाहिये ॥ १५ ॥

इषावयुगपत्संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः ॥ १६ ॥

अनेक एकसाथ न होनेवाले संयोगविशेष बाणमें कर्मके अन्य होनेमें हेतु हैं ॥ १६ ॥

चलायेहुये बाणमें प्रथम कर्मकी उत्पत्ति होती है, फिर धनुषसे विभाग, फिर पूर्वदेशके संयोगका नाश व अन्यसंयोग अर्थात् उत्तरदेशका संयोग होता है, उत्तरसंयोगसे प्रथम कर्मका नाश होता है, फिर प्रेरणा संस्कारसे उत्पन्न वेगसे जानेमें ऐसही अनेक पूर्व पूर्वदेशोंके संयोगसे विभाग व उत्तर उत्तरदेशोंके संयोग होनेसे अनेक संयोग एकके उत्तर एक होते जाते हैं, अनेक पूर्व देशोंके संयोगके विभाग व उत्तरदेशोंके संयोग होनेमें अनेक कर्म होना भी प्रत्येक देशान्तरमें विदित होता है. जबतक संस्कार न रहनेसे पृथि-

बीमें बाणका पतन नहीं होता या देवार आदि रोकनेवाले द्रव्यमें संयोग नहीं होता तबतक कर्मसंतान चलाजाता है, इससे बाणहीसे उत्पन्न अर्थात् बाणहीकी गतिसे उत्पन्न उक्तप्रकारसे एकसाथ न होनेवाले संयोगविशेष कर्मके अन्य होनेके अर्थात् अनेक होनेके हेतु होते हैं. व पूर्व पूर्व कर्मोंके नाशक होते हैं, ऐसे बाणसे उत्पन्न हुये एकसाथ न होनेवाले संयोगोंको संयोगविशेष कहा है, क्योंकि जब चलानेवाला बाणको धनुषमें धारण करता है तब बाणका संयोग धनुषसे व धनुष व बाणके साथ चलानेवालेके हाथ व दोनों हाथोंकी अंगुलियोंका संयोग होनेसे अनेक संयोग एकसाथ होते हैं, और यह संयोग कर्मनाशक नहीं होते, कर्मउत्पादक होते हैं इससे बाणमें जो एक एक संयोगके नाश होनेपर उन संयोगोंके नाशक अन्य अन्य उत्तरसंयोग होते हैं वह एकसाथ न होनेवाले संयोगविशेष नानाकर्म होनेके हेतु वा ज्ञापक उक्त प्रकारसे होते हैं इसी आशयको संदेह न रहनेके लिये अगले सूत्रमें सूत्रकारने आपही स्पष्ट वर्णन किया है ॥ १६ ॥

नोदनादाद्यमिषोः कर्म तत्कर्मकारिताच्च संस्काराडुत्तरं तथोत्तरमुत्तरं च १७

बाणका आद्य (आदिमें हुवा) कर्म नोदनसे

(प्रेरणासे) होता है व आद्यकर्मसे कराये गये वाणसे हुये वेगरूप संस्कारसे उत्तरकर्म तथा एक एकसें उत्तरकर्म होता है, अर्थात् आदिकर्मके कारण (हेतु)से हुये वाणके (कर्म) वेगरूप संस्कारसे उत्तर उत्तर कर्म होते हैं ॥ १७ ॥

मनुष्यप्रयत्न धनुष खींचनेसे प्रेरित बाणमें प्रथम कर्म होता है, उस कर्म वाणमें वेगरूप जो संस्कार होता है वह असमवायिकारण, वाण समवायिकारण, व प्रेरणाविशेष निमित्तकारण होता है. संस्कार रहनेतक जबतक गुरुत्वसे वाण पतित नही होता, एकके पश्चात् एक उत्तर उत्तरदेशमें कर्मसन्तान उत्पन्न होते जाता है, बाणके तीव्रगमन व मन्दगमन व दूर व निकट जानेमें नोदना(प्रेरणा)का तीव्र व मन्द होना कारण है ॥ १७ ॥

संस्काराभावे गुरुत्वात्पतनम् ॥ १८ ॥

संस्कारके अभावमें (न होनेमें) गुरुत्वसे पतन होता है ॥ १८ ॥

जब नोदनके संस्कारका अभाव होता है तब गुरुत्वसे वाण गिरपडता है, कोई समयमें नोदनसंस्कार होनेपर भी जब देवार वा अन्य किसी पदार्थकी रोक होजाती है तब वेग वा गमनकर्मका अभाव होजाता है, परन्तु संस्कारके

अभाव होनेपर विनाशकके पतन होता है. जबतक संस्कार रहता है, पतन नहीं होता अर्थात् नहीं गिरता ॥ १८ ॥

इति श्रीवैशेषिकदर्शने पंचमाध्याये प्रथममाह्निकं ।

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ।

नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां कर्म ॥ १ ॥

प्रेरणासे अभिघातसे, संयुक्तसंयोगसे, पृथिवीमें (पृथिवी कार्यद्रव्यमें) कर्म होता है ॥ १ ॥

पृथिवीमें अर्थात् पृथिवी कारणजन्य कार्य पदार्थोंमें कहीं प्रेरणासे कही घातसे कहीं संयुक्तसंयोगसे कर्म होता है, यथा बांस आदिमें कहीं अग्निके प्रेरणसे कर्म उत्पन्न होता है, कहीं कुठारके घातसे होता है व घोडे आदि संयुक्तोंकी रस्सीके संयोगसे रथमें कर्म होता है इत्यादि ॥ १ ॥

तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥ २ ॥

उनके विशेषसे (भेदसे) हुये कर्म अदृष्टकारणसे होता है ॥ २ ॥

उनके उक्त प्रेरणाआदिकोंके विशेष (भेद)सहित हुये

कर्म अर्थात् उनसे भिन्न कर्म जो होते हैं वह अदृष्टकारणसे होते हैं. यथा भूकम्प आदि, भूकम्पमें जिन जीवोंको सुख वा दुःख होता है उनका अदृष्ट (संस्कार) असाधारण कारण व अन्य हेतुविशेष कम्प होनेका साधारण कारण होता है ॥ २ ॥

अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥३॥

संयोगके अभावमें (न रहनेमें) गुरुत्वसे जलोंका पतन होता है ॥ ३ ॥

पृथिवीद्रव्यके कर्मको वर्णन करके अब द्रवद्रव्य (बहनेवाले द्रव्य) जलके कर्मवर्णनमें यह कहा है कि, जलोंका अर्थात् वर्षणरूप जलका जो पृथिवीमें पतन (गिरना) होता है वह मेघोंके संयोगके अभावसे गुरुत्वसे होता है, अर्थात् जलके अणुओंके संयोगमें समुदायरूप स्थूलकार्यस्वरूप मेघ होते हैं, व बिन्दु वा धारारूपसे जो जल पृथिवीमें गिरता है वह मेघोंका अवयवरूप अनुमानसे सिद्ध होता है. जब कारणविशेषसे अर्थात् सूर्यकी किरणोंकी गरमीविशेषसे मेघके जलरूप अवयवोंका विभाग होता है व गुरुत्वसे वायुके आधारमें रुक नहीं सकता तब जलके बिन्दु पृथिवीमें गिरते हैं, अर्थात् प्रथम जलके कार्यरूप स्थूल मेघ वायुविशेषके आधारमें रहते हैं. कारणविशेषसे अधिक गुरु होनेसे वायुके रोकमें न रहसकनेसे व मेघोंका

विभाग होनेसे मेघोंका अवयवरूप जल पृथिवीमें गिरता है, यह अभिप्राय है ॥ ३ ॥

द्रवत्वात् स्यन्दनम् ॥ ४ ॥

जलके द्रवत्वसे (पतला होनेसे) वहना होता है अर्थात् वहता है ॥ ४ ॥

जलके बिन्दु जो पृथिवीमें गिरते हैं उनके परस्पर संयोगसे अवयवीरूप धारा वा प्रवाह वहता है, वहकर दूरदेश महानद समुद्र आदिमें जाता है, ऐसा जलके द्रवद्रव्य होने वहनेके स्वभावसे होता है, अर्थात् द्रव्यद्रव्यका स्वभावही वहना है इससे वहता है ॥ ४ ॥

नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम् ॥ ५ ॥

नाडी (सूर्यकी किरणैं) वायुके संयोगसे जलके आरोहण (उपर चढने)को कराती हैं ॥ ५ ॥

सूर्यकी किरणैं वायुके संयोगसे जलके आरोहणको कराती हैं अर्थात् जल जो आरोहण करता है (आकाशको उपर जाता है) यह सूर्यकी किरणैं कराती हैं. कराती हैं यह सूत्रमें शेष है. जलशब्दकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे चली आती है. तात्पर्य यह है कि, वायुके संयोगसे सूर्यकी किरणोंसे जल उपरको चढता है, जलके आरोहणमें सूर्यकी किरणैं कारण होती हैं ॥ ५ ॥

नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

नोदनसे पीडनसे (घातसे) व संयुक्तसंयोगसे ॥ ६ ॥

भूमिसे जल कैसे उपरको चढता है, गुरुत्वसे उस्का पतन क्यों नहीं होता यह विज्ञापन (जनाने)के लिये यह कहा है कि, नोदन अभिघात व संयुक्तसंयोगसे जल उपरको जाता है. अर्थात् वायुके प्रेरण बल व घातसे व वायु संयुक्त किरणोंके संयोगसे वायुद्वारा जल उपरको जाता है. किरणोंकी गरमीसे प्रथम जलके अणु सूक्ष्म होकर फैल जानेसे जल पतला वा सूक्ष्म व हलका होता है, उसके पश्चात् वायुके प्रेरण व घातसे उपरको चढता है. यथा यह प्रत्यक्ष होता है कि, जब किसी पात्रमें अग्निके उपर जल रक्खा जाता है तब अग्निकी उष्णता (गरमी)से जल हलका व पतला वाफरूप हो जाता है, व वायुके प्रेरण व घातसे हलकापनसे पतित नहीं होता व उपरको चढता है, गरमीका गुण पतला व हलका करनेका है, व शीतका गुण जमाने व स्थूल करनेका है, इसीसे जल गरमीको पाकर वाफरूप होता है व शीतसे जमकर बरफरूप हो जाता है. गरमी व शीत कारणान्तर होनेसे वाफ व बरफरूप कार्यान्तर होते हैं. किरणोंकी गरमीसे जब जल हलका व सूक्ष्मरूप होता है तब वायुके नोदन व घातसे उपरको चढता है व किरणोंसे आकर्षितभी होता है, इससे जलके चढनेमें किरणोंका कारण वर्णन किया है ॥ ६ ॥

द्रवत्व रुक जाता है व जल ओला वा बरफरूप हो पृथिवीमें गिरता है, और गरमी पाकर फिर पिघलकर जलरूप हो जाता है, ऐसा सूत्रका अर्थ टीकाकारोंने लिखा है, व साधारण सूत्रके अर्थसे जलके जमने व पिघलनेका हेतु तेजका संयोगही ज्ञात होता है, परन्तु यह प्रत्यक्षसे विरुद्ध है, क्योंकि जल शीत होनेमें जमता है, तेजके संयोगमें गरमीसे कभी जमना प्रत्यक्ष नहीं होता. पिघलनेका कारण विशेष तेज वा अग्नि है, क्योंकि अग्निके संयोगसे मोम आदि व प्रबल तेजसे रांगा सुवर्ण आदि धातु पिघल जाते हैं. जलका तेजसे जमना यद्यपि प्रत्यक्षसे विपरीत विदित होता है तथापि जमेहुये जल (बरफ)को पयाल व कम्बलमें लपेट व सन्दूकमें बन्दकर गरम वस्तु व स्थानमें रखते हैं तब जमाहुवा बना रहता है, इससे तथा पिघला-हुवा शोरा व नमक तेजसे जमनेसे व महात्मा सूत्रकारके वचनसे दिव्यतेज (आकाशका तेजविशेष)के संयोगसे अवस्थाविशेषमें पिघले हुये शोरा आदि व दूधसे खोवा व ईपके रससे गुड होने आदिके समान जलके भी जमनेका अनुमान होता है, अथवा पूर्वसूत्रसे अदृष्टकारणसे होनेकी अनुवृत्ति ग्रहण करनेसे सूत्रका यह अर्थ युक्त व स्वीकारके योग्य हो सक्ता है कि, जलोंका संघात (जमना) अदृष्टकारणसे और पिघलना तेजके संयोगसे होता है.

तात्पर्य यह है कि, आकाशमें जल जमकर ओलारूप हो पृथिवीमें गिरते हैं. जमनेका कारण ईश्वरनियम दृष्ट न होनेसे जलका जमना अदृष्टकारणसे कहा है व पिघलनेका कारण तेजका संयोग कहा है, चशब्दसूत्रमें जिनका अर्थ और है। पिघलनेका हेतु तेजका संयोग अदृष्टसे भिन्न दूसरा सूचित करनेके लिये रक्खा है ॥ ८ ॥

तत्र विस्फूर्जथुर्लिङ्गम् ॥ ९ ॥

तिनमें घोर गरज लिङ्ग (चिह्न) है ॥ ९ ॥

तिनमें (आकाशके जमे वा कठिन हुये जलोंमें) दिव्यतेज (आकाशके तेज)के संयोग होनेका गरज लिङ्ग है अर्थात् बिजुली तेजरूपका अत्यन्त प्रकाश होना प्रत्यक्ष होता है, उसके पश्चात् गरजनेका घोर शब्द होना प्रत्यक्ष होता है इससे यह अनुमान होता है कि, जमकर पिण्डरूप हुये जलरूप मेघोंमें ईश्वर नियमविशेषसे तेजका प्रवेश होता है, उस दिव्यतेज (सूर्यके किरणों वा विद्युत्के तेज) की गरमीसे भिन्न २ मेघोंके अवयव होनेमें फूटनेसे घोर शब्द होता है व इसीसे ओला उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

वैदिकं च ॥ १० ॥

वैदिक भी है ॥ १० ॥

वैदिक भी है अर्थात् यह वेदप्रमाणसे भी सिद्ध है अ-र्थात् वेदमें भी वर्णित है ॥ १० ॥

अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः ११

जलोंके संयोगसे व मेघके विभागसे ॥ ११ ॥

वायुके साथ जलका संयोग होनेसे अर्थात् वायुके साथ घातरूप संयोग होनेसे व मेघसे विभाग होनेसे गरजनेका शब्द होता है. यद्यपि यह अर्थ टीकाकारोंने लिखा है परन्तु वायुके संयोग वा घातका अर्थ कल्पनामात्र है. तेजका सं-योग पूर्वमें कहागया है, इससे पूर्वसम्बन्धसे ऐसा अर्थ ग्र-हण करना युक्त है कि, तेजके साथ जलका संयोग होनेसे अर्थात् दिव्यतेजका मेघमें प्रवेश करनेरूप संयोग होनेसे व उस प्रबल तेजसे मेघों वा मेघका अवयवरूप जलका मेघों वा मेघसे विभाग होनेसे गरजनेका शब्द होता है. वायुस-हित तेजका संयोग वा घात अनुमानसे वा अन्य प्रमाणसे स्वीकार करना उत्तम है, क्योंकि वेदका प्रमाण जो पूर्वसू-त्रमें कहा है वह भी इसी अर्थका पुष्टकारक मिलता है, प-रन्तु विस्तार होनेके विचारसे अधिक नहीं लिखागया, सं-क्षेपसे सूचित कर दिया है ॥ ११ ॥

पृथिवीकर्मणा तेजःकर्म वायुकर्म च व्याख्यातम् ॥ १२ ॥

पृथिवीकर्मसे अर्थात् पृथिवीकर्मके समान तेजका कर्म व वायुका कर्म व्याख्यात है ॥ १२ ॥

यथा पृथिवीकर्म भूकंपमें अदृष्टवान् आत्माका संयोग कारण कहागया है, ऐसही आकस्मिक अग्निसे दिशादाह होना व वृक्ष आदिका गिरानेवाला अति प्रवल वायुका चलना कर्म जो होता है, उसमें भी पृथिवीके कर्मके समान अदृष्टवान् आत्माका संयोग कारण होता है, अर्थात् जिन आत्माओं(जीवों)की हानि होती है व दुःख होता है, उनके अदृष्टका सम्बन्ध होता है ॥ १२ ॥

अग्नेरूर्ध्वं चलनं वायोस्तिर्यक्पवनमणूनां मनसश्चाद्यकर्मादृष्टकारितम् ॥१३॥

अग्निकी ज्वालाका उपरको उठना वायुका तिरछा वहना अणुओंका व मनका आद्यकर्म (सृष्टिकी आदिमें हुवा कर्म) अदृष्टकारणसे होता है ॥१३॥

सृष्टिकी आदिमें उत्पत्तिकर्ममें नोदन (प्रेरणा) व अभिघात आदिके अभावमें अदृष्टवान् आत्माका संयोगही असमवायिकारण है, अर्थात् आदिमें अग्निका ऊर्ध्वज्वलन, वायुका तिर्यग्गमन व परमाणुओं व मनमें कर्म अदृष्टकारणसे होता है. अन्य वर्तमान अग्नि व वायुके ज्वलन व गमन

अर्थात् वेग व वहने आदि कर्ममें दृष्टकारण विदित होता है. अदृष्टकारणकी कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं है १३

हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्यातम् ॥ १४ ॥

हाथके कर्मसे अर्थात् हाथके कर्मके समान मनका कर्म व्याख्यात है ॥ १४ ॥

जैसे मुसलके उत्क्षेपण आदि हस्तकर्म प्रयत्नवान् आत्माके संयोगसे होता है व उसमें प्रयत्नवान् आत्माका संयोग असमवायिकारण होता है, ऐसही अभिमत विषय ग्रहणकरनेवाली इन्द्रियमें सन्निकर्षके अर्थ जो मनका कर्म होता है वह प्रयत्नवान् आत्माके संयोगसे होता है, उसमें प्रयत्नवान् आत्माका संयोग असमवायिकारण है. यद्यपि मन इन्द्रिय साक्षात् प्रयत्नका विषय नहीं है, तथापि मनको लेजानेवाली नाडियोंमें प्रयत्नसे कर्म होनेसे मनमें कर्म उत्पन्न होना विचारना वा अनुमान करना चाहिये. नाडियोंका त्वचा (खाल) इन्द्रियसे ग्राह्य होना माननेके योग्य है. अन्यथा एकदेश वा अवयवकी त्वचामें स्पर्श होनेसे सब शरीरमें विषआदिका व्याप्त होना व सुखद पदार्थके एकदेशमें स्पर्श होनेसे अन्य इन्द्रियमें विकार होना सब शरीरमें सुख होना आदि संभव न होवै ॥ १४ ॥

आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षात्सुखदुःखे॥

आत्मा, इन्द्रिय, मन व अर्थके सन्निकर्षसे सुख व दुःख होते हैं ॥ १५ ॥

सुख दुःख एक उपलक्षणमात्र है, ऐसही ज्ञान प्रयत्न आदिभी जानना चाहिये. मनका विभु होना पूर्वही खण्डन कर दियागया है. युगपत् ज्ञानका न होना मनका लक्षण कहा गया है, इसीसे मनके संयोगसे एक एक इन्द्रियविशेषसे एक एक विषयविशेषका ज्ञान होता है. जो मनके कर्मसे मनका संयोग इन्द्रियके साथ न होवै तो सुखदुःखका ज्ञान न होवै, अर्थात् ऐसा बोध न होवै कि, मेरे शिरमें पीडा है, मेरे पदमें सुख है इत्यादि, यद्यपि मनके सन्निकर्षके अधीन सब विशेष गुण आत्माके हैं परन्तु सुख दुःखका अधिक सम्बन्ध शरीरके साथ व्यवहारमें पाये जानेसे विशेष वर्णन किया है ॥ १५ ॥

तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः ॥ १६ ॥

आत्मामें स्थिर हुये मनमें उसका आरम्भ (मनके कर्मका आरम्भ) न होना शरीरके दुःखका अभाव होना संयोग (योग) है ॥ १६ ॥

इस शंकानिवारणके लिये कि मन चंचलस्वभाव है, इसका रुकना संभव नहीं है, इससे योग संभव नहीं है. विना योग आत्माका साक्षात्कार होना संभव नहीं है. विना आत्माके साक्षात्कार हुये मोक्ष होना संभव न होनेसे यह मननशास्त्र निष्फल है. सूत्रमें यह कहा है कि, आत्मामें स्थित जो मन है उसमें मनके कर्मका आरम्भ न होनेसे अर्थात् मनके कर्मकी उत्पत्ति न होनेसे शरीरके दुःखका अभाव होता है, ऐसा मनका आत्मामात्रमें स्थिर होना जिसमें दुःखका अभाव हो जाता है, संयोग (योग) है, अर्थात् जब मन आत्मामें स्थित हो निश्चल हो जाता है व उसके कर्मकी उत्पत्तिका नाश होता है, तब शरीरके दुःखका अभाव होता है, ऐसे मनके स्थिर होनेको जिसमें दुःखका अभाव होता है, योग कहते है, इसके अनन्तर आत्माके साक्षात्कार होनेसे मिथ्या ज्ञानके नाश होनेसे मुक्ति होती है इससे मननशास्त्र निष्फल नहीं है ॥ १६ ॥

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि १७

देहसे मनका निकलना व देहमें प्रवेश करना खायेहुये व पियेहुयेके साथ संयोग व अन्य कार्योंके सं-

योग अदृष्टसे करायेगये होते हैं अर्थात् अदृष्टकारणसे होते हैं ॥ १७ ॥

मरणअवस्थामें देहसे मनका निकलना व देह उत्पन्न होनेमें देहमें प्रवेश करना व खाये पिये हुये अन्न जल आदिकोंके साथ संयोग व कार्यान्तर अर्थात् इन्द्रिय व प्राण आदिकोंके संयोग अदृष्टकारणसे होते हैं, इनमें अदृष्टवान् आत्माका संयोग असमवायिकारण है ॥ १७ ॥

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः

उसके अभावमें संयोगका अभाव व प्रादुर्भाव (प्रकटता) न होना मोक्ष है ॥ १८ ॥

उसके (पूर्वजन्मके कर्मफलरूप अदृष्टके) अभाव होनेपर संचित व प्रारब्ध कर्मोंके क्षय होनेपर संयोगका अभाव अर्थात् देहप्रवाह सम्बन्धका नाश होना व प्रादुर्भाव न होना अर्थात् दुःखकी उत्पत्ति वा प्रकटता न होना मोक्ष है. अभिप्राय यह है कि, आत्माको साक्षात् करनेसे संचित कर्मोंके नाश होने, व भोगसे प्रारब्धके क्षय होनेमें शरीरकी उत्पत्तिका अभाव होता है. शरीरकी उत्पत्तिके अर्थात् जन्मके अभावसे दुःखका प्रादुर्भाव नहीं होता, दुःखका अत्यन्त अभाव होना यही मोक्ष है ॥ १८ ॥

द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभाव-स्तमः ॥ १९ ॥

द्रव्य गुण कर्मके सिद्धान्तके विरुद्धधर्म होनेसे तम अभाव है ॥ १९ ॥

तममें चलनेका भ्रम होनेसे तमके द्रव्य होनेका भ्रम होता है इस संशयनिवारणके लिये यह कहा है कि, द्रव्य गुण व कर्मके विरुद्धधर्म होनेसे तम अभाव है, अर्थात् तम द्रव्य नहीं है. केवल प्रकाशका अभाव है. अब विशेष वर्णन इसका यह है कि, प्रकाशके फैलनेमें तममें चलना कर्म ज्ञात होता है इससे जो यह संशय हो कि, तम भी द्रव्य है तो कर्मके जो कारण प्रयत्न नोदन अभिघात गुरुत्व द्रवत्व संस्कार हैं, यह तममें विदित नहीं होते, इससे तममें कर्म नहीं है, न तम द्रव्य है, प्रत्यक्ष द्रव्योंकी उत्पत्ति स्पर्शवान् द्रव्योंके अधीन है व स्पर्शवान् होता है. तममें स्पर्श नहीं होता इससे तम द्रव्य नहीं है, जो यह कहा जाय कि जो द्रव्य प्रत्यक्ष वा रूपवान् है उसमें स्पर्श अवश्य होता है, इससे नीलरूपवान् द्रव्य तममें स्पर्श है परन्तु अति न्यून होनेसे ज्ञात नहीं होता तो विना ज्ञात हुये व अन्य हेतुसे सिद्ध हुये होनेका प्रमाण नहीं होसका. जो यह कहा जाय कि, पृथिवी आदि स्थूल द्रव्यमें स्पर्श होना माननेकी आवश्य-

कता है. तम यह नवद्रव्योंसे विलक्षण अधिक दशम द्रव्य है इसमें स्पर्श होनेकी आवश्यकता नहीं है तो, यह मानना यथार्थ नहीं है. नवद्रव्यसे अधिक कहना मात्र हेतु नहीं हो सक्ता. जो यह आशंका हो कि, जैसे रस गन्ध स्पर्श रूप रहित शब्द विशेषगुणवाला आकाश है ऐसही नीलरूपविशेष गुणवाला तम दशम द्रव्य है तो यह भ्रममात्र है, क्योंकि रूपवान् द्रव्य पदार्थोंके विरुद्ध है, अन्य रूपवान् पदार्थ बाह्य प्रकाशवान् पदार्थके प्रकाशसे प्रत्यक्ष होते हैं, तम प्रकाशके न होनेमें प्रत्यक्ष होता है, व जहां प्रकाशकी प्राप्ति होती है वहां तमका अभाव होता है इससे तम द्रव्य नहीं है, प्रकाशका अभावमात्र है ॥ १९ ॥

तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च ॥ २० ॥

तेजका अन्य द्रव्यसे आवरण होनेसे भी ॥ २० ॥

जो यह संशय हो कि जो तम द्रव्य नहीं है तो उसमें चलनेकी प्रतीति क्यों होती है, इसका उत्तर यह है कि, अन्य द्रव्यसे तेजका आवरण होनेसे व उस द्रव्यके चलनेसे तममें चलनेकी प्रतीति होती है, अर्थात् जब किसी द्रव्यसे तेज आवरणको प्राप्त होता है उसके चलनेमें उसकी छायाका पूर्वदेशके छोडने व उत्तरदेशमें जानेसे तममें भ्रमरूप गमनका बोध होता है, इसीतरह प्रकाशसे तमके हटते जानेमें अर्थात् क्रमसे थोडे थोडे देशसे निवृत्त

होते जानेमें समुझना चाहिये. इससे तममें गति नहीं है. तम केवल तेजका अभाव है ॥ २० ॥

दिक्कालाकाशं च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥ २१ ॥

दिशा, काल व आकाश क्रियावान् द्रव्योंसे विरुद्धधर्मवाले होनेसे क्रियारहित हैं ॥ २१ ॥

जो द्रव्य क्रियावान् हैं वह मूर्तिमान् हैं, मूर्तिमानोंसे विरुद्ध अमूर्तिमान् दिशा, काल व आकाश क्रियारहित हैं. चशब्द जो मूलसूत्रमें है वह दिशा आदिसे अधिक आत्माके ग्रहणके लिये रक्खा है, अर्थात् आत्मा भी स्वभावसे क्रियारहित है २१

एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः ॥

इसीसे अर्थात् ऐसही कर्म व गुण व्याख्यात हैं ॥

पूर्वोक्त दिशा काल व आकाशके समान अमूर्तिमान् गुणकर्मकोभी क्रियारहित व्याख्यात (वर्णन कियेगये) समुझना चाहिये ॥ २२ ॥

निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यो निषिद्धः ॥ २३ ॥

क्रियारहितोंका (क्रियारहितपदार्थोंका) समवाय कर्मोंसे निषिद्ध (निषेधकियागया) है ॥ २३ ॥

जो यह संशय हो कि, जो गुण व कर्म क्रियारहित हैं तो गुण व कर्मके साथ द्रव्यका संयोग कैसे होसक्ता है, संयोगसे सम्बन्ध संभव है, संयोग कर्मअधीन है तो उत्तर यह है कि, क्रियारहित गुण कर्मोंका समवायही सम्बन्ध है. समवायकर्मोंसे निषिद्ध है अर्थात् कर्मसे रहित वा भिन्न है, उस सम्बन्धकी उत्पत्तिही नहीं है, कर्म अधीनता तो दूर है॥२३॥

कारणं त्वसमवायिनो गुणाः ॥ २४ ॥

परन्तु गुण असमवायिकारण हैं ॥ २४ ॥

जो गुण अमूर्ति (मूर्तिरहित) होनेसे कर्मके समवायिकारण नहीं हैं तौ गुणोंसे गुण व कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं, क्योंकि विना समवायिकारण कारण होना संभव नहीं होता इस शंकाके निवारणके लिये यह कहा है कि, गुण असमवायिकारण हैं, समवायि नहीं हैं कि कर्मके आधार होवें, असमवायिकारणता कहीं एकही अर्थमें कार्यके साथ समवायसे है, यथा आत्मा व मनके संयोगकी आत्माके विशेष व संयोग विभाग व शब्दोंकी शब्दमें और कहीं कारणके साथ समवायसे होती है यथा कपाल आदिकोंकी घट आदिके रूप आदिकोंमें॥२४॥

· २५ ॥

व्याख्या

जो यह संशय हो कि ऐसा बोध होने व कहे जानेसे कि यहाँ कर्म होता है, अब कर्म होता है, दिशा व काल भी कर्मके समवायिकारण है, विना समवायिकारण हुये कर्मके आधार न होते, इसके उत्तरके लिये यह कहा है कि, जैसे अमूर्त होनेसे गुरुत्व आदि गुण कर्मके समवायिकारण नहीं हैं ऐसही अमूर्त दिशाभी कर्मका समवायिकारण नहीं है. विना समवायिकारण होनेकेभी आधारता ऐसे दृष्टान्तोंसे जानी जाती है, जैसे कुण्डमें दही व वनमें सिंहनाद इत्यादि ॥ २५ ॥

कारणेन कालः ॥ २६ ॥

कारणसे (कारणके समान) काल है ॥ २६ ॥

कारणके समान काल क्रियारहित व्याख्यात है यह सूत्रका अर्थ है. कारणशब्दसे भावप्रधानका निर्देश है, (कथन है) जैसे क्रियारहित भाव आधार है ऐसही निमित्तकारण होनेसे काल कर्मका आधारमात्र है, समवायिकारण नहीं है ॥ २६ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये वाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीमख्यारेलालात्मजश्रीप्रभुदयालुविरचिते पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ समाप्तश्च पञ्चमोऽध्यायः ५

अथ षष्ठाध्यायप्रारम्भः ।

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

बुद्धिपूर्वक वाक्यकी रचना वेदमें है ॥ १ ॥

धर्म अधर्म जो संसारके मूलकारण वा हेतु हैं उनका व्याख्यान इस अध्यायमें किया जाता है. धर्म अधर्मके विधि व निषेधका वर्णन वेदमें होनेसे वेदका प्रामाण्य है. वेदके प्रमाण माननेमें बुद्धिभ्रमनिवारणके लिये प्रथम सूत्रमें वेदके प्रमाण होनेका हेतु वर्णन किया है कि, वेदमें जो वाक्यरचना है वह बुद्धिपूर्वक है अर्थात् वक्ताके यथार्थ वाक्यार्थ ज्ञानपूर्वक है यह सूचक है. वेदवाक्यसमुदायकी रचना प्राकृत मनुष्योंकी बुद्धिसे किये जानेसे विलक्षण सिद्ध होती है, क्योंकि 'स्वर्गकी इच्छा करनेवाला यज्ञ करै' इत्यादि इष्टसाधन उपदेशमें वेदवाक्य हैं, ऐसे अदृष्टफलका ज्ञान हम प्राकृत जनोंको आपसे होना विदित नहीं होता, कि इस यजन (पूजन वा यज्ञ)से स्वर्ग होगा इत्यादि इससे कोई स्वतन्त्र यथार्थ ज्ञानवान् स्वसिद्ध पुरुषरचित वेद है यह सिद्ध होता है, व धर्मके विधान व अधर्मके निषेधप्रतिपादक होनेसे बुद्धिपूर्वक वाक्य वेदमें हैं इससे वेद यथार्थज्ञानवान् कृत होनेसे प्रमाणके योग्य है, व वाक्यार्थज्ञान वा अन्यप्रमाणसे उत्पन्न ज्ञानरहित स्वयं नित्य यथार्थ

ज्ञानसिद्ध आप्त पुरुषसे प्रकाशित जो शब्द व वाक्य है उसको वेद कहते हैं, यह वेदका लक्षण है ॥ १ ॥

ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥

ब्राह्मणमें संज्ञाकर्म (नामकरण वा नामवर्णन) सिद्ध होनेका चिह्न है ॥ २ ॥

ऋषिब्राह्मणोंसे वर्णित वेदमंत्रोंके व्याख्यानविषयक ग्रंथ वा ग्रंथोंको ब्राह्मण कहते हैं उसमें जो संज्ञाका वर्णन है अर्थात् उसमें जो नामवर्णन किये गये हैं वह बुद्धिपूर्वक वाक्य होनेकी सिद्धिके लिङ्ग (चिन्ह) हैं, क्योंकि विना वस्तुके ज्ञान उसके गुण व दोष वा संज्ञाविशेष वाचकशब्द नहीं कहे जासक्ते ॥ २ ॥

बुद्धिपूर्वो ददातिः ॥ ३ ॥

बुद्धिपूर्वक दान हैअर्थात् दानका प्रतिपादन है ३

वेदमें जो दानका प्रतिपादन है वह बुद्धिपूर्वक होनेका चिन्ह है, क्योंकि दानका प्रतिपादन दानके इष्ट साधन क-रनेके ज्ञानसे है. तात्पर्य यह है कि, जो जिस कर्मके फलको जानता है कि यह करनेसे इसका यह फल होगा वही उ-सका उपदेश करता है इससे वेदमें जो गोदान आदि दे-नेका उपदेश किया है व उसका फल कहा है यह बुद्धिपू-

हिंसाशब्दसे सम्पूर्ण निषिद्ध कर्मोंका उपलक्षण है, जो निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्त होता है वह दुष्ट है ॥ ७ ॥

तस्य समभिव्याहारतो दोषः ॥ ८ ॥

उसकी संगतिसे दोष होता है ॥ ८ ॥

उसकी (निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्तकी) संगतिसे अर्थात् एक-साथ वा पास बैठकर भोजन करने साथ सोने साथ पढने आदिसे दोष (पाप) होता है, इससे दुष्टकर्म करनेवालेकी संगति करना उचित नहीं है यह अभिप्राय है ॥ ८ ॥

तददुष्टे न विद्यते ॥ ९ ॥

वह अदुष्टमें (जो दुष्ट नहीं है उसमें) नहीं होता ॥ ९ ॥

वह (दोष) अदुष्टमें नहीं होता अर्थात् जो अधर्ममें प्रवृत्त नहीं होता, वेदके उपदेश अनुसार कर्म करता है, उसके संगसे दोष नहीं होता, व वही दानके व श्राद्धमें भोजन करानेके योग्य है ॥ ९ ॥

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ॥ १० ॥

फिर विशिष्टमें (उत्तममें) प्रवृत्ति होना चाहिये १०

यद्यपि निन्दित कर्म करनेवाला दान देनेके लिये वा श्राद्ध आदिमें भोजन करानेके लिये बोलाया भी गया हो,

तो भी अर्थात् निमन्त्रित होजानेपर भी जो विशिष्ट अर्थात् धर्म आचरण करनेवाला मिलजावे तो निन्द्य अधर्मीको त्याग कर विशिष्टोंको भोजन कराना व दान देना चाहिये, व यह जो लिखा है कि, निमन्त्रितका निरादर न करै यह उत्तमही पुरुष निमन्त्रितके लिये समुझना चाहिये. अपने वचनका प्रतिपालन भी उचित है इससे कुछ निन्द्य निमन्त्रितका भी सत्कार करदेवे तो अनुचित नहीं है, परन्तु दुष्टके दान व भोजनसे फल नहीं होता इससे त्यागना ही उत्तम है, अज्ञानसे निमन्त्रण होजाय तो वचन पालनेके हेतु कुछ सत्कार कर देवे तो विशेष अनुचित नहीं है, परन्तु विद्वान् धर्मवान् प्राप्त होनेमें धर्मवान्हीका सत्कार करना योग्य है. निन्द्यके निरादर होजानेपर भी कुछ दोष न समुझना चाहिये, क्योंकि वह निरादरहीका पात्र है, दान व सत्कारका पात्र नहीं है ॥ १० ॥

समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

सम वा हीनमें प्रवृत्ति हो ॥ ११ ॥

जब विशिष्ट अर्थात् उत्तम प्राप्त न होवे तब जो अपने समान गुणवाले हों अथवा अपनेसे हीन हो अर्थात् अपनेसे न्यूनगुणवाला हो परन्तु दुष्ट न हो उनके अर्थ दान देने व सत्कार करनेमें प्रवृत्ति होना उचित है, अर्थात् उक्त सम या हीनको दान देना भोजन कराना व उनका सङ्ग

करना उचित है, परंतु दुष्टको दान देना आदि निष्फल है व उसका सङ्ग त्याज्य है ॥ ११ ॥

एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् ॥ १२ ॥

इससे (इस पूर्वकथनसे) हीन सम व विशिष्ट धार्मिकोंसे परसे धनका ग्रहण व्याख्यात है ॥ १२ ॥

पूर्वमें जैसा विशिष्ट सम व हीनको दान देने आदिका विधान किया है इसी प्रकारसे प्रतिग्रह भी समुझनेके लिये यह कहा है कि, इससे अर्थात् इस पूर्वकथनसे हीन आदि धार्मिकोंसे परसे धनका ग्रहण व्याख्यात है अर्थात् व्याख्यात समुझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि, जैसे दान देनेमें पात्रका विचार करना उचित है ऐसही परसे धनआदि ग्रहण करनेमें ग्रहण करनेवालेको विचार कर अपनेसे हीन सम वा विशिष्ट धार्मिकोंसे ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥

तथा विरुद्धानां त्यागः ॥ १३ ॥

तैसही विरुद्धोंका त्याग है (त्याग उचित है) १३

जैसे धर्मवानोंको दान देने आदि व धर्मवानोंके साथ सङ्ग व व्यवहार करनेका विधान किया है तैसही धर्मवानोंसे विरुद्ध दुष्ट अधर्मियोंके लिये यह कहा है कि, वि-

रुद्ध जो दुष्ट अधर्मी हैं उनका त्याग उचित है, अर्थात् अधर्मवान् दुष्टोंके साथ संगति करना व दान आदि देना वा लेना वा अन्य व्यवहार करना उचित नहीं है यह सब त्याग करना चाहिये ॥ १३ ॥

हीने परे त्यागः ॥ १४ ॥

हीनमें परमें त्याग है अर्थात् परमें त्याग होना उचित है ॥ १४ ॥

पर जो दूसरा है वह जो अपनेसे हीन हो अर्थात् जो दूसरा अधर्मवान् अपनेसे न्यून हो तो उसको त्याग कर-देना चाहिये. उसके सङ्गमें आप पापका भागी व अधर्ममें प्रवृत्त न होवै ॥ १४ ॥

समे आत्मत्यागः परत्यागो वा ॥१५॥

सममें आत्मत्याग (अपना त्याग) वा परका (दूसरेका) त्याग उचित है ॥ १५ ॥

उचित है यह सूत्रमें शेष है. समसामर्थ्यवाले अधर्मीके साथ सङ्ग होजानेमें अपना त्याग होजाना अथवा परका त्याग होजाना उचित है, अर्थात् चाहै उससे अपना त्याग होजावै अथवा अपनेसे उसका त्याग होजावै अर्थात् किसी प्रकार यत्नसे उसके सङ्गसे आपको अलग करलेवै वा करा-

लेवे कि दूसराही त्याग देवै, अथवा होसकै तो उसको अपने सङ्गसे अलग करदेवै. दोमेंसे एक करना उचित है, परन्तु दुष्टका संग्रह करना व पापमें लिप्त होना उचित नही है ॥ १५ ॥

विशिष्टे आत्मत्याग इति ॥ १६ ॥

विशिष्टमें आत्मत्याग (अपना त्याग उचित है१६

विशिष्टमें अर्थात् जो अपनेसे प्रबल वा अधिक हो तो उस प्रबल दुष्ट अधर्मीसे अपनेको किसी प्रकारसे अलग करालेना वा होजाना उचित है, अथवा आत्मत्यागका अर्थ मरण होसक्ता है, अर्थात् जब कुछ अपना वश न चलै तो धर्मकी दृढतामें चाहै मरण होजावै, परन्तु पापी दुष्टका संग्रह करना व अधर्ममें प्रवृत्त होना योग्य वा उचित नहीं है ॥ १६ ॥

इति श्रीवैशेषिकदर्शने देशभाषाकृतभाष्ये षष्ठाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ।

दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय ॥ १ ॥

दृष्टप्रयोजन (जिन कर्मोंका प्रयोजन प्रत्यक्ष होता है) व अदृष्टप्रयोजन (जिनका प्रयोजन प्रत्यक्ष नहीं होता) उनके मध्यमें दृष्टके अभावमें तत्त्वज्ञान वा मोक्षके अर्थ प्रयोजन है ॥ १ ॥

दृष्टप्रयोजनकर्म जैसे खेती राजाकी सेवा वाणिज्य आदि, जिनका प्रयोजन प्रत्यक्ष होता है, व अदृष्टप्रयोजनकर्म जैसे यज्ञ दान ब्रह्मचर्य आदि, जिनका प्रयोजन प्रत्यक्ष नहीं होता इनमेंसे जिनका प्रयोजन दृष्ट नहीं है यथा यज्ञ ब्रह्मचर्य आदि उनके दृष्टप्रयोजनके अभावमें उनका प्रयोजन तत्त्वज्ञान व मोक्ष है अर्थात् ऐसे कर्म तत्त्वज्ञान होने मोक्षप्राप्त होने व स्वर्ग प्राप्त होनेके लिये किये जाते हैं ॥ १ ॥

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥ २ ॥

अभिषेचन, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, प्रोक्षण, दिशा, नक्षत्र, मन्त्र व कालनियम अदृष्टके अर्थ हैं ॥ २ ॥

अभिषेचन (राजाओंका जो अभिषेक किया जाता है

रना इष्ट नहीं है ऐसही रूप आदि विषयमें श्रुति स्मृतिसे विहितको इष्ट व उससे विपरीतको अनिष्ट समुझना चाहिये ॥ ५ ॥

अशुचीति शुचिप्रतिषेधः ॥ ६ ॥

अशुचि यह शुचिका प्रतिषेध वा अभाव है ॥६॥

जो शुचिका लक्षण वर्णन कियागया है उसके विरुद्ध अशुचि है, अर्थात् जो रूप आदि विषय व द्रव्य श्रुति स्मृतिसे विहित नहीं हैं, जलसे शुद्ध नहीं कियेगये अधर्म व अन्यायसे प्राप्त कियेगये हैं वह अशुद्ध हैं, ग्रहणके योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

अर्थान्तरं च ॥ ७ ॥

अन्य अर्थ भी ॥ ७ ॥

जो अशुचि होना वर्णन कियागया है उससे अन्य अर्थ भी अर्थात् शुचि भी किसी हेतुसे अशुचि होजाता है इसका उदाहरण यह है कि, जो धान्य आदि मन्त्रसे प्रोक्षित व शुचि हैं यथा जो रूप रस आदि अभ्युक्षित वा प्रोक्षित शुचि हैं वह भी वाक्दुष्ट होने व भावदुष्ट होनेसे अशुचि हैं, वा अशुचि होते हैं ॥ ७ ॥

अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न

विद्यते नियमाभावाद्विद्यते वार्थान्तरत्वा- द्यमस्य ॥ ८ ॥

यमरहितके शुचिभोजन करनेसे नियमके अभा- वसे कल्याण वा स्वर्ग नहीं होता व होता भी है, यमके अर्थान्तर (भिन्नपदार्थ) होनेसे ॥ ८ ॥

अहिंसा (किसी जीवका वध न करना व किसीसे वैर न करना) व सर्वदा सत्य बोलना, चोरी न करना, जिते- न्द्रिय होना व अधर्मसे किसी विषयको ग्रहण न करना यह यम है. इस यम साधनसे रहितके शुचिभोजनमात्रसे स्वर्ग वा उत्तम फल प्राप्त नहीं होता, किन्तु निकृष्ट फल होता है. क्यों ऐसा होता है, उत्तर यह है कि, नियमके अभावसे अर्थात् स्वर्ग प्राप्त होनेमें यमसहित आचरण करनेका नि- यम है, उसके अभावसे फल नहीं होता व पाप होता भी है, यमके अर्थान्तर होनेसे यह कहनेका भाव यह है कि, यमसहित शुचिभोजन करनेसे ज्ञान व स्वर्गप्राप्ति उत्तम फल होता भी है, क्यों यमसहितही करनेमें होता है इसके उत्तरके लिये यह कहा है, यमके अर्थान्तर होनेसे अर्थात् भोजनसे यम भिन्नपदार्थ है इससे यद्यपि शुचिभोजन य- मसहित न होनेमें भी है, तथापि यम साधन जो कल्याणका हेतु व सहकारी है वह पृथक् है, इससे यमके होनेमें उत्तम स्वर्गफल होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ८ ॥

असति चाभावात् ॥ ९ ॥

न होनेमें भी अभावसे (न होनेसे) ॥ ९ ॥

जो यह शङ्का हो कि, जो शुचिभोजनसे स्वर्ग वा कल्याण नहीं होता तो वृथा है यह शङ्कानिवृत्त होनेके लिये यह कहा है कि, न होनेमें भी अभावसे अर्थात् यमसाधन करे व अशुचि भोजन करे तो अशुद्ध व अधर्म प्राप्त हुये भोजनसे भी बुद्धिमें म्लानता पापमलके प्राप्त होनेसे यमसाधनमें विघ्न होजाता है व स्वर्गफलका अभाव होता है इससे शुचिभोजन न होनेमें भी स्वर्गप्राप्तिके अभावसे दोनोंको साथ करना उचित है. शुचिभोजन एक उपलक्षणमात्र है, ऐसही यज्ञ दान होम आदिमें भी यम नियम साधनको सहकारी समुझना चाहिये. यमनियमरहित शुचिभोजन आदि कर्म उत्कृष्ट फल नहीं करसके, इससे यम व नियमसहित कर्म करना उचित है. यम व नियमका विशेष व्याख्यान योगदर्शनमें देखना चाहिये ॥ ९ ॥

सुखाद्रागः ॥ १० ॥

सुखसे राग होता है ॥ १० ॥

धर्मसहकारी यमको वर्णन करके अब अधर्मसहकारी व हृदयमें दोष उत्पन्न करनेके हेतुको वर्णन करते हैं कि, विषयसुख प्राप्त होनेसे जिसमें सुख होता है उसमें राग (प्रीति)

होता है. रागसे उसके न होनेमें उसकी इच्छा होती है. इच्छा व प्रीतिसे मोह होता है व इच्छाके विरुद्ध पदार्थमें द्वेष होता है, इससे विषयसुखसे राग द्वेष मोह यह दोष होते हैं यथा माला चन्दन स्त्री आदिमें सुख होनेसे इनमें राग होता है व इनमें जो सुख प्राप्त होता है उस सुखके बाधक पदार्थमें द्वेष होता है व जो दुःख देनेवाले कांटा सर्प आदि पदार्थ है उनमें द्वेष होता है, सुख रागका तथा मोहका व दुःख द्वेषका कारण होता है. सुखको उपलक्षणमात्र व विशेष सब जीवोंको इष्ट समुझकर वर्णन किया है१०

तन्मयत्वाच ॥ ११ ॥

उसीमय होनेसे भी ॥ ११ ॥

पूर्वसूत्रमें जो सुखबोध होनेसे विषयोंमें प्रीति व इच्छा होना वर्णन किया है उससे अधिक दूसरा कारण विषयमें प्रीति होनेका उसीमय होना अर्थात् विषयमय होना है. विषयमय होनेसे अर्थात् विषयके अभ्याससे दृढ संस्कार होनेसे विषयमें अति चित्तका लगजाना विषयमय होना है. उससे राग द्वेष दोष होते हैं, यथा अति कामवश होनेसे भोगकी इच्छाका दृढ संस्कार चित्तमें होनेसे कामातुरको स्त्री न मिलनेमें सर्वत्र प्रत्येक क्षणमें स्त्रीहीकी चिन्ता व प्रीति चित्तमें रहती है, व स्त्रीका दर्शन होता है ऐसही जो कि-

सीको एकवार सर्प काटा व उसको ऐसा भय दृढ होगया कि, सर्पका भय उसको सदा बना रहता है तो उसको सर्वत्र सर्प व उसके भयका स्मरण होता है व जहां सर्प नहीं है वहां भी सर्पका भान होता है ऐसही विषयके अभ्यास व दृढसंस्कार होनेसे जीवोंको रात्रिदिन सर्वत्र विषयभोगकी इच्छा चित्तमें रहती है ॥ ११ ॥

अदृष्टाच्च ॥ १२ ॥

अदृष्टसे भी ॥ १२ ॥

अदृष्टसे (पूर्वजन्मके संस्कारसे) भी राग द्वेष व मोह होते हैं. यथा जिसको स्त्रीभोगका सुख इस जन्ममें नहीं प्राप्त हुवा उसको युवा अवस्था प्राप्त होतेहीसे स्त्रियोंमें स्नेह अधिक होना, व किसीको गान सुनने व सीखनेमें राग होना, किसीकी इच्छा अधर्ममें अधिक होना, व किसीका अधर्ममें द्वेष होना इत्यादि यह अदृष्टकर्म (पूर्वजन्मके कर्म संस्कारसे आपसे, इस प्रकारसे नानाप्रकारके राग द्वेष जीवोंमें होते हैं ॥ १२ ॥

जातिविशेषाच्च ॥ १३ ॥

जातिविशेषसे भी ॥ १३ ॥

जातिविशेषसे भी राग द्वेष विशेष अदृष्टवशसे होते हैं. [य]था मनुष्यजातिका राग अन्नमें मृग वा पशुजातिका तृणमें

तथा द्वेष अदृष्टवशसे जातिविशेषमें होताहै, यथा बिल्ली व कुत्ता व भैंसा व घोडा आदिमें इस प्रकारसे जातिविशेष पदार्थोंमें राग द्वेष होना देखा जाता है ॥ १३ ॥

इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः १४

इच्छाद्वेषपूर्वक धर्म व अधर्ममें प्रवृत्ति होती है १४

धर्ममें इच्छा होनेसे इच्छापूर्वक उसमें प्रवृत्ति व अधर्म (निषिद्धकर्म)में द्वेष होनेसे उसमें द्वेषपूर्वक प्रवृत्ति होती है अर्थात् यज्ञ आदि कर्ममें राग (प्रीति)पूर्वक प्रवृत्ति होती है व हिंसा आदि अधर्ममें क्रोध होने व प्रीति न होनेसे द्वेषपूर्वक उसके रोकनेमें प्रवृत्ति होती है यह राग द्वेषकर्मके हेतु हो वारंवार संसारमें उत्पन्न होने व मरणेके हेतु होते हैं व मोहवश होनेसे अधर्मकर्ममें रागद्वेषसे प्रवृत्ति होती है, परन्तु यहां साधारण जो इच्छा व द्वेषसे कर्म होते हैं उनका दृष्टांत दिया है. वाक् (वाणी) बुद्धि व शरीरके आरम्भको प्रवृत्ति कहते है, यथा सत्य बोलना वाक्प्रवृत्ति, दया होना बुद्धिप्रवृत्ति, सेवा करना शरीरप्रवृत्ति है व इसके विरुद्ध अधर्मप्रवृत्ति असत्य बोलना दया न होना अहित करना जानना चाहिये इत्यादि ॥ १४ ॥

तत्संयोगो विभागः ॥ १५ ॥

तिनसे संयोग व विभाग होता है ॥ १५ ॥

तिनसे उक्त धर्म व धर्मसे संयोग व विभाग अर्थात् जन्म व मरण होता है. जन्मको संयोग इससे कहा है कि, जन्ममें शरीर इन्द्रिय आदिका संयोग होता है व मरणमें शरीर व इन्द्रिय आदिके विभाग होनेसे मरणको विभाग कहा है ॥ १५ ॥

आत्मगुणकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः॥१६॥

आत्माके गुणकर्मोंमें मोक्ष व्याख्यात है ॥ १६ ॥

यही विभाग (मरण) आत्माके यथार्थ गुण कर्मोंके होनेमें मोक्ष है यह व्याख्यात समुझना चाहिये. श्रवण, मनन योगाभ्यास, निदिध्यासन (वारंवार ध्यानमें तत्पर होना), प्राणायाम, शम, दम, व विराग अपने आत्मा व पर आत्माको साक्षात् करना, अन्य देह व देशमें भोग करनेके योग्य धर्म अधर्मके फलका उनके होनेसे पूर्वही उनका परिज्ञान होना, यह आत्माके गुणकर्म हैं. धर्म व अधर्म भोगके लिये नानाप्रकारके शरीर जीवको धारण करना परता है. पूर्वकृत धर्म अधर्मोंका भोगसे क्षय होजानेसे व आत्माके गुणकर्मोंसे फिर रागद्वेषपूर्वक आगे धर्म अधर्ममें प्रवृत्ति न होनेसे-जन्म होनेका नाश होता है, जन्मका नाश होनेसे दुःखका नाश होता है, दुःखनाश होनेसे दुःखका अभाव व उत्कृष्ट सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है, इस प्रकारसे आत्माके गुणकर्मोंमें मोक्ष होता है, मोक्ष होनेमें छ पदा-

र्थोंका तत्त्वज्ञान होना वा प्राप्त करना आत्माका आद्य कर्म है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त होनेके लिये प्रथम आत्माका छ पदार्थोंका तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये. मोक्षके यत्न व पुरुषार्थमें यह पहिला कर्म है ॥ १६ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीप्रभुदयालुविरचिते षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ समाप्तश्च षष्ठोध्यायः ६

अथ सप्तमाध्यायप्रारंभः ।

उक्ता गुणाः ॥ १ ॥

गुण कहेगये हैं ॥ १ ॥

इस अध्यायमें गुणोंके वर्णन करनेकी इच्छासे पूर्वोक्त गुणोंको स्मरण कराया है कि, जो गुण कहेगये हैं उनका अब विशेष वर्णन वा व्याख्यान किया जाता है यह भाव है १

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥ २ ॥

पृथिवी आदिके रूप रस गन्ध स्पर्श भी द्रव्यके अनित्य होनेसे अनित्य हैं ॥ २ ॥

तिनसे उक्त धर्म व धर्मसे संयोग व विभाग अर्थात् जन्म व मरण होता है. जन्मको संयोग इससे कहा है कि, जन्ममें शरीर इन्द्रिय आदिका संयोग होता है व मरणमें शरीर व इन्द्रिय आदिके विभाग होनेसे मरणको विभाग कहा है ॥ १५ ॥

आत्मगुणकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः॥१६॥

आत्माके गुणकर्मोंमें मोक्ष व्याख्यात है ॥ १६ ॥

यही विभाग (मरण) आत्माके यथार्थ गुण कर्मोंके होनेमें मोक्ष है यह व्याख्यात समुझना चाहिये. श्रवण, मनन योगाभ्यास, निदिध्यासन (वारंवार ध्यानमें तत्पर होना), प्राणायाम, शम, दम, व विराग अपने आत्मा व पर आत्माको साक्षात् करना, अन्य देह व देशमें भोग करनेके योग्य धर्म अधर्मके फलका उनके होनेसे पूर्वही उनका परिज्ञान होना, यह आत्माके गुणकर्म हैं. धर्म व अधर्म भोगके लिये नानाप्रकारके शरीर जीवको धारण करना परता है. पूर्वकृत धर्म अधर्मोंका भोगसे क्षय होजानेसे व आत्माके गुणकर्मोंसे फिर रागद्वेषपूर्वक आगे धर्म अधर्ममें प्रवृत्ति न होनेसे-जन्म होनेका नाश होता है, जन्मका नाश होनेसे दुःखका नाश होता है, दुःखनाश होनेसे दुःखका अभाव व उत्कृष्ट सुखरूप मोक्ष प्राप्त होता है, इस प्रकारसे आत्माके गुणकर्मोंमें मोक्ष होता है, मोक्ष होनेमें छ पदा-

र्थोंका तत्त्वज्ञान होना वा प्राप्त करना आत्माका आद्य कर्म है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त होनेके लिये प्रथम आत्माका छ पदार्थोंका तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये. मोक्षके यत्न व पुरुषार्थमें यह पहिला कर्म है ॥ १६ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीप्रभुदयालुविरचिते षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ समाप्तश्च षष्ठोध्यायः ६

अथ सप्तमाध्यायप्रारंभः ।

उक्ता गुणाः ॥ १ ॥

गुण कहेगये हैं ॥ १ ॥

इस अध्यायमें गुणोंके वर्णन करनेकी इच्छासे पूर्वोक्त गुणोंको स्मरण कराया है कि, जे गुण कहेगये हैं उनका अब विशेष वर्णन वा व्याख्यान किया जाता है यह भाव है १

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥ २ ॥

पृथिवी आदिके रूप रस गन्ध स्पर्श भी द्रव्यके अनित्य होनेसे अनित्य हैं ॥ २ ॥

कार्यरूप पृथिवी आदिके अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायुके जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, हैं पृथिवी आदिके अनित्य होनेसे वही भी अनित्य है, क्योंकि अनित्यमें आश्रित होनेसे आश्रयके नाश होनेसे वह भी नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ ३ ॥

इससे (इसी प्रकारसे) नित्योंमें नित्य होना कहा गया ॥ ३ ॥

जैसे आश्रयके अनित्य होनेसे आश्रित गुणोंका की अनित्य होना कहा गया है, ऐसही नित्यद्रव्य आश्रयोंमें आश्रित गुण भी नित्य हैं अर्थात् नित्यद्रव्योंका नाश न होनेसे उनमें आश्रित गुण भी नष्ट नहीं होते इससे नित्य हैं ३

अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात् ॥ ४ ॥

जलमें तेजमें व वायुमें द्रव्यके नित्य होनेसे नित्य हैं ॥ ४ ॥

जल तेज व वायुमें गुणोंको नित्य कहा है. पृथिवीमें नहीं कहा, इसका हेतु यह है कि, पृथिवीमें जो रूप आदि गुण होते हैं वह अग्निसंयोगसे नाश होजाते हैं, व पृथिवीमें अ-

नेकरूप हरा लाल पीरा आदि होते हैं, व पार्थिव द्रव्य वही बनेरहनेमें उसीमें रूपान्तर (अन्य रूप) होजाते हैं, रूपान्तर होनेमें भी कोई एक रूप नित्य नहीं कहा जासकता. यद्यपि पृथिके अणु नित्य हैं परन्तु इस उक्त हेतुसे नित्य नहीं कहा. जल आदि नित्य कहनेका हेतु यह है कि जल, आदिमें एकही एक उनका विशेपरूप है, रूपान्तर नहीं होते. जल तेजमें जो अनेकरूप देखेजाते हैं वह पृथिवीके संयोगसे अर्थात् पृथिवीके अणुओंके संयोगसे होते हैं. जल-मात्रका शुक्लरूप व अग्निका भास्वर (प्रकाश) रूप विशेष है. पृथिवीके रूप आदि (रूप आकार परिमाण गुरुत्व संयोग आदि) अग्निसंयोगसे नष्ट होजाते हैं व अन्य उत्पन्न भी होते हैं, यथा लकडी वा अन्य पदार्थ फल आदि मूर्तिमान् द्रव्योंके जलाने व पकानेसे विदित होता है. जल, तेज, वायुमें ऐसा न होनेसे जल आदिमें नित्य कहा है. अब यह संशय होता है कि, जल भी जो किसीपात्रमें अग्निके उपर रक्खा जाता है तो जरते जरते सब जरजाता है, जल व जलके रूपका नाश होजाता है, ऐसही अग्निमें जल छोडनेसे अग्नि बुझ जाता है, अग्नि व अग्निके रूपका नाश होजाता है, इससे जल व जल आदिके रूप आदिकोंका नित्य होना सिद्ध नहीं होता, इसका उत्तर यह है कि, यह संशय भ्रमरूप है. अग्निसे जलका नाश नहीं होता, न उ-

सके रूपमें भेद होता है. अग्निकी गरमीसे जल पतला सूक्ष्म वाफरूप होकर वायुमें उड जाता है, जलके सूक्ष्म अणुओंके साथ जलका रूप भी सूक्ष्मरूपसे जाता है परन्तु क्रमसे उडनेमें जबतक जितना जल पात्रमें रहता है उसका रूप एकही रहता है. जरनेसे रूपान्तरका होना पृथिवीके समान प्रत्यक्ष नहीं होता. जलके वाफरूप होजानेमें प्रमाण यह है कि, कोई शीतल पात्र वाफके उपर रखदेवे तो फिर जलविन्दु उसमें जलरूप प्रत्यक्ष होते हैं. पार्थिव द्रव्य भस्म हुवा फिर अपने निजस्वरूपसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इससे जल व जलके रूप आदिका पृथिवीके रूप आदिके समान नाश होना सिद्ध नहीं होता, तथा अग्निका जलसे नाश नहीं होता, जलसे अग्नि सूक्ष्मरूप हो अलक्षित होजाता है, क्योंकि सब सावयव पिण्डरूप पदार्थोंके अंतर्गत सूक्ष्मरूप अग्नि रहता है इसीसे परस्पर लकडीआदि द्रव्योंमें घसनेसे उष्णता प्रकट होती है व चकमकपत्थर आदिमें घातसे अग्नि प्रकट होता है, और जो अग्निका नाश होजानाही माना जाय तो द्रव्यके नाश होनेमें रूपआदि गुणोंका नाश होना यथार्थही है, द्रव्य रहते हुये पृथिवीके गुणोंके समान नाश होनेमें दोष है. अनित्य द्रव्यमें गुण अनित्यही होते हैं. कारणरूप नित्य जल तेज आदिके गुणको नित्य होना कहा है. पृथिवीके नित्य अणुओंमें भी अग्निके (अणुवोंके)

संयोगसे पृथिवीके स्थूलरूपमें रूप आदिका नाश होना प्रत्यक्ष होनेके समान रूप आदिके नाश होनेका अनुमान होता है. पार्थिवद्रव्यके रूप आदि अग्निके संयोगसे तथा अन्य कारणसे द्रव्य वही रहनेपर भी नाश होजाने व अन्य प्रकट होनेसे पृथिवीके गुणोंको नित्य नहीं कहा, जल आदिमें ऐसा न होनेसे जल आदि नित्यमें नित्य होना कहा है ॥ ४ ॥

अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात् ॥५॥

अनित्योंमें द्रव्योंके अनित्य होनेसे अनित्य हैं॥५॥

अनित्य स्थूलकार्यरूप द्रव्योंमें अपने आश्रयद्रव्योंके अनित्य होनेसे उनके गुण भी अनित्य होते हैं, अर्थात् आश्रयद्रव्योंके नाश होनेसे आश्रित रूप आदि गुण भी नष्ट हो जाते है ॥ ५ ॥

कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः॥६॥

कारणगुणपूर्वक पृथिवीमें पाकज (अग्निमें पकनेसे उत्पन्न) गुण होते हैं ॥ ६ ॥

कारणों(अवयवों)के गुणपूर्वक कार्य अवयवीके गुण होते है. कारणों(अवयवों)का कार्य (अवयवी)के साथ समवायसम्बन्ध होनेसे कारणोंके रूप रस गन्ध स्पर्श समवायिसम्बन्धवाले कारणोंमें अपने समवायिसम्बन्धसे विद्यमान होनेसे कार्यके रूप आदि गुणोंके प्रकट होनेमें अस-

मवायिकारण होते हैं. अब पूर्वसूत्रमें गुणोंके नित्य वर्णनमें पृथिवीके गुणोंको नित्य नहीं कहा उसका यह हेतु जनानेके लिये कि, पृथिवीके गुण नित्य नहीं होते इससे नित्य नहीं कहेगये. यह कहा है कि, कारणगुणपूर्वक पृथिवीमें पाकज-गुण होते हैं अर्थात् पाकजरूप आदि साधरण रूप आदिसे भिन्न रूपान्तर उत्पन्न होते हैं, यथा श्यामरूप आदि घट आदिके रक्त (लाल) रूप आदि होजाते हैं. कारणगुणपूर्वक पृथिवीमें पाकजगुण कहनेका अभिप्राय यह है कि, अवयव जो पृथिवीपरमाणु हैं उनके प्रथम क्रमसे अग्निसंयोगसे रक्त (लाल) होनेसे अवयवी घट रक्त होता है, यह अग्निसंयोग पाकजरूप आदिको उत्पन्न करनेवाला रूप आदिकोंका असमवायिकारण है. जो यह तर्क किया जाय कि नीलरूप आदि अपनी अपनी व्यक्तिसे नित्यही है, नील वा श्यामरूप आदिका नाश नहीं होता, केवल यह होता है कि घटके श्यामरूप न रहनेपर उसके स्थानमें रक्तरूप प्रकट होजाताहै, ऐसही एकप्रकारके रूप आदि न रहनेपर अन्य रूप आदि द्रव्योंमें प्रकट होना प्रत्यक्ष होता है. रूप आदि तो बनेही रहते हैं इसका उत्तर यह कि, जो घट आदिके साथ घट आदिके रूप आदिका नित्य सम्बन्ध होता अर्थात् घट आदिके रूप आदि नित्य होते तो अग्निसंयोगसे नष्ट न होते, न रूपान्तर आदिकी प्राप्ति होती, और जो कोई रूप रहनेसे (रूप जातिके रहनेसे)

घटका रूप या अन्यगुणका नित्य होना माना जावै तो घट आदिकोंको भी एक व नित्य मानना उचित है, अर्थात् नष्ट घटके स्थानमें अन्य रखने व उसीका भाव माननेसे उसको नित्य मानना चाहिये, परंतु यह अयुक्त है. अब यह जानना चाहिये कि, कोई यह कहते हैं कि द्रव्य कुछ नहीं है, गुण-समूहके संयोगविशेषको द्रव्यविशेष कहते है, इस हेतुसे कि जो किसी पदार्थके परिमाण रूप आकृति गुणोंको बुद्धिसे भिन्न करके देखैं तौ गुणोंसे भिन्न द्रव्य गुणि कुछ भी नहीं रहता, इसका उत्तर यह है कि, ऐसा समुझना ठीक नहीं है. प्रथम गुणमें गुण नहीं रहता, न होता है यह पूर्वही वर्णन किया गया है. गुणोंमें गुण न होनेसे गुणोंका संयोग होना संभव नहीं है. दूसरे यह प्रत्यक्ष विदित होता है कि, कच्चा घट जब अग्निमें पकाया जाता है तब उसके पूर्वरूपका नाश होजाता है व उसमें अन्य रूप प्रकट होता है. घट द्रव्य वही बने रहने व गुणमें भेद होनेसे द्रव्य व गुणका भेद होना सिद्ध होता है, क्योंकि भेद होना व न होना दो विरुद्ध धर्म एकमें नहीं होसक्ते, जिसमें भेद नहीं हुवा वह जिसमें भेद हुवा उससे पृथक् है तथा किसी शुक्ल पटको रक्त पीत आदि रंगोंसे रंगे जाने व फिर धोनेसे शुक्ल होना प्रत्यक्ष होता है, पट द्रव्यके पूर्व व पश्चात् कालमें एकही रहनेसे व रूपोंके होने व न रहनेसे गुण व द्रव्यका भेद होना सिद्ध है,

ऐसही अन्य गुणोंमें व पूर्वोक्त द्रव्यगुण आदिके लक्षणोंसे विचारकर निश्चय करना चाहिये ॥ ६ ॥

एकद्रव्यत्वात् ॥ ७ ॥

एकद्रव्य (एकद्रव्यमें रहनेवाला) होनेसे ॥ ७ ॥

अब इस शंकाके उत्तरके लिये कि कारणगुण कारणमें रहनेसे कार्यमें न होनेसे कार्यके गुणोंके उत्पन्न करनेवाले कैसे होसक्ते हैं यह कहा है, एक द्रव्य होनेसे एकद्रव्यशब्दका अर्थ संस्कृतमें बहुव्रीहि समाससे व गुणोंका द्रव्य अधिकरण होनेके अभिप्रायसे एकही द्रव्य अधिकरण हो जिसका यह होता है इससे सूत्रका अर्थ यह हुआ. एकही द्रव्य अधिकरणवाला होनेसे अधिकरणका अर्थ आधार है अर्थात् जिसमें कोई पदार्थ रहै उसको अधिकरण कहते हैं इससे फलितार्थ सूत्रका भाषामें एकद्रव्यमें रहनेवाला होनेसे यह हुआ, इसका तात्पर्य यह है कि, यद्यपि कारणगुण साक्षात् कार्यमें समवायसम्बन्धसे नहीं होते तो भी कारण जिसके साथ उनका समवायसम्बन्ध है उसका कार्य द्रव्यमें समवायसम्बन्ध होनेसे कारणके साथ यह भी कार्य द्रव्यमें होते हैं. एकही द्रव्यअधिकरणवाला होनेसे अर्थात् इस प्रकारसे (जो कारणका अधिकरण है वही कारणगुणका

---

१ एकं द्रव्यमधिकरणं यस्य तदेकद्रव्यं तस्य भावस्तत्वमित्येकद्रव्यत्वं तस्मात् एकद्रव्यत्वात् ।

अधिकरण होनेसे) एकही द्रव्यकार्यमें होनेसे कारणगुण कार्यगुणका उत्पन्न करनेवाला होता है, इससे कार्यगुण उत्पन्न करना युक्त है, असंभव नहीं है. अथवा एकद्रव्य होनेका यह अभिप्राय है कि, द्रव्यविशेष अपने जातिभावसे कारण व कार्यका एकही है, इससे जिस द्रव्यमें कारणके गुण होते हैं उसीमें कार्यगुण होते हैं. सामान्यरूपसे एकही द्रव्यविशेष अणुओंके संयोग व विभागसे अनेक अवस्थाभेदसे अनेकद्रव्य कारण वा कार्यरूपसे होता है, इस प्रकारसे एकही द्रव्य कारणगुण व कार्यगुणका आश्रय होनेसे कारणगुणसे कार्यगुण उत्पन्न होनेमें संशय युक्त नहीं है ॥ ७ ॥

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ॥ ८ ॥

अणु व महत्की उपलब्धि (प्रत्यक्ष होना) व अनुपलब्धि (प्रत्यक्ष न होना) नित्य व्याख्यात है ८

यद्यपि सूत्रवाक्यमें कहेहुये पदोंके अनुसार यथाक्रम मिलानेसे अणुके साथ अनुपलब्धि व महत्के साथ उपलब्धिका योग नहीं होता, तथापि अर्थ व भावके अनुसार यथायोग्य अन्वय (सम्बन्ध) करनेसे सूत्रका अर्थ यह है कि, अणुकी अनुपलब्धि (प्रत्यक्ष न होना) व महत्की उपलब्धि (प्रत्यक्ष होना) नित्य व्याख्यात हैं. अणुकी यद्यपि नित्य अनुपलब्धि है अर्थात्

कभी उसका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु नील वा श्याम घट प्रत्यक्ष होनेमें जैसे नीलरूप प्रत्यक्ष होता है ऐसही परिमाण भी प्रत्यक्ष होता है. इस परिमाणसे परमाणुपर्यन्तके परिमाण होनेका अनुमान होता है व द्रव्य होनेसे भी अनुमान होता है. अब इस हेतुसे कि द्रव्यके प्रत्यक्ष होनेमें रूपही संयुक्त परिमाणकारण है, व विना महत्परिमाण हुये परमाणुरूप द्रव्य प्रत्यक्ष नहीं होता, द्रव्य प्रत्यक्ष होनेके कारण होनेसे व स्वयं (आप) प्रत्यक्ष होनेसे परिमाणगुण है यह निश्चय किया जाता है. जो परिमाण घटस्वरूपही मानाजाय, पृथक् गुण नहीं है यह कहाजाय तो यथार्थ नहीं है. क्योंकि जो परिमाण घटस्वरूपही होता तो महत्शब्द जो कार्यरूप स्थूलघटका परिमाणवाचक अङ्गीकार कियाजाता है उसके कहनेसे घटका बोध होता, परन्तु ऐसा नहीं होता व परिमाणका घट आदिसे भिन्न होनेमें यह भी हेतु है कि सामान्यरूप परिमाणका बोध सामान्यरूप घटके बोधसे अधिकदेशमें व्यापक परसामान्य है. अपर व पर रूपसे सामान्यमें भेद होनेसे विशेषमें भी भेद होना विदित होता है वा सिद्ध होता है. मानव्यवहारका जो साधारण कारण है उसको परिमाण कहते हैं. मानव्यवहारसे हाँथ बीता आदि मापके व्यवहारसे अभिप्राय है, पलसंख्या आदिसे प्रयोजन नहीं है, यह परिमाणका लक्षण रूपवान् सावयव पदार्थके

विषयमें है. परिमाण चार प्रकारका होता है, महत्, अणु, दीर्घ, ह्रस्व. महत्परिमाण दो विधका है, नित्य व अनित्य. नित्य यथा आकाश, काल, दिशा, आत्मामें परममहत्परिमाण है व अनित्य त्र्यणुक आदि (तीन अणुओंके संयोगसे बनाहुवा द्रव्य आदि) अणु भी दोविधका है, नित्य परमाणु व मनमें जिसको पारिमण्डल्य कहते हैं व अनित्य द्व्यणुकमें (दो अणुओंके संयोगसे हुये द्रव्यमें) महत्का अर्थ बडा व अणुका सूक्ष्म वा छोटा तथा दीर्घका अर्थ वडा व ह्रस्वका अर्थ छोटा है. महत् व दीर्घ दोनों बडे द्रव्यको कहते हैं. भेद इतना है कि, महत् बाह्यइन्द्रिय प्रत्यक्षरूपवान् व बुद्धि प्रत्यक्ष व व्यापक आत्मा व आकाशके परिमाणके लिये कहाजाता है, दीर्घ बाह्य इन्द्रिय प्रत्यक्षद्रव्यमात्र व कालमें भी सूर्यगति वा अन्य प्रत्यक्षविषयके सम्बन्धसे न्यूनकी अपेक्षा कहाजाता है ऐसही भेद अणु व ह्रस्वमें समुझना चाहिये ॥ ८ ॥

कारणबहुत्वाच्च ॥ ९ ॥

व कारणबहुत होनेसे ॥ ९ ॥

पूर्वसूत्रमें महत्को वर्णन किया है. अब यह जाननेके लिये कि महत् कैसे उत्पन्न होता है. यह वर्णन किया है. बहुत कारण होनेसे अर्थात् बहुत कारणोंसे महत्परिमाण उत्पन्न होता है. कारणसे अभिप्राय अणु वा अवयवोंसे है, अर्थात् बहुत

अणुओं वा अवयवोंके संयोगसे महत्परिमाण होता है व महत्परिमाण होनेसे महत्परिमाणवान् वस्तु प्रत्यक्ष होता है ९

अतो विपरीतमणु ॥ १० ॥

इससे विपरीत अणु है ॥ १० ॥

इससे (महत्परिमाणसे) विपरीत अणु है अर्थात् महत् प्रत्यक्ष व स्थूल है, अणु सूक्ष्म है व प्रत्यक्ष नही होता इससे महत्से विपरीत है. महान् (महत्परिमाणवाला) होनेमें महत्व (परिमाणका अधिक होना) व बहुत्व (बहुत परमाणुओंका मिलना) व प्रचय (आरम्भक अर्थात् उत्पादक संयोग) कारण है इनसे महत्परिमाण होता है. अब यह संशय होता है कि, अणुओंमें आरम्भक संयोग आपसे होना संभव नही होता व महत्वका अणुमें अभाव है इससे महत्वके कारण होनेका अनुमान नहीं होता, इसका उत्तर यह है कि, ईश्वरकी संसार रचनेकी इच्छासे व प्रयत्नसे अणुओंमें प्रचय (आरम्भकसंयोग) होता है व अणुओंके संयोगसे महत्परिमाण होना अदृष्टनियमसे वा अवस्थाविशेषमें स्वाभाविक धर्मसे सिद्ध होता है. अतिसूक्ष्म परिमाण परमाणुओंमें होने वा रहनेका अनुमान होता है. क्योंकि सर्वथा अभाव माननेसे अन्य परिमाण (कार्यद्रव्योंके परिमाण) की उत्पत्ति असंभव है. कुछ परिमाण होनेमें परिमाणान्तर (अन्य परिमाणका होना असंभव नहीं होसक्ता, परमाणुमें महत्व न हो-

ने महत्त्व उत्पन्न होनेमें संशय करना युक्त नहीं है. अणु व महत् होना परिमाणहीके अवस्थान्तररूप भेद हैं, इससे परिमाणमात्रके सत्तासे (होनेसे) सूक्ष्मपरिमाण कारणरूपसे कार्यरूप महत्परिमाण होना संभव है व होता है. यद्यपि इससे विपरीत अणु है इस सूत्रके व्याख्यानमें इस अधिक कहनेका सम्बन्ध नहीं था तथापि जिज्ञासुओंके लिये उपयोगी समुझकर लिख दिया है ॥ १० ॥

अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच ॥ ११ ॥

जो अणु व महत् ऐसा व्यवहार वा ज्ञान है तिसमें विशेषके भावसे (होनेसे) व विशेषके अभावसे (न होनेसे) ॥ ११ ॥

इतिशब्द जो सूत्रमें है वह व्यवहारसूचक है इसीसे व्यवहारका अर्थ अनुवादमें रक्खा गया है, व महत् यह व्यवहार मुख्य है, यह सूत्रमें शेष है. सूत्रका अर्थ व भाव यह है कि, जो अणु व महत् ऐसा व्यवहार वा ज्ञान है तिसमें (अणु व महत्के व्यवहारमें महत् यह व्यवहार मुख्य है, मुख्य होनेके हेतुमें यह कहा है, विशेषके भावसे व विशेषके अभावसे विशेषशब्दसे महत् वा अणु होनेके विशेष लक्षणसे अभिप्राय है, अर्थात् जो दूसरेकी अपेक्षा अधिक

है वह अधिकता विशेषसे महत् कहा जाता है, वही अपनेसे अधिककी अपेक्षा न्यूनताविशेषसे अणु कहाजाता है, यथा आमलक (आंवला)की अपेक्षा वेल महत् व आंवला अणु है व आंवला भी वेरकी अपेक्षा महत् है, वेल आंवला आदिमें महत्का व्यवहार मुख्य है, क्यों मुख्य है विशेषके भावसे अर्थात् अनेक कारणोंसे जो उत्पन्न हो वह महत् है यह पूर्वही वर्णन किया है, इससे अणुकसे लेकर सब द्रव्य अनेक अणु कारणोंसे संयुक्त होनेसे विशेष महत्परिमाणहीवाले है, आमलक आदिमें अणुका व्यवहार भाक्त (गौण) है, क्यों भाक्त है, विशेषके अभावसे अर्थात् अनेक कारणरहित केवल द्व्यणुकही अणु कहाजा सकता है, द्व्यणुकहीमें अणुकी विशेषता है, वेर आदिमें गौण अर्थसे अन्यकी अपेक्षा न्यून होनेसे अणु होनेका व्यवहार होता है. यद्यपि द्व्यणुकमें भी दो अणुओंका संयोग है अणुमात्र नही है, परमाणुही अणु कहनेके योग्य है परन्तु कार्यद्रव्योंमें सबसे सूक्ष्म द्व्यणुक है इससे अणु कहा जाता है. द्व्यणुकके अणुवाच्य होनेसे अणुको परमाणु कहना युक्त है ॥ ११ ॥

एककालत्वात् ॥ १२ ॥

एककाल होनेसे ॥ १२ ॥

महत् व अणु होनेके व्यवहार वा ज्ञानका एककाल होनेसे अर्थात् एकही कालमें एकही द्रव्यमें उससे छोटे व व-

डेकी अपेक्षा महत् व अणु होनेसे महत्त्वका व्यवहार व बोध मुख्य व अणुत्वका गौण होना विदित होता है क्योंकि, दो विरुद्धधर्म एक आश्रय द्रव्यमें एककालमें नहीं होसके इससे अणुसमूहका संयोग जो महत् होनेका कारण है सब प्रत्यक्षरूपवान् द्रव्योंमें होनेसे महत्का व्यवहार मुख्य है व अणुका व्यवहार गौण है ॥ १२ ॥

दृष्टान्ताच्च ॥ १३ ॥

दृष्टान्तसे भी ॥ १३ ॥

• दृष्टान्तसे भी अणु व महत्का बोध होता है, यथा बेर आमला कैथा व बेल देखनेमें एक दूसरेसे स्थूल स्थूलतर स्थूलतम हैं अर्थात् एक स्थूल दूसरा उससे अधिक स्थूल तीसरा उससे भी अधिक स्थूल है व इसीके विपरीत एक दूसरेसे अधिक अधिक न्यून हैं इसप्रकारसे एक दूसरेकी अपेक्षा अणु व महत्का ज्ञान होता है ॥ १३ ॥

अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः ॥ १४ ॥

अणुत्व व महत्त्वमें अणुत्व व महत्त्वका न होना कर्म व गुणोंसे (कर्म व गुणोंके समान) व्याख्यात है ॥ १४ ॥

एतेन ह्रस्वदीर्घत्वे व्याख्याते ॥१७॥

इसी प्रकारसे ह्रस्व व दीर्घत्व व्याख्यात हैं १७

जैसा महत्त्व व अणुत्वका व्याख्यान कियागया हैं ऐसही ह्रस्वत्त्व व दीर्घत्व व्याख्यात समुझना चाहिये, अर्थात् जैसे अणुत्व व महत्त्व परिमाणमें अणुत्व व महत्त्व नही थे तथापि न्यूनता व अधिकताविषयक गौण व्यवहार होता है ऐसही ह्रस्वत्व दीर्घत्वमें ह्रस्वत्व दीर्घत्व नही होते तथापि यह ह्रस्व है यह दीर्घ है ऐसा व्यवहार न्यूनता व अधिकताविषयक उपचारसे होता है ॥ २७ ॥

अनित्येऽनित्यम् ॥ १८ ॥

अनित्यमें अनित्य है ॥ १८ ॥

अनित्यमें अर्थात् अनित्यद्रव्यमें परिमाण अनित्य है, जिस द्रव्यमें परिमाण होता है उस अनित्यद्रव्य अपने आश्रयके नाश होनेके साथ ही परिमाण भी नष्ट हो जाता है इससे अनित्य होता है. कोई टीकाकारने द्रव्यके नाशसे परिमाणका नाश प्रथम कहकर आश्रयके नाशसे आश्रितपरिमाणके नाश होनेमें अनेक शंका किया है यथा यह कहा है कि, आश्रयके नाशसे परिमाणके नाश होनेका नियम नहीं है क्योंकि आश्रयका नाश नही होता तो भी परिमाणका नाश होजाता है, जैसे घटके दो चार अणु क्षय होने

या घटमें मिलनेसे आश्रय घट वही ज्ञात होता है परंतु प्रथम परिमाणका नाश होजाता है. अन्य परिमाण प्रकट होता है, क्योंकि जो पूर्व अवस्थामें था वह अणुओंके घटने व वढनेसे वही नहीं होसक्ता व अवयवके न्यून व अधिक होनेसे घट तथा जिस पटमेंसे दो एक तन्तु निकाल लिये जावें अथवा प्रथम जो पट बनाहुवा विननेमें देखा है उसमें अंतमें दो एक तन्तु और मिलादिये जाँय तो वह पट भी पूर्वपरिमाणवाला नहीं कहा जा सक्ता परंतु वही है ऐसा वोध होनेसे आश्रयमें भेद होना विदित नहीं होता इत्यादि वर्णन करके सिद्धान्तमें यह कहा है कि, अन्य परिमाण होनेसे अन्य नये परिमाणवाले नये अन्य घट आदि द्रव्य हो जाते हैं परंतु दीपककी शिखा अर्थात् लौवाटेमके समान वही है ऐसा प्रत्यय (वोध) होता है अर्थात् जैसे नये नये तेल व वत्तीके अणुओंसे नई नई दीपशिखा होती जाती हैं व पूर्व पूर्वके वायुमें उडती जाती हैं, परंतु सजातीय होनेसे यह वही है ऐसा साधारण प्रत्यक्ष होता है ऐसही साधारण वही घट व पटका होना विदित होता है ऐसे व्याख्यानसे यह विचारनेसे ज्ञात होता है कि, साधारण ज्ञानके विषयको वाक्यविस्तार आवरणमें छिपाना है और अधिक फल नहीं है. यह कहनेका अभिप्राय यह है कि, केवल अनित्य द्रव्यके नाश होनेसे उसका परिमाण भी अनित्य है यह क-

इनेसे साधारणही यथार्थ बोध होजाता है, व जिज्ञासुओंके लिये जहांतक थोडेमें सरलतासे बोध होसके ऐसा वर्णन करना चाहिये व जिस कथनमें विस्तार भी हो और विशेष फल भी नहो वह तो अयुक्त ही है. आश्रयशब्द जिसमें बहुत शङ्का करनेका अवकाश मिलता है वह एक अवयवीमें माननेसे संभव है. सम्पूर्ण आश्रय द्रव्यमात्रका जब नाश होनेवाला है तो परिमाण नाशमान अनित्य सिद्ध ही है व सूत्रमें अवयवीके देश वा अवयवसूचक कोई शब्द नही है. केवल अनित्यमें अनित्य है यह कहा है इसमें शङ्का करनेका अवकाशही नही है. अनित्य द्रव्यमें अनित्य है ऐसा अर्थ ग्रहण करनेसे शंकाको अवकाश न मिलनेसे उक्तप्रकारसे शंका समाधान करना केवल कल्पना करना है ॥१८॥

नित्ये नित्यम् ॥ १९ ॥

नित्यमें नित्य है ॥ १९ ॥

नित्यद्रव्यमें परिमाण नित्य है, यथा आकाश व परमाणुका परिमाण नित्य है, आकाश व परमाणुके नाश होनेमें कोई हेतु न होनेसे इनके नित्य होनेसे इनके परिमाण भी नित्य हैं ॥ १९ ॥

नित्यं परिमण्डलम् ॥ २० ॥

परिमण्डल नित्य है ॥ २० ॥

परमाणुके परिमाणको परिमण्डल कहते हैं. परिमण्डल (परमाणुका परिमाण) नित्य है ॥ २० ॥

अविद्या च विद्यालिङ्गम् ॥ २१ ॥

और अविद्या विद्याका लिङ्ग (चिह्न) है ॥२१॥

और अविद्या विद्याका चिन्ह है यह कहनेका अभिप्राय यह है कि, अविद्या जो भ्रमरूप वा मिथ्या ज्ञान होता है वह सत्यज्ञानके सम्बन्ध वा संस्काररहित नहीं होता, जो सत्यज्ञान न होवै तो भ्रम भी न हो, भ्रम होनेके साथही सत्यज्ञानका जिसके संस्कारसे भ्रम होता है उसका स्मरण होता है व निश्चय होता है इससे अविद्या विद्या(सत्य ज्ञान)का चिन्ह है. यहां यह कहनेका प्रयोजन यह है कि, प्रत्यक्ष स्थूल कार्यरूप पृथिवी नित्य है जल नित्य है, ऐसे अनित्यमें नित्य होनेका बोध अविद्या है, परन्तु कार्य विना सत्कारणके नहीं होसकता, इससे इसका कारण परमाणु अवश्य होगा. पृथिवी आदिमें सत्य होनेका ज्ञान अविद्या परमाणुके नित्य सत्य होनेका ज्ञानरूप विद्याका चिन्ह है. यद्यपि यह भी एक हेतु परमाणुके नित्यताविषयमें कहा-गया है परंतु पूर्वही जो प्रमाण परिमाणुके नित्यताका कहा गया है वही उत्तम है ॥ २१ ॥

विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा २२

विभवसे आकाश महान् (महत्परिमाणवान्) है ऐसही आत्मा है ॥ २२ ॥

विभवसे अर्थात् सर्वत्र व्यापक व सब मूर्तोंमें प्राप्त होनेसे आकाश महान् है, आकाश जो महत्परिमाणवान् व्यापक न होता तो अनेक देशोंमें शब्द उत्पन्न होना संभव न होता, ऐसही आत्मा महत्परिमाणवान् व्यापक है. अदृष्टपूर्वक वा अदृष्टसंयुक्त आत्माका संयोग सृष्टिके उत्पत्तिकालमें परमाणुओंमें कर्म होनेका हेतु होनेसे आत्माका विभु होना अर्थात् व्यापक महत्परिमाणवान् होना आवश्यक है. नहीं अनेक देशोंमें अनेक शरीरकी सृष्टि होनी संभव नहीं हो सक्ता ॥ २२ ॥

तदभावादणु मनः ॥ २३ ॥

उसके अभावसे मन अणु है ॥ २३ ॥

उसके (व्यापकताके) अभावसे मन अणु है. मनमें युगपत् ज्ञान (अनेक ज्ञान एकसाथ) नहीं होते यह मनका लक्षण न्यायसूत्रमें महात्मा गोतमजीनें वर्णन किया है. युगपत् ज्ञान न होनेसे यह सिद्ध होता है कि, मन विभु नहीं है, विभु होता तो सदा सब इन्द्रियोंके साथ संयोग बना रहनेसे सब इन्द्रियोंके विषयोंका ज्ञान एक साथ होता रहता, विभु अर्थात् महान् वा व्यापक न होनेसे अणु है, अणु

होनेहीसे जब जिस इन्द्रियके साथ उसका संयोग होता है तव उसके विषयका ज्ञान होता है व एक इन्द्रियके विषयमें आसक्त मनमें अन्य इन्द्रियके विषयका ज्ञान आसक्त होने व रहनेके समयमें नहीं होता ॥ २३ ॥

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥ २४ ॥

गुणोंसे दिशा व्याख्यात है ॥ २४ ॥

गुणोंसे अर्थात् गुणोंके हेतुसे दिशाका व्यापक होना व्याख्यात समुझना चाहिये, दिशाके गुण जो परत्व व अपरत्व हैं वह सब संसारमें मूर्तिमान् पदार्थोंमें निष्ठ होनेसे (प्राप्त रहनेसे) दिशा भी महत्परिमाणवान् (व्यापक) है, दिशाके अनेक होनेका बोध व व्यवहार उपाधिवशसे होता है यह पूर्वही वर्णन कियागया है ॥ २४ ॥

कारणे कालः ॥ २५ ॥

कारणमें काल है ॥ २५ ॥

कारणमें काल कहनेका अभिप्राय यह है कि जो द्रव्य पर, अपर, युगपत्, अयुगपत्, व्यतिकर (परस्पर बदलेमें एकका दूसरेके लिये करना), चिर. (देरसे होना), क्षिप्र (जल्द होना) इन सबके प्रत्ययोंमें जो जो द्रव्य कारण होता है उस कारणद्रव्यमें कालका सम्बन्ध है. यह पर है यह अपर है इत्यादिका बोध कालके सम्बन्धसे होता है.

सब देशके मनुष्योंको ऐसा प्रत्यय होना विना कालके व्यापक होनेके संभव नहीं है इससे काल सर्वव्यापक है, अथवा यह प्रत्यय होनेसे कि अब उत्पन्न हुवा सम्पूर्ण पदार्थ जो उत्पन्न होते है उनमें काल निमित्तकारण है यह प्रतीति होती है, इसमें भी सबपदार्थोंमें निमित्तकारण कालके व्यापक होनेकी आवश्यकता है, व सबको सर्वत्र भूत भविष्यत् वर्तमानके बोध होनेसे काल व्यापक है अथवा पल क्षण मुहूर्त पहर दिन मास वर्ष आदिके व्यवहारके कारणद्रव्यमें कालके नामका व्यवहार होता है, यह व्यवहार सर्वत्र होनेसे सबमें सब स्थानमें कालका सम्बन्ध ज्ञात होनेसे काल व्यापक परममहान् है यह सिद्ध होता है. अनेक होनेकी कल्पना उपाधिवशसे होती है जैसा पूर्वही कहागया है ॥२५॥

इति श्रीवैशेषिकदर्शने प्रभुदयालुनिर्मिते देशभाषाकृतभाष्ये सप्तमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् १

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ।

रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ॥ १ ॥

रूप रस गन्ध स्पर्शोंके अभावसे एकत्व (एकता) भिन्नपदार्थ है ॥ १ ॥

पदार्थविशेषोंमें एकत्व होनेसे व रूप रस गन्ध स्पर्शके अभावसे (न होनेसे) एकत्व रूप आदिकोंसे भिन्न पदार्थ है रूप आदि स्वरूपही नहीं है. यथा काल एक है, आकाश एक है यह प्रतीत होनेमें एकत्व रूप आदिसे भिन्न गुण है यह सिद्ध होता है, क्योंकि आकाश काल आदिमें जिनमें एकत्वका भाव है रूप आदिका अभाव है. पदार्थविशेषोंमें यह सूत्रमें शेष है. अथवा रूप आदिसे भेद होनेसे एकत्व भिन्न पदार्थ है यह साधारण अर्थ ग्रहण करना युक्त है. भेद होना कैसे सिद्ध होता है, यह आकाश आदि द्रव्योंमें प्रत्यक्ष व अनुमानसे सिद्ध है यह भाव सूत्रका समुझना चाहिये १

तथा पृथक्त्वम् ॥ २ ॥

तैसही पृथक्त्व है ॥ २ ॥

तैसही अर्थात् जैसे एकत्व पृथक्पदार्थ है तैसही पृथक्त्व पृथक्पदार्थ है. एकपृथक्त्व एक संख्याके समान द्विपृथक्त्व आदि (दोका पृथक् होना आदि) दो संख्या आदिके समान है. इसमें यह संशय होता है कि, पृथक्त्व कोई पृथक् (भिन्न) गुण नहीं है, केवल दोपदार्थोंका परस्परका अभाव है, यथा घट पट नहीं है, पट घट नहीं है, घटका अभाव पटमें पटका घटमें होना यही पृथक्त्व है, इसका उत्तर यह है कि, पृथक्त्व अभावसे भिन्नगुण है, जो अभावसे पृथक्त्व

भिन्न न होता तो इस बोधमें कि यह पृथक् है यह पृथक् नहीं है ऐसा भेद नहीं होता ॥ २ ॥

एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽणुत्त्वमहत्वाभ्यां व्याख्यातः ॥३॥

एकत्व व एकपृथक्त्वमें एकत्व व एकपृथक्त्वका अभाव अणुत्व व महत्वके समान व्याख्यात है ॥३॥

एकत्व व एकपृथक्त्वमें यह संशय होता है कि एक एकाईके कहनेसे एकत्वमें भी एकत्व है ऐसही एकपृथक्त्व (एकका भिन्न होना) द्विपृथक्त्व(दोका भिन्न होना)से पृथक् है ऐसा व्यवहार होनेसे एकपृथक्त्वमें भी एकपृथक्त्व मानना चाहिये, परन्तु ऐसा माननेमें गुणमें गुण होनेसे एकत्व व एकपृथक्त्व दोनोंका गुण होना दुर्घट वा असंभव है, इस संशयनिवारणके लिये यह कहा है कि, जैसे अणुत्वमें अणुत्व व महत्वमें महत्व नहीं होता ऐसही एकत्वमें एकत्व व एकपृथक्त्वमें एकपृथक्त्व नहीं है, अणुत्व व महत्वके समान इनको व्याख्यात समुझना चाहिये, परन्तु उक्तप्रकारसे जो व्यवहार होता है वह उपचार वा गौण अर्थसे होना मानना चाहिये ॥ ३ ॥

निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ॥ ४ ॥

कर्म व गुणोंके संख्यारहित होनेसे सबमें एकत्व नहीं है ॥ ४ ॥

एक गुण एक कर्म ऐसा व्यवहार होनेसे गुण व कर्ममें एकत्व होना विदित होता है इससे द्रव्यके समान सब पदार्थोंमें एकत्व होना सिद्ध होता है ऐसा ज्ञात होनेमें यथार्थ क्या है यह निश्चय होनेके लिये यह कहा है कि, गुण व कर्मोंके संख्यारहित होनेसे सबमें एकत्व नहीं है अर्थात् सब पदार्थोंमें एकत्व नहीं होता वा नहीं है. न होनेमें हेतु वा प्रमाण यह है कि गुण व कर्म संख्यारहित हैं, संख्यारहित होनेसे सबमें एकत्व नहीं होता, द्रव्यहीमें एकत्व होता है संख्या गुण है इससे संख्या गुणमें नहीं होसकती, न कर्ममें होसक्ती, क्योंकि कर्म व गुणोंमें गुण नहीं होते, गुण होनेमें द्रव्यमानना होगा, द्रव्य न होनेसे गुणकर्म गुणके आश्रय नहीं होसक्ते ॥ ४ ॥

भ्रान्तं तत् ॥ ५ ॥

वह भ्रान्त है ॥ ५ ॥

यह गुण व कर्ममें एकत्व होनेका ज्ञान भ्रान्त है. ज्ञानशब्द सूत्रमें शेष है. अब यह शंका है कि जो भ्रान्त है तो एक रंग एक रस यह ज्ञान क्यों होता है ? उत्तर यह है कि, एक रस रूप आदिका प्रयोग गौण वा भाक्त होता है

मुख्य नहीं, द्रव्यसे भिन्न स्वरूप न होनेसे ऐसा बोध होता है परंतु यथार्थ ज्ञानसे एकत्व नहीं है ॥ ५ ॥

एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ॥ ६ ॥

एकत्वके अभावसे भक्ति (गौणत्व) नहीं है ॥ ६ ॥

इस शंकाके समाधानके लिये कि द्रव्यमें भी एकत्व भाक्त है व द्रव्यमें भी एकत्वका व्यवहार भ्रान्त मानना चाहिये. द्रव्यमें मुख्य माननेका क्या हेतु है यह कहा है. एकत्वके अभावसे भाक्तत्व (गौणत्व) नहीं है. भाव इसका यह है कि, जो द्रव्यमें भी मुख्य अर्थ एकत्वका ग्रहण न किया जायगा तो कहीं मुख्य सत्य अर्थसे होना सिद्ध न होगा इससे एकत्वका अभावही होजायगा व अभाव होनेसे भाक्त अर्थका ग्रहण असंभव होगा, क्योंकि मुख्यपूर्वकही भाक्त (गौण) होता है इससे द्रव्यमें भाक्तत्व नहीं है ॥ ६ ॥

कार्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादेकत्वैकपृथक्त्वं न विद्यते ॥ ७ ॥

कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्वके अभावसे (न होनेसे) एकत्व व एकपृथक्त्व नहीं है ॥ ७ ॥

कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्वके अभावसे कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्व नहीं है यहसूत्रका अर्थ है.

भाव यह है कि, एकत्वभेद न होना व एकपृथक्त्व वैधर्म्य न होना है इन दोनोंका कार्य व कारणमें अभाव है. यथा कारण (अवयव) तन्तु व कार्य पट अभेद नहीं हैं, तन्तु पट नहीं कहा जाता, न पट होनेका प्रत्यय होता है, व तन्तु व पट आकार व परिमाणमें समान नहीं हैं इससे दोनोंमें वैधर्म्य (विरुद्धधर्मता) है. जो तन्तु व पट अभेद समुझे जावें तो तन्तुओंसे पटकी उत्पत्ति न मानना चाहिये, क्योंकि वही उत्पादक व वही उत्पाद्य नहीं होसकता है॥७॥

एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥ ८ ॥

यह अनित्योंका व्याख्यात (व्याख्यान किया-गया) है ॥ ८ ॥

यह (कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्वका अभाव) अनित्योंका अर्थात् अनित्य कार्य व कारणोंका व्याख्यात है. कार्य व कारणमें जो भेद नहीं मानते उनका मत यथार्थ नहीं है, क्योंकि जो कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्व होता दोनोंमें भेद न होता तो पटकी उत्पत्तिदशामें तन्तु व तन्तुकी उत्पत्तिदशामें पट उत्पन्न होता, ऐसही एकके नाशसे दूसरेका नाश होता, परंतु ऐसा न होनेसे व ऐसे ही अन्य हेतुओंसे विचारनेसे कार्य व कारणमें एकत्व व एकपृथक्त्व नहीं है, दोनों भिन्न पदार्थ हैं ॥ ८ ॥

अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः ॥ ९ ॥

अन्यके कर्मसे उत्पन्न दोनोंके कर्मसे उत्पन्न व संयोगसे उत्पन्न संयोग होता है ॥ ९ ॥

जो पूर्वमें न रही हो ऐसी हुई प्राप्तिको संयोग कहते हैं. संयोग तीन प्रकारका होता है एक जो अन्यके कर्मसे उत्पन्न होता है जैसे पक्षियोंके आगमन व बैठने कर्मसे वृक्ष आदिके साथ संयोग होता है, अथवा दौड़ते हुये या आतेहुयेका किसी स्थिरपुरुष आदिके साथ मार्गमें अन्धकार आदि किसी कारणविशेषसे पहिलेसे न देखनेसे होता है इत्यादि दूसरा जो दोनोंके परस्परके कर्मसे उत्पन्न होता है अर्थात् होता है. जैसे दो मल्ल एक दूसरेको बलकरके पकडते हैं इससे उनके शरीर व अवयवोंका संयोग होता है इत्यादि तीसरा जो संयोगसे उत्पन्न होता है जैसे अङ्गुली व वृक्षके संयोगसे हाथ व वृक्षका संयोग होता है. किसी पदार्थ वा द्रव्यके साथ वस्त्रके संयोग होनेमें उसके संयोगसे उसके अनेक अवयव तन्तुओंका संयोग होता है. किसी पात्रके एक अंशमें अग्नि व उष्णताके संयोगसे सब पात्रमें व उसके संयोगसे उसमें जो जल व तण्डुल आदि है सबमें तेजऔर उष्णताका संयोग होता है, संयोग होनेहीसे तण्डुल (चाउर)

आदि पकते हैं इत्यादि अनेक प्रकारसे संयोगसे संयोग होता है परंतु जो नित्यव्यापक आकाश आदि हैं उनका नित्य स्वतःसिद्ध सब पदार्थोंके साथ सम्बन्ध रहनेसे उनमें संयोग होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कर्मसे उत्पन्न संयोग होनेका उनमें अभाव है. संयोग उक्तप्रकारसे कर्मसे उत्पन्न होता है व जो प्राप्ति पूर्वमें नहीं होती, कर्मसे उत्पन्न होकर होती है, उसको संयोग कहते हैं इससे संयोगका अनित्य होना सिद्ध है, क्योंकि जो होता है उसका नाश भी होता है. जिन पदार्थोंका संयोग होता है उनका विभाग होनेसे या उनके नाश होनेसे संयोगका नाश होजाता है. नित्यव्यापक आकाश आदिका सम्बन्ध अनित्य नहीं है, क्योंकि आकाश आदिमें पूर्व प्राप्तिका अभाव सिद्ध नहीं होता, पूर्व प्राप्तिका अभाव न होने व अवयव न होनेपर भी एकदेशमें सम्बन्ध या संयोग उपाधिभेदसे मानना गौण है मुख्य नहीं है ॥ ९ ॥

एतेन विभागो व्याख्यातः ॥ १० ॥

इससे अर्थात् इसी प्रकारसे विभाग व्याख्यात है॥

इसी प्रकारसे अर्थात् संयोगके व्याख्यानसे विभागको व्याख्यात समुझना चाहिये अर्थात् जैसे अन्य कर्मसे दोनोंके कर्मसे व संयोगसे संयोग होता है ऐसही अन्यके कर्मसे व दोनोंके कर्मसे व विभागसे विभाग उत्पन्न होता है. अन्यके

गुणत्वात् ॥ १४ ॥

गुण होनेसे ॥ १४ ॥

अब संयोगविभाग वर्णन करनेहीमें महात्मा सूत्रकार मनमें शब्द व अर्थके संयोग होनेके विषयमें यह तर्क करके कि, शब्द व अर्थका संयोग इस हेतुसे संभव नहीं होता कि, शब्द गुण है व संयोग गुण है, गुणमें गुण होनेका निषेध कियेजानेसे शब्द गुणवान् नहीं होसक्ता अर्थात् शब्दमें संयोग गुण नहीं होसक्ता, व संयोग नहीं है ऐसा भी मानना युक्त नहीं है, क्योंकि संयोग वा सम्बन्ध विशेष न होता तो घट आदि शब्दसे पट आदिका बोध होता, घट आदिहीका बोध नहीं होता इस पूर्वपक्षको आगे हेतुपूर्वक कहनेके अभिप्रायसे कि, शब्द व अर्थ सम्बन्धरहित, हैं प्रथमसे संयोग न होनेके हेतु कहना इस सूत्रसे आरम्भ करके चार हेतुओंको कहकर पांचवे सूत्रमें पक्षको कहा है कि, शब्द व अर्थ सम्बन्धरहित हैं अर्थात् इन पूर्व कहेहुये हेतुओंसे शब्द व अर्थमें संयोग न होनेसे सम्बन्धरहित हैं इस सूत्रका आगेके तीन सूत्रोंसहित पांचवे सूत्रके साथ अन्वय (सम्बन्ध वा योग) है. पांचोंकी एकवाक्यता है यह समुझना चाहिये. गुण होनेसे यह जो सूत्र है इसका आशय उक्त (कहेहुये) अभिप्रायसे यह है कि, शब्द गुण है, शब्दके गुण

होनेसे शब्दमें (शब्दप्रतिपादकमें) अर्थका (प्रतिपाद्य अर्थका) संयोग संभव नहीं होता है ॥ १४ ॥

गुणोऽपि विभाव्यते ॥ १५ ॥

गुण भी प्रतिपादन कियाजाता है ॥ १५ ॥

शब्दसे गुण भी प्रतिपादन कियाजाता है इस हेतुसे यह सूत्रका पूरा अर्थ है. शब्दपदका ग्रहण शब्द व अर्थसम्बन्धनिषेधक उत्तरसूत्रसे शब्दसंयोग वा सम्बन्धनिरूपण आरम्भ होनेके प्रत्ययसे होता है, और इस हेतुसे यह सूत्रमें शेष है. आक्षेपसे ग्राह्य है. भाव इसका यह है कि, गुण भी अर्थात् रूप रस शब्द स्पर्श आदि रूप गुणमात्र भी शब्दसे वाच्य अर्थ होनेसे प्रतिपादन कियाजाता है, परंतु गुणमें गुण होना स्वीकार (अङ्गीकार) नहीं कियागया इससे शब्द व अर्थका संयोग वा सम्बन्ध होना सिद्ध नहीं होता ॥ १५ ॥

निष्क्रियत्वात् ॥ १६ ॥

क्रियारहित होनेसे ॥ १६ ॥

प्रतिपादक शब्द व प्रतिपाद्य पदार्थ आकाश आदिके क्रियारहित होनेसे संयोग संभव नहीं होता, क्योंकि संयोग कर्मजन्य होता है. आकाश आदि शब्द व आकाश आदि पदार्थ कर्मशून्य हैं ॥ १६ ॥

असति नास्तीति च प्रयोगात् ॥१७॥

अविद्यमानमें (जो नहीं है उसमें) नहीं है यह व अन्य प्रयोग होनेसे ॥ १७ ॥

प्रतिपाद्य अर्थके विद्यमान न होनेमें अर्थात् जो पदार्थ था व विद्यमान नहीं है उसमें नहीं है यह प्रयोग होनेसे व अन्य प्रयोग होनेसे अर्थात् होनेवाले पदार्थमें होगा यह प्रयोग होनेसे यथा जो घट था वह नहीं है. कल्ह घट बनाया जायगा इत्यादि नष्ट हुये व होनेवाले पदार्थोंके साथ विद्यमान वा वर्तमानकालमें कहेहुये शब्दका संयोग संभव नहीं होता है. अन्यशब्द यद्यपि सूत्रमें संस्कृतमें नहीं है परंतु सूत्रमें जो चशब्द है उससे अन्य प्रयोगका अर्थ ग्रहण कियाजाता है ॥ १७ ॥

शब्दार्थावसम्बन्धौ ॥ १८ ॥

शब्द व अर्थ सम्बन्धरहित हैं ॥ १८ ॥

इन हेतुओंसे अर्थात् इन कहेहुये हेतुओंसे शब्द व अर्थमें संयोग न होनेसे शब्द व अर्थ सम्बन्धरहित हैं ॥ १८ ॥

संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विशेषाच्च ॥ १९ ॥

संयोगीका दण्डसे व समवायीका विशेषसे ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

ज्ञान होता है यह सूत्रमें शेष है, इससे भाषाअनुवादमें ज्ञान होता है सहित सूत्रका अर्थ लिखा गया है, शब्द व अर्थका प्रत्यय (बोध) संयोग आदि संसर्ग अवगाही दण्डी संयोगीका दण्डसंयोगसे व समवायीका विशेषसम्बन्धसे होनेके समान भी नहीं है, अर्थात् शब्द व अर्थका प्रत्यय संयोग वा सम्बन्ध संसर्गसे भी नहीं होता यह प्रतिपादनके लिये यह कहा है कि, संयोगीका दण्डसे (दण्डसंयोगसे) व समवायीका विशेषसे (विशेषसम्बन्धसे) प्रत्यय होता है अर्थात् जैसा दण्डसंयोगसे संयोगी दण्डीका व विशेषसम्बन्धसे समवायी (अवयवी)का यथा अवयवविशेष सूंडके सम्बन्धसे हांथीका प्रत्यय होता है कि यह दण्डवाला दण्डी व सूंडवाला पशु हांथी है ऐसा घटवान् (घटवाला) घटशब्द अथवा घटशब्दवान् (घटशब्दवाला) घट होनेका प्रत्यय नहीं होता इससे शब्द वा पद व पदार्थमें न संयोग है न समवायसम्बन्ध है यह अभिप्राय है ॥ १९ ॥

सामयिकः शब्दार्थप्रत्ययः ॥ २० ॥

शब्द व अर्थका प्रत्यय (बोध) सामयिक (सांकेतिक) है ॥ २० ॥

अव यह शङ्का होती है कि, जो शब्द व अर्थमें न संयोग है न समवाय है तो शब्दविशेषसे विशेष नियत अर्थका प्रत्यय कैसे वा किस सम्बन्धसे होता है इसके समाधानके लिये यह कहा है कि शब्द व अर्थका प्रत्यय सामयिक है, समय सङ्केतको कहते है, सङ्केतरूप सम्बन्ध जिसमें हो वह सामयिक है. शब्द व अर्थका प्रत्यय सामयिक (सङ्केतसम्बन्धवाला) कहनेसे तात्पर्य यह है कि शब्द व अर्थका प्रत्यय सङ्केतसम्बन्धसे होता है, सङ्केतका अर्थ ठहरानेका है, सङ्केतसे होता है अर्थात् जिस शब्दका जिस अर्थके लिये यह सङ्केत किया गया है कि, इस शब्दसे यह अर्थ समुझना चाहिये. सङ्केतके अनुसार उस शब्दसे उसी अर्थका जिसमें वह नियत किया गया है बोध होता है- यथा जब कोई बालक उत्पन्न होता है तब प्रथम उसका कुछ नाम नहीं होता, पीछेसे जब गुरुजन कोई नाम उसका रखदेते हैं तबसे उस सांकेतिक नामसे उसी बालकका बोध होता है. आदिमें गुरुजनकी इच्छासे संकेत होता है, इच्छा अनुसार चहै जो नाम रखदेवें- शब्दविशेषका उसके शरीरके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं होता ऐसही आदिमें जो शब्द जिस अर्थमें संकेत किया गया है, उसके अनुसार शब्दविशेषसे अर्थविशेषका प्रत्यय वा बोध होता है. शब्द संकेतकी आदि व आदिमें कोई प्राकृतपुरुष संकेतकर्ता संभव व विदित न हो-

जैसे वैदिक शब्द आदिका संकेतकर्ता सर्वज्ञ ईश्वरको आचार्य मानते हैं, इसके निश्चित होनेमें जो कोई संशयभी करै तो संकेत होनेमें संदेह नहीं होसक्ता. उक्त प्रत्यक्षप्रमाणसे अप्रत्यक्षमेंभी ऐसही होनेका अनुमान होता है, और कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता और संकेतकर्ताभी ईश्वरहीका आदि सृष्टिमें होना संभव है व आचार्योंके वचनसे अंगीकार करनेकेयोग्य है. संकेत दो प्रकारका होता है, एक जो नित्य होता है उसको आजानिक कहते हैं और इसीको शक्ति कहते हैं, दूसरा जो नित्य नहीं होता वर्तमानकाल या व्यतीतकालमें कुछ कालका हुवा है उसको आधुनिक कहते हैं. शक्तिग्रह (शक्तिका ग्रहण) व्यवहार आदिसे होता है जैसा कि इस श्लोकमें कहा है शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानात् कोपाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च। सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति । अर्थ, व्याकरणसे उपमानसे कोपसे आप्तवाक्यसे व्यवहारसे सिद्धपदके सांनिध्यसे (प्रसिद्ध अर्थवाले पदोंका एक पदमें सम्बन्ध होनेसे) वाक्यशेपसे (बाकी रहे हुये वाक्यसे) विवरणसे शक्तिग्रह (शब्दविशेपसे संकेतितविशेषअर्थका ग्रहण) होनेको वृद्धजन कहते हैं. अब व्याकरण आदिसे शक्तिग्रह होनेके पृथक् पृथक् उदाहरण यह हैं. धातु प्रकृति प्रत्यय आदिका शक्तिग्रह व्याकरणसे होता है, यथा क-

शक्तिको ग्रहण करता है. सिद्ध पदके सांनिध्यसे अर्थात् अनेक प्रसिद्ध अर्थवाले पदोंका एक अधिकरणमें होनेसे अर्थात् एक पदार्थमें सम्बन्ध होनेसे शक्तिग्रह होता है, जैसे रूपरहित स्पर्शवान्को वायु व जो विवाहमें अलंकृत (अलंकारयुक्त) व सत्कृत (सत्कार की गई) कन्याको देता है उसको कूकुद कहते हैं इत्यादि शब्दोंके अर्थोंके जाननेसे रूपरहित स्पर्शवान् आदि पदार्थोंमें वायु आदि शब्दका व कन्यादेनेवाले आदिमें कूकुद आदि शब्दका शक्तिग्रह होता है, ऐसेही वाक्यशेषसे होता है. जैसे स्वाराज्यकामोऽग्निष्टोमेन यजेत. अर्थ स्वाराज्य (स्वर्गराज्य)की इच्छा करनेवाला अग्निष्टोम (यज्ञविशेष)से यजन करै. अब इस वाक्यमात्रसे यह निश्चय नहीं होता कि, स्वः जिसको स्वर्गसुख कहते हैं उसमें संसारीराज्यके समान सुख होता है अथवा कोई विशेषता है इसका निश्चय वाक्यशेष(बाकी रहे वाक्य)से जिसमें विशेषताका वर्णन है उससे होता है यह यह है 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरं। अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदं' अर्थ, जो पूर्वही दुःखसे भिन्न नहीं होता अर्थात् दुःखसे बाधाको नहीं प्राप्त होता व होनेसे पश्चात् फिर नष्ट नहीं होता व अभिलाषसे प्राप्त होता है वह स्वर्गपदका अर्थ है अर्थात् ऐसे सुखको स्वर्ग कहते हैं, इस वाक्यशेषसे स्वर्गपदका विजातीयसुखमें

शक्तिग्रह होता है इत्यादि, कभी विवरणसे होता है, जैसे पकाता है इसके विवरणके लिये दूसरे प्रकारसे कहना कि, पकाता है अर्थात् पाक करता है वा भोजन बनाता है इत्यादि तुल्य अर्थवाले वाक्यसे कर्म आदिमें क्रिया आदिका शक्तिग्रह होता है. कोई यह कहते हैं कि, शक्तिग्रह जातिमें होता है, व्यभिचार होनेसे व व्यक्तिओंके अनन्त होनेसे व्यक्तिमें नहीं होता. कोई यह कहते हैं कि, विना व्यक्तिके जातिका ज्ञान असंभव है, जातिमात्रमें शक्तिग्रह होनेसे व्यक्तिमें शक्तिग्रह न होना चाहिये, इससे जातिमें शक्ति होनेका मत समीचीन (अच्छा) नहीं है. गौ लावो इत्यादिमें व्यक्तिका प्रत्यय (बोध) अनुभवसिद्ध है. संक्षेपसे सिद्धान्त यह निश्चय करना चाहिये कि, सामान्यभावसे जातिमें व विशेषसे जाति आकृति विशिष्ट व्यक्तिहीमें गौ आदि पदोंकी शक्ति है यही मत माननेके योग्य है. जैसा कि, महात्मा गोतमऋषिने भी न्यायसूत्रमें कहा है कि, व्यक्ति आकृति व जाति पदार्थ हैं ॥ २० ॥

एकदिक्काभ्यामेककालाभ्यां सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां परमपरं च ॥ २१ ॥

निकट व दूरवाले जो एकदिशावाले व एकका-

लवाले दो पदार्थ हैं उनसे पर व अपर यह व्यवहार होता है ॥ २१ ॥

व्यवहार होता है यह सूत्रमें शेष है. शेष समुझकर आक्षेपसे अनुवादमें व्यवहार होनेका अर्थ रक्खागया है. इस संशय निवारणके लिये कि, समानदेशवाले भी एक दिशावाले होते हैं उनसे वा उनमें पर व अपरका व्यवहार नहीं होता. निकट व दूरवाले कहा है, पर व अपरका व्यवहार दो प्रकारका होता है, एक दिशासम्बन्धी व दूसरा कालसम्बन्धी, एक दिशामें जो दो पिण्ड वा मूर्त पदार्थ स्थित होते हैं उनमेंसे जो दूसरेकी अपेक्षा दूर देशमें होता है उसको पर, और जो अल्प (थोडे) देशमें होता है अर्थात् निकट होता है उसको अपर कहते हैं, और जोकालकृत वा कालसम्बन्धी पर व अपरका व्यवहार होता है वह अवस्थाभेदका ज्ञापक (जनानेवाला) होता है उसमें अल्पतर(थोडे) सूर्यके गमन आगमन(दिनरात्रि) संख्याके अन्तर होनेको अपर व बहुतर (अधिक) सूर्यके गमन व आगमनसंख्याके अन्तरको पर कहते हैं. पर व अपरका ज्ञान जिन मूर्त वा पिण्डद्रव्योंमें होता है वह समवायिकारण दिशा वा कालका द्रव्यके साथ संयोग असमवायिकारण व अपेक्षाबुद्धि निमित्त कारण है, दिशाकृत वा दिशासम्बन्धी पर अपर व्यवहार होनेका दृष्टान्त यह है, यथा पाटलिपुत्र(पटना)में जो पुरुष है उस-

ख्यान यह है. अपेक्षाबुद्धिका भाव न रहनेपर जब द्रव्यमें परत्वका सामान्य ज्ञान उत्पन्न होता है तब उससे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है, अपेक्षाबुद्धिके नाश होनेसे जिसमें परत्वका ज्ञान है उस द्रव्यमात्रके ज्ञान होने वा रहजानेके कालमें परत्वका नाश होता है, इसको द्वित्व(दोहोने)के नाश होनेके समान समुझलेना चाहिये १ संयोगके नाशसे परत्व व अपरत्वका नाश होता है, जैसे जिस कालमें अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है उसी कालमें जब किसी परत्वके आधारभूत वा पिण्डद्रव्यमें अर्थात् पर द्रव्यमें कर्म उत्पन्न होता है व अपेक्षाबुद्धिसे जब परत्वकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें कर्मसे दिशा व द्रव्यका विभाग होता है उससे (परत्वसे) जब परत्वका सामान्यज्ञान होता है उसी कालमें दिशा व द्रव्यके संयोगका नाश होता है, सामान्यज्ञान होनेके उपरान्त सामान्यज्ञानसे अपेक्षाबुद्धिका जब नाश होता है उसी कालमें दिशा व द्रव्यके संयोगके नाश होनेसे परत्व व अपरत्वका नाश होता है २ समवायिकारणद्रव्यके नाश होनेसे भी परत्वका नाश होता है जैसे जब पिण्डरूप द्रव्यके अवयवमें उत्पन्न हुये कर्मसे अन्य अवयव वा अवयवोंसे विभाग होता है तभी (उसी समयमें) अपेक्षाबुद्धि होती है, विभागसे (विभाग होनेपर) द्रव्यके आरंभक संयोगका नाश व परत्वका सामान्यज्ञान होता है,

सामान्यज्ञानसे अपेक्षाबुद्धिका नाश व आरंभक संयोगके नाशसे द्रव्यका नाश होनेसे द्रव्यमें आश्रित परत्वगुणका भी नाश होता है अर्थात् परत्वके सामान्यज्ञानका भी नाश होता है. यद्यपि पूर्वके टीकाकारोंके लेखके अनुसार सातप्रकारसे परत्व॰ व अपरत्वके नाश होनेके हेतु भेदोंके नाम लिखा है परन्तु मेरे विचारमें उन सबके व्याख्यानसे कुछ विशेष फल नहीं है, प्रयोजनसे अधिक वाक्यरचना विस्तार करना ज्ञात होता है, क्योंकि जब मुख्य पदार्थका तत्त्वज्ञान जिज्ञासु वा विद्यार्थीको प्राप्त होजाता है तब उसके भेद आपसे बुद्धिद्वारा ज्ञात होजाते हैं, परत्व अपरत्वके होनेमें द्रव्य, दिशा वा कालका संयोग व अपेक्षाबुद्धि यही तीन कारण हैं, इनमेंसे जब द्रव्य व संयोग रहनेपर अपेक्षाबुद्धिमात्रके नाश होनेसे परत्व व अपरत्वका नाश होजाता है तब द्रव्य व संयोगके नाश होनेसे जिनके विना न अपेक्षाबुद्धि होसक्ती है न रहसक्ती है, परत्व अपरत्वका नाश होना आपही विदित होता है, तथापि इन तीनोंका व्याख्यान कियाजाना परस्पर आपेक्षित होनेसे युक्त भी होसक्ता है, परन्तु अपेक्षाबुद्धि आदि तीनोंके नाश होनेसे परत्वका नाश होना कह कर फिर इन्हीमेंसे दोदोका साथ नाश होनेसे परत्वका नाश होना जो वर्णन किया है वह आवश्यक व युक्त होना नहीं विदित होता, क्योंकि जो कुछ भी बुद्धि-

मान् होगा व शास्त्र पढैगा क्या वह इतनाभी न समुझ सकैगा कि जब उक्त तीन कारणोंमेंसे एकएक न रहनेसे परत्वका नाश होजाता है तब उनमेंसे दो वा तीनोंके नाश होनेसे परत्व अवश्य नष्ट होजायगा, जिसको इतनी भी समुझ न होगी वह शास्त्रपठनका अधिकारी नही होसक्ता, इससे सातप्रकारके हेतुओंके व्याख्यानसे वाक्यविस्तारसें विद्यार्थियोंको वाक्यजालमें उरझाना है और कुछ विशेष फल न समुझकर तीनहीं प्रकारके हेतुओंको वर्णन किया है. शेष (वाकी) चार भेदोंमें अर्थात् द्रव्य व अपेक्षाबुद्धिके नाश होनेसे परत्वके नाश होनेआदिके भेदोंमें अपेक्षाबुद्धि व द्रव्यके कर्म व संयोगसे विभाग होनेके ज्ञानमें क्षणमात्रके आगे पीछे होनेके भेदसे चारभेद और कल्पना करके सातप्रकारका भेद होना वर्णन किया है परंतु इस व्याख्यानसे कुछ फल विशेष नहीं है. मुख्य यह जानना चाहिये कि परत्व व अपरत्वके होनेमें अपेक्षाबुद्धिका होना व नाश होनेमें अपेक्षाबुद्धिका प्रथम नाश होना मुख्य कारण है और विना द्रव्य व संयोगके अपेक्षाबुद्धिका होना संभव नहीं है इससे संयोग व द्रव्यभी मुख्य हैं. अन्य भेदोंको इन्हींसे उपर कहे हुये प्रकारसे समुझ लेना चाहिये उनसे विशेष लाभ कुछ नहीं है ॥ २१ ॥

कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च ॥२२ ॥

कारणके परत्वसे व कारणके अपरत्वसे ॥ २२ ॥

परत्व व अपरत्वका कारण कालका संयोग है अर्थात् कालका संयोग परत्वका असमवायिकारण है व अपरत्वका भी असमवायिकारण है, परकाल व अपरकालके संयोगसे द्रव्यके अवस्था आदिमें परत्व व अपरत्वका व्यवहार होता है इससे यह कहा है कि कारणके अर्थात् कालके परत्वसे व अपरत्वसे, तात्पर्य यह है कि कालके संयोगके परत्वसे अन्य पदार्थोंमें परत्व व अपरत्वसे अपरत्वका व्यवहार होता है, परत्व अपरत्वका व्यवहार यह सूत्रमें शेष है, आक्षेपसे ग्राह्य है, कालका संयोग असमवायिकारण होनेका अर्थ लक्षणा या उपचारसे कहागया है, अन्यथा सूत्रके पदोंके साथ अन्वय (सम्बन्ध) नहो होसक्ता, परत्व अपरत्व आपही अपने उत्पन्न होनेके कारण नही होसके इससे परत्व व अपरत्वके उत्पन्न करनेवाले कालका संयोगके कारण होनेका अर्थ ग्रहण किया गया है ॥ २२ ॥

परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ २३ ॥

परत्व व अपरत्वमें परत्व व अपरत्वका अभाव अणुत्व व महत्त्वसे (अणुत्व व महत्त्वके समान) व्याख्यात है ॥ २३ ॥

अणुत्व व महत्वके समान व्याख्यात समझलेना कहनेसे इसमें अधिक व्याख्यान करनेकी अपेक्षा नहीं है ॥ २३ ॥

कर्मभिः कर्माणि ॥ २४ ॥

कर्मोंसे रहित कर्म हैं ॥ २४ ॥

जैसे कर्मोंसे रहित कर्म होते हैं ऐसही परत्व अपरत्वसे रहित परत्व अपरत्व हैं ॥ २४ ॥

गुणैर्गुणाः ॥ २५ ॥

गुणोंसे रहित गुण हैं वा होते हैं ॥ २५ ॥

गुण गुणोंसे रहित होते हैं अर्थात् गुणमें गुण नहीं होता इससे परत्व व अपरत्व गुणमें परत्व व अपरत्वका अभाव है ॥ २५ ॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥ २६ ॥

जिससे (जिस सम्बन्धसे) कार्य व कारणका यह प्रत्यय (ज्ञान) होता है कि इसमें यह है वह समवाय है ॥ २६ ॥

परत्व अपरत्व आदि गुणोंका मूर्तमात्रमें समवेत (समवायसंयुक्त) होना व ज्ञानसुख आदि गुणोंका आत्मामें समवेत होना कहागया इस कहनेमें शिष्योंने यह जिज्ञासा किई कि समवाय क्या है इससे यद्यपि उद्देशक्रमसे यहां

बुद्धिका वर्णन होनाथा क्रम उल्लङ्घन करके आचार्यने स वायको वर्णन किया है, यह अनुमानसे विदित होता है, कार्य व कारणशब्द सूत्रमें उपलक्षण मात्रके लिये है इससे जो कार्य व कारण नहीं है उनका भी ग्रहण करना चाहिये व समवायका लक्षण यह समुझना चाहिये कि जो कभी सम्बन्धरहित विद्यमान नहीं होते ऐसे कार्य व कारणरूप अथवा विना कार्य व कारणरूप पदार्थोंमें जिससे (जिस सम्बन्धसे) इसमें यह है अर्थात् कारण(अवयव)में कार्य (अवयवी) है अथवा इसमें (एकमें) यह (दूसरा) है ऐसा प्रत्यय होता है वह समवाय है, यथा तन्तुओंमें पट पृथिवीके अणुओंमें वा कपालोंमें घट इत्यादि तन्तु आदिमें पट आदिका सत्ता होना सम्बन्धविशेषसे विदित होता है, अन्यथा तन्तु आदिमें पट आदि होनेका प्रत्यय होना चाहिये, वा तन्तु आदिसे पट आदि उत्पन्न होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता, नित्य जब पट आदिकी उत्पत्ति होती है तब अपने कारणविशेष तन्तु आदिकोंहीसे होती है यही सम्बन्धविशेष समवाय है, ऐसही द्रव्यमें क्रिया वा गुण आकाशमें शब्द आत्मामें ज्ञान द्रव्यमें द्रव्यत्व आदि होनेमें समवाय समुझना चाहिये ऐसे सम्बन्धको संयोग नहीं कह सकते क्योंकि सम्बन्धवालोंका सम्बन्धरहित होना सिद्ध नहीं होता, जिनमें संयोग होता

है वह प्रथम संयोगरहित होते हैं. संयोग किसी एक वा दोनों वा संयोगसे उत्पन्न होता है, उक्त सम्बन्ध इस प्रकारसे उत्पन्न नहीं होता, केवल इसमें केवल आधारी व आधारभाव होता है, यह द्रव्य गुण कर्म सामान्य व विशेषसे भावके समान लक्षणभेदसे पृथक् पदार्थ है, जैसे भाव द्रव्य आदिमें उनके स्वरूपविशेषका ज्ञापक (जनानेवाला) होता है व द्रव्य आदि अपने आश्रयोंसे भिन्न ज्ञात होता है ऐसही समवाय द्रव्य आदि पांच पदार्थोंमें इसमें यह है ऐसे प्रत्ययका हेतु होनेसे द्रव्य आदिसे भिन्न पदार्थ है. संयोगके समान अनेक नहीं है, भावके समान सामान्य लिङ्ग होने व विशेष लिङ्ग न होनेसे समवाय एकही है, अर्थात् जैसे है यह प्रत्यय भावका लिङ्ग एकही समान सब पदार्थोंमें होता है, और कोई विशेषतासूचक लिङ्ग न होनेसे भाव एक है ऐसही इसमें यह है यह समवायका लिङ्ग एकही समान द्रव्य आदि पदार्थोंमें होनेसे और कोई विशेष लिङ्ग न होनेसे समवाय एकही है. अब जो यह संशय हो कि द्रव्य गुण व कर्मआदिमें द्रव्यत्व आदि विशेषणोंके साथ एकही सम्बन्ध माननेसे सब पदार्थ मिलकर एक होजायंगे तो उत्तर यह है कि, अपने अपने आधार व आधेयके नियमसे यद्यपि सबमें समवाय एकही है तथापि द्रव्यहीमें द्रव्यत्व, गुणहीमें गुणत्व, कर्महीमें कर्मत्व आदिका प्रत्यय

होता है. इसमें, यह जो समवायका निमित्तरूप ज्ञान है इसके सबमें होनेसे यह निश्चित होता है कि, सर्वत्र समवाय एक है व द्रव्यत्व गुणत्व आदिके निमित्त (कारण) जो प्रत्यय हैं उनका भेद जाननेसे प्रत्येक पदार्थमें नियम होना भी जाना जाता है, जैसे कुण्ड व दहीमें संयोग एक होनेपर भी आश्रय व आश्रयी होनेका नियम होता है ऐसही समवायके एक होनेपर भी द्रव्यत्व आदि पदार्थोंका व्यङ्ग्य व व्यञ्जक (जाननेयोग्य व जनानेवाला) होनेके शक्तिभेदसे आधार व आधेयभावका नियम है, जैसे प्रमाणसे कोई कारण विदित न होनेसे भाव नित्य कहागया है, ऐसही समवायका भी कोई कारण प्रमाणसे प्राप्त नहीं होता वा ज्ञात नहीं होता इससे नित्य है. किस वृत्तिसे समवाय द्रव्य आदि पदार्थोंमें रहता है क्योंकि संयोगगुण होनेसे द्रव्यमात्रमें आश्रित होता है इससे उसमें संयोगसंभव नहीं होता और एक होनेसे समवाय भी संभव नहीं होता, न अन्य कोई वृत्ति है इस शंकाका उत्तर यह है कि, जैसे द्रव्य गुण आदि पदार्थोंका सत्तारूप भाव पदार्थ है उसमें कोई अन्य सत्ता (भाव)का योग नहीं है अपने स्वरूपहीसे विद्यमान विदित होता है, ऐसही विभागको न प्राप्त होनेवाले (भिन्न न होनेवाले) समवायमें अन्य समवाय वा संयोगवृत्ति नहीं है इससे वह स्वात्मवृत्ति (अपनेस्वरूपही वृत्तिवाला) है,

अर्थात् स्वरूपहीसे सिद्ध है, सत्ता आदि पदार्थोंके समान अतीन्द्रिय (बाह्यइन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं) आत्मामें प्राप्त ज्ञानहीसे जानने योग्य है तिससे समवायको बुद्धिहीसे अनुमान करने व निश्चय करने योग्य समुझना चाहिये. जो यह संशय हो कि, इस भूतलमें घटका अभाव है यह प्रत्यय होनेमें घटके अभावमें भी समवाय वा अन्य सम्बन्ध होगा तो उत्तर यह है कि स्वरूपसम्बन्धहीसे घटके अभावका बोध होता है, क्योंकि समवाय नित्य सम्बन्ध है, घटके अभावके सम्बन्धका नित्य होना संभव नहीं है. समवाय माननेमें जहां घटका अभाव है वहां घट लेआने पर भी घटके अभावके बोध होनेका प्रसङ्ग होगा व अभावका अनित्यसम्बन्ध भी अङ्गीकार नहीं कियाजासक्ता. अङ्गीकार करनेमें एकही भूतलमें सहस्रवार घटके लेआने व लेजानेमें अन्य अन्य सम्बन्ध होनेमें सहस्र सम्बन्ध कल्पना करना संभव होगा यह अयुक्त है इससे घट लेजानेके समयमें जो भूतल आदि स्वरूप है वही घटके अभावका सम्बन्ध है यह अङ्गीकार करनेके योग्य है. भूतल आदिमें घट आदिके अभावका स्वरूपसम्बन्धही अङ्गीकार करनेकी आवश्यकता होनेसे अन्य अभावमें भी स्वरूपहीका सम्बन्ध होना अङ्गीकार करनेके योग्य है, क्योंकि अभाव प्रत्ययोंका एक प्रकारका सम्बन्ध अवगाही होना अनुभवसिद्ध है (अनुभवसे सिद्ध है) ॥ २६ ॥

द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः ॥ २७ ॥

द्रव्यत्व व गुणत्वका प्रतिषेध भावके समान व्याख्यात है ॥ २७ ॥

इस संशय निवारणके लिये कि समवाय जो द्रव्य वा गुण आदि पदार्थोंमें अंतर्गत होजावै तो उसको भिन्नपदार्थ कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन है? यह कहा है कि, द्रव्यत्व व गुणत्वका प्रतिषेध भावके समान व्याख्यात है, अर्थात् जैसे भाव विलक्षणबुद्धिका विषय होनेसे द्रव्यत्व व गुणत्वरहित वर्णन किया गया है ऐसही समवाय भी विलक्षणबुद्धिका विषय होनेसे द्रव्यत्व गुणत्वरहित है, द्रव्यत्व व गुणत्व उपलक्षणमात्र है, द्रव्यत्व आदिके साथ कर्मत्व आदि भी ग्रहण करना चाहिये, जैसे द्रव्यत्व आदि रहित द्रव्य आदि पदार्थोंसे भाव पृथक् है ऐसही द्रव्यत्व आदि रहित द्रव्य आदिसे समवाय पृथक् है ॥ २७ ॥

तत्वं भावेन ॥ २८ ॥

उसका एक होना भावसे व्याख्यात है ॥ २८ ॥

व्याख्यात है यह पूर्वसूत्रसे अनुवृत्तिसे ग्रहण कियाजाता है, समवायका एक होना भावके समान व्याख्यात समुझना

चाहिये अर्थात् जैसे एक भाव सर्वत्र पदार्थके विद्यमान होनेके ज्ञानका कारण होता है, ऐसही एकही समवाय सर्वत्र समवेत (समवायसंयुक्त पदार्थ) होनेके ज्ञानका कारण होता है. जैसे विशेषलिङ्गके न होनेसे अर्थात् भेदज्ञापक (जनानेवाला) लिङ्ग न होनेसे भाव एक है ऐसही विशेषलिङ्ग न होनेसे समवाय एकही है इस विषयमें भावके वर्णनमें व छब्बीसवे सूत्रके भाष्यमें जैसा पूर्वमें व्याख्यान कियागया है समुझनालेना चाहिये, जो कोई और शंका समवायके विषयमें हों या की जावें तो उसका उत्तर मुख्य यह है कि, जो ज्ञानसे या अनुभवसे सिद्ध है वह स्वीकारके योग्य है. अनुभव या प्रत्ययविरुद्ध तर्क मानने योग्य नहीं है, क्योंकि यथार्थ प्रत्ययही प्रमाणरूप है व समवाय बुद्धिहीसे निश्चय व अनुमान करने व मानने योग्य है ॥ २८ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्यारेलालात्मजवांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिप्रभुदयालुनिर्मिते सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् समाप्तश्चायं सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमाध्यायस्य प्रथमाह्निकप्रारंभः ।

द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥ १ ॥

द्रव्योंमें (द्रव्योंके वर्णनमें) ज्ञान व्याख्यान कियागया है ॥ १ ॥

आत्माके साधनके लिये पूर्वही द्वितीय अध्यायमें अन्य द्रव्योंको वर्णन व तृतीय अध्यायमें आत्मा व मन द्रव्योंको वर्णन किया है, इन द्रव्योंमें आत्मा व मनके व्याख्यानमें आत्मा व मन बुद्धिहीके द्वारा जाननेके योग्य होनेसे बुद्धिको वर्णन किया है उस पूर्वमें वर्णन कियेहुयेको इस अध्यायमें बुद्धिकी परीक्षा करनेके प्रयोजनसे स्मरण करानेके लिये यह कहा है कि, द्रव्योंमें ज्ञान व्याख्यान किया गया है अर्थात् द्रव्योंके वर्णनमें बुद्धि व्याख्यान की गई है. ज्ञानशब्द सूत्रमें बुद्धिअर्थका वाचक है, क्योंकि ज्ञान उपलब्धि बुद्धि व प्रत्यय यह पर्यायशब्द हैं अर्थात् एकही अर्थवाचक (एकही अर्थवाले) शब्द हैं जैसा की न्यायदर्शनमें कहा है बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय इति पर्यायाः सूत्रका आशय इतनाही है जो वर्णन किया गया परन्तु जिज्ञासुओंको उपयोगी जानकर कुछ अधिक वर्णन किया जाता है. ज्ञान दो प्रकारका होता है एक विद्या और दूसरा अविद्या. विद्याके चार भेद हैं प्रत्यक्ष, लैङ्गिक, स्मृति, आर्ष. जो आत्मा

मन इन्द्रिय व द्रव्य आदि पदार्थोंके सन्निकर्षसे (व्यवधानरहित सम्बन्धसे) यथार्थ ज्ञान आत्माको होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं यथा घट पट मनुष्य वृक्ष रूप आदिका देखने आदिसे ज्ञान होना प्रत्यक्ष है. लिङ्ग (चिन्ह) के देखनेसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको लैङ्गिक कहते हैं, यथा धूमलिङ्ग (चिन्ह) को देखकर अग्निके होनेका ज्ञान होना इत्यादि, इसका विशेष व्याख्यान आगे सूत्रकारने आप वर्णन किया है जो पूर्वमें देखने सुन्ने आदिसे अनुभूत होगया है उसको कालान्तरमें प्रत्यक्ष होनेसे जानलेना वा अभ्यास स्नेह भय द्वेष आदि जिसमें होगया है उसका स्वरूप अभ्यास आदि हेतुओंसे चित्तमें उदय होना स्मृति है जैसे यह वही पुरुष है जिसको मैंने अमुक समयमें प्रयागमें देखाथा इत्यादि अन्यस्नेह भय आदिसे स्मरण होने आदिके दृष्टान्त अपने चित्त वा अनुभवसे समुझलेना चाहिये. ऋषिओंको आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व धर्मविशेषसे जो इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होते ऐसे हुये होनेवाले व वर्तमानकालमें विद्यमान पदार्थोंका ज्ञान होता है वह आर्ष है यथा आत्माका ज्ञान होना व अन्य अप्रत्यक्ष पदार्थोंका ज्ञान होना. अविद्या भी चार प्रकारकी है, संशय विपर्यय स्वप्न व अनध्यवसाय यह उसके भेद हैं, जो समान धर्ममात्र प्रत्यक्ष होनेसे व विशेषका निश्चय न होनेसे ऐसा विमर्श

है उसको स्वप्न कहते हैं, वह तीन प्रकारसे होता है, संस्कारके प्रवल होनेसे धातुदोषसे व अदृष्टसे संस्कारकी प्रबलतासे जैसे कामी वा क्रोधी जिस अर्थकी चिन्ता करतेहुये सोता है संस्कारसे वैसही स्वप्नमें देखता है, धातुदोषसे जैसे वातप्रकृतिवाला वा वातदोषसंयुक्त आकाशमें उड़ना आदि देखता है, पित्तप्रकृतिवाला वा पित्तरोगवाला अग्निमें प्रवेश करना वा सोनेके पर्वत आदि देखता है, व कफप्रकृतिवाला वा कफदोपसे दूषित नदी समुद्र वरफ आदिको देखता है, अदृष्टवशसे शुभसूचक स्वप्न हांथीपर चढ़ना छत्र प्राप्त होना आदि देखता है ऐसे स्वप्नधर्म व संस्कारसे होते हैं, इसके विपरीत तेल लगाना ऊँटपर चढ़ना आदि देखना संस्कार व अधर्मसे होते हैं इत्यादि विद्यारूप ज्ञान प्रमाण व सुखरूप है व अविद्या अप्रमाणरूप दुःख फलदायक है, विशेष वर्णन इनका आगे सूत्रकारनें भी किया है॥१॥

तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे ॥ २ ॥

तिनमें आत्मा व मन प्रत्यक्ष नहीं है ॥ २ ॥

तिनमें (द्रव्योंमें) आत्मा व मन प्रत्यक्ष नहीं है अर्थात् स्थूलद्रव्योंके समान आत्मा व मन इन्द्रियग्राह्य पदार्थ नहीं हैं. चकार जो सूत्रमें है तिसका अर्थ औरका होता है, अर्थात् कहेहुयेसे अधिक ग्रहणका होता है. उससे आकाश काल दिशा वायु परमाणुओंका भी ग्रहण होता है अर्थात्

सन्निकर्षको प्राप्त हुये गुणकर्मोंमें ज्ञानकी 'उत्पत्तिका कारण द्रव्य है ॥ ४ ॥

'सन्निकर्षको प्राप्त हुये रूप आदि गुणोंमें व उत्क्षेपण आदि कर्मोंमें जो ज्ञान होता है उसमें द्रव्य कारण है. जो यह शंका हो कि कपूरके विथरेहुये सूक्ष्म अणु जब प्रत्यक्ष नहीं होते, सुगन्धमात्र प्रत्यक्ष वा विदित होता है तब गुणही बोधका कारण ज्ञात होता है, द्रव्यहीको गुण व कर्ममें ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण होना क्यों कहा है, इसका उत्तर यह है कि, यद्यपि अतिसूक्ष्म अणु होनेसे कपूर आदि द्रव्य प्रत्यक्ष न हों तथापि सुगन्ध आदिका आधार द्रव्य जो कपूर आदि है वही सुगन्ध आदिके ज्ञानके कारण होते है, क्योंकि विना द्रव्यके सुगन्ध आदिका होनाही संभव नहीं होसक्ता, ज्ञानके कारण होनेके लिये द्रव्यके प्रत्यक्ष होनेकी आवश्यकता नहीं है. शब्दगुणके ग्रहणमें वा ज्ञान होनेमें यद्यपि द्रव्यकी प्रत्यक्षता नहीं है तथापि गुण-विना द्रव्य आश्रयके नहीं होता इससे आकाशद्रव्यमें आश्रित होना अनुमान किया जाता है, व आकाशद्रव्य शब्दबोधका कारण है. शब्द आकाशका गुण होनेका प्रमाण पूर्वही वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥

सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावात्तत एव ज्ञानम् ॥ ४ ॥

सामान्यविशेषोंमें सामान्यविशेषके अभावसे उसीसे ज्ञान होता है ॥ ५ ॥

सामान्यविशेषोंमें सामान्यविशेषके अभाव होनेसे उसीसे (कहेहुये सामान्य विशेषका आश्रयरूप द्रव्यहीसे) सामान्य व विशेषका ज्ञान होता है यह सूत्रका आशय है. बुद्धिकी अपेक्षासे जो अन्य अल्पदेशव्यापककी अपेक्षा सामान्य मानाजाता है वही अन्य अधिकदेशव्यापककी (जो उससे अधिक देशमें व्यापक है उसकी) अपेक्षा विशेष माना जाता है, जिससे अधिकदेशव्यापक कोई दूसरा पदार्थ नहीं विदित होता है वह परसामान्य कहा जाता है, यथा सत्ता परसामान्य है उसकी अपेक्षा द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्व विशेष हैं व यह भी अपनेसे विशेषकी अपेक्षा सामान्य हैं, अर्थात् द्रव्यत्व जो द्रव्यमात्रका सामान्य है उसकी अपेक्षा पृथिवीत्व आदि, तथा गुणत्वकी अपेक्षा रूपत्व आदि, व कर्मत्वकी अपेक्षा उत्क्षेपणत्व आदि विशेष हैं. द्रव्यत्व गुणत्व व कर्मत्व सामान्य हैं इस प्रकारसे विचारनेमें द्रव्यत्वकी अपेक्षा पृथिवीत्व विशेष व वही घटत्व आदिकी अपेक्षा सामान्य विदित होनेसे यह शंका होती है कि वही सामान्य व वही विशेष होजानेमें सामान्यमें विशेष होनेसे कोई द्रव्य किसी विशेष सामान्य वा विशेषका आश्रय होना संभव नहीं है, जिसमें किसी सामान्य वा विशेषका होना निश्चय कियाजाय

इसके समाधानके लिये सूत्रमें यह कहा है कि, सामान्यविशेषोंमें सामान्यविशेषोंके अभावसे उसीसे (द्रव्यहीसे) ज्ञान होता है अर्थात् सामान्य व विशेषमें सामान्य विशेष माननेसे अनवस्थादोष प्राप्त होनेसे और कुछ निश्चित न होनेसे सामान्यविशेषमें सामान्यविशेषके अभावसे अर्थात् सामान्य व विशेष होना सिद्ध न होनेसे द्रव्यकारणसे सामान्य व विशेषके स्वरूपहीसे उनके परस्पर भेद होनेकी प्रतीति बुद्धिद्वारा होती है. जैसे सम्पूर्ण गौओंमें गौ होनेका सामान्य बोध होता है व गौसे भिन्न पदार्थोंमें गौका लक्षण न होनेसे गौजातिसे भिन्नमें गौका बोध नहीं होता ऐसही घट पट आदिमें जानना चाहिये. इस प्रकारसे जो सामान्य वा विशेषबुद्धिकी अपेक्षासे अंगीकार किया जाता है उस सामान्यमें अन्य सामान्य व विशेषमें अन्य विशेष नहीं होता, दूसरे न्यून व अधिक व्यापककी अपेक्षासे चाहै विशेषसामान्य व सामान्यविशेष समुझा जावे परन्तु बुद्धिकी अपेक्षासे सामान्य व विशेषका ज्ञान होनेसे सामान्य व विशेषमात्रके ज्ञानमें अन्य सामान्य व विशेष होना संभव नहीं होता, इससे सामान्य व विशेषमें सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे) द्रव्यके सन्निकर्षमें द्रव्यकारणसे सामान्यविशेषका स्वरूपहीसे ज्ञान होता है ॥ ९ ॥

सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुणकर्मसु ॥ ६ ॥

द्रव्य गुण व कर्मोंमें सामान्य व विशेषकी अपेक्षावाला ज्ञान होता है ॥ ६ ॥

ज्ञानशब्द इस सूत्रमें पूर्वसूत्रसे ग्रहण किया जाता है अर्थात् ज्ञानशब्दकी पूर्वसूत्रसे अनुवृत्ति होती है. इस संशयनिवारणके लिये कि जैसे सामान्यविशेषमें सामान्यविशेष न होनेसे विना सामान्य व विशेषकी अपेक्षा सामान्य व विशेषका ज्ञान होता है ऐसही द्रव्य व गुण व कर्मोंमें भी विना सामान्य व विशेषकी अपेक्षा ज्ञान होता है अथवा उनकी अपेक्षा होती है. यह कहा है कि द्रव्य गुण व कर्मोंमें सामान्य व विशेषकी अपेक्षावाला ज्ञान होता है अर्थात् द्रव्य गुण व कर्मोंमें जो ज्ञान होता है वह सामान्यविशेषकी अपेक्षा करता है. द्रव्य गुण कर्मोंमें द्रव्य होने, गुण होने व कर्म होनेकी विशिष्टबुद्धि होती है यह विशिष्टबुद्धि (विशेषतासहित ज्ञान) विशेष्य (द्रव्य) विशेषण (गुण विशेषका सम्बन्ध) व इन्द्रियके सन्निकर्षसे उत्पन्न होता है इससे द्रव्य गुण कर्ममें सामान्य व विशेषके अपेक्षाकी आवश्यकता होती है, जिससे सामान्यपदार्थसे यह विशेषज्ञान होता है कि यह द्रव्य है, यह गुण है, यह कर्म है, तथा यह यह अमुक द्रव्यविशेष है इत्यादि ॥ ६ ॥

द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ॥ ७ ॥

द्रव्यमें द्रव्य गुण कर्मकी अपेक्षा करनेवाला ज्ञान होता है ॥ ७ ॥

द्रव्यमें जो ज्ञान होता है वह द्रव्य गुण व कर्मकी अपेक्षा करता है अर्थात् द्रव्यके ज्ञानमें द्रव्य गुण व कर्मकी अपेक्षा होती है, जैसे घण्टावाली शुक्ल गौ चलती है वा जाती है इसमें घण्टा द्रव्य, शुक्लता गुण, चलना कर्म है, इन तीनोंसे घण्टावाली शुक्ल गौ चलते हुयेका बोध होता है, यद्यपि सदा द्रव्यमात्रके ज्ञानमें द्रव्य गुण व कर्म इन तीनोंकी अपेक्षा होना आवश्यक नहीं है परन्तु तीनोंकी भी अपेक्षा होती है, जैसे घण्टावाली चलती हुई शुक्ल गौ द्रव्यके ज्ञानमें विदित होता है ऐसही अन्यत्र समुझना चाहिये ॥७॥

गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद्गुणकर्मापेक्षं न विद्यते ॥ ८ ॥

गुणकर्मोंमे गुणकर्मोंके अभावसे गुणकर्मकी अपेक्षा करनेवाला ज्ञान नहीं होता है ॥ ८ ॥

गुणमें गुण नहीं होता व कर्ममें कर्म नहीं होता इससे गुणकर्मोंमें गुणकर्म न होनेसे गुणकर्मोंके ज्ञान होनेके लिये गुणकर्मकी अपेक्षा नहीं होती ॥ ८ ॥

संमवायिनः श्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च श्वेते बुद्धिस्ते एते कार्यकारणभूते ॥ ९ ॥

समवायि (शुक्लताका समवायि शुक्लद्रव्य) की शुक्लता (शुक्लरूप)व शुक्लताकी बुद्धि (शुक्लरूपके ज्ञान)से श्वेतमें (शुक्लरूपवान् द्रव्यमें) ज्ञान होता है (शुक्लद्रव्यमें शुक्ल होनेका ज्ञान होता है)ते यह दोनों कार्यके कारणरूप होते हैं ॥ ९ ॥

शुक्लरूपका समवायि (समवायसम्बन्धवाला) द्रव्यके प्रत्यक्ष होनेमें शुक्लता (शुक्लरूप) व शुक्लताकी बुद्धि (शुक्लरूपविशेषणका ज्ञान) यह दोनों कारण होते हैं अर्थात् कार्यरूप शुक्लद्रव्यमें शुक्ल होनेकी बुद्धि (ज्ञान)के कारण होते हैं, जैसे शुक्लरूप समवायि वा शुक्लरूपवान् शंखमें यह शुक्ल है यह ज्ञान होनेमें शुक्लता गुण व शुक्लता विशेषणका ज्ञान कारण होते हैं. आशय इस सूत्रका यह है कि, आश्रयद्रव्यमें आश्रितगुणका यथा शुक्लद्रव्यमें शुक्लरूपका समवायसम्बन्ध होनेसे गुण व गुणकी बुद्धि शुक्लता व शुक्लताबुद्धि शुक्लद्रव्यके प्रत्यक्ष होनेके कारण होनेके समान द्रव्यके ज्ञान होनेके कारण होते हैं, गुणकर्मोंका गुणकर्मोंमें न होनेसे कुछ सम्बन्ध न होनेसे गुणकर्म गुणकर्मके ज्ञानके कारण नहीं होते वा नहीं होसक्ते ॥ ९ ॥

द्रव्येष्वनितरेतरकारणः ॥ १० ॥

द्रव्योंमें जो ज्ञान होता है एक दूसरेका कारण नहीं होता ॥ १० ॥

अनेक द्रव्योंमें एक एकके पश्चात् जो अन्य अन्य द्रव्योंमें ज्ञान होता है इसमें किसी एक पूर्वद्रव्यमें जो ज्ञान होता है यह दूसरे उत्तर द्रव्यके ज्ञानका कारण नहीं होता इसी अभिप्रायको अगले सूत्रमें स्पष्ट किया है ॥ १० ॥

कारणायौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादिबुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात् ॥ ११ ॥

घट पट आदि बुद्धिओंका क्रम कारणोंके युगपत् (एकसाथ) न होनेसे व कारणोंके क्रमसे होता है, कारण व कार्यभावसे नहीं होता ॥ ११ ॥

घट व पट आदि बुद्धिओंका जो पूर्व पूर्वद्रव्योंमें होकर अपर अपर उत्तर द्रव्योंमें होनेका क्रम होता है, यह कारणकार्यभावसे नहीं होता किन्तु उन बुद्धिओंके कारण जो घट पट आदिके सन्निकर्ष आदि हैं उनके क्रमसे अर्थात्

पूर्व व अपर क्रमसे होनेसे होता है. तात्पर्य यह है कि बुद्धिके कारण सन्निकर्ष आदिके अयौगपद्यसे (एकसाथ वा एकबारगी न होनेसे) घट पट आदिकोंकी बुद्धियां एकसाथ नहीं होतीं अर्थात् कारणोंके एकसाथ नहोनेसे घट पट आदि पदार्थोंके ज्ञान एकसाथ नहीं होते अर्थात् कारणोंके क्रमअनुसार बुद्धिओंका क्रम होता है. जहां घट पटके सन्निकर्ष आदि कारण एकसाथ होते हैं वहां जो पदार्थ सन्निकृष्ट हैं उन सबको एकसाथही आलम्बन करनेवाली बुद्धि उत्पन्न होती है अर्थात् सन्निकृष्ट पदार्थसमूहका एकहीसाथ ज्ञान उत्पन्न होता है, कारणके क्रमके अभावसे कार्यके भी क्रमका अभाव होता है यह जानना चाहिये, अवान्तरभेदसे बुद्धिके अनेकप्रकारके भेद होते हैं, जैसे अनुभूति व स्मृतिभेदसे बुद्धि दोप्रकारकी होती है, अनुभूति भी प्रत्यक्ष व अनुमितिभेदसे दो प्रकारकी होती है, व प्रत्यक्ष घ्राण आदि पांच बाह्य ज्ञानइन्द्रिय व छठवें मनसे उत्पन्न होनेसे छ प्रकार होता है व सविकल्प व निर्विकल्प भेदसे दोविधका है, लौकिक व अलौकिकभेदसे भी प्रत्यक्ष दोविधका है व अनुमिति केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि व अन्वयव्यतिरेकिरूप त्रिविध (तीन प्रकारके) अनुमानसे उत्पन्न होनेसे तीन प्रकारकी है यह जाननेके योग्य होनेसे ऐसा है यह केवलान्वयि अनुमान है, व जहां भेद जनाने-

वाला हेतु हो जैसे पृथिवी गन्धवती होनेसे अन्य पदार्थोंसे भिन्न है यह केवलव्यतिरेकि है, जिससे सम्बन्धका होना व भेदका होना दोनों ज्ञात हों वह अन्वयव्यतिरेकि है, जैसे धूम होनेसे पर्वत वन्हिमान् है ऐसा अनुमान होना अन्वयव्यतिरेकि है, क्योंकि जब किसी कारणसे पर्वतमें आग लगजाती है तब पर्वत वन्हिमान् (अग्निवाला) होजाता है, और तभी धूमसे पर्वतमें अग्नि होनेका अनुमान होता है, अन्यथा नहीं होसक्ता. जो पूर्वही प्रत्यक्ष होगया अन्तःकरणमें उसकासंस्कार रहनेसे फिर कालान्तरमें जो उसका ज्ञान प्राप्त होता है (स्मरण होता है) वह स्मृति है. पूर्वसंस्कारमात्रके अधीन होनेसे स्मृति एकही प्रकारकी है, प्रमा व अप्रमा भेदसे बुद्धि दो प्रकारकी है, जैसा जो पदार्थ है उसको वैसाही यथार्थ रूपसे ज्ञान होनेको प्रमा व इसके विरुद्धको अप्रमा कहते है. संशय व निश्चय भेदसे भी बुद्धि दो प्रकारकी है, एक धर्मीमें होना व न होना परस्पर विरुद्ध दोनों प्रतीत होना एकका विशेष ज्ञान न होना संशय है और भावरूप हो अथवा अभावरूप एक प्रकारका यथार्थ ज्ञान होना निश्चय है. यथार्थ अनुभव होनेको प्रमाबुद्धि कहते हैं, प्रमाहीको प्रमाण कहते है. प्रमाण दोप्रकारका होता है, प्रत्यक्ष व अनुमान, इसका विशेषवर्णन सू-

त्कार'आपही करैगे इससे यहां अधिक वर्णन करनेकी आवश्यकता नही है ॥ ११ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मितेऽष्टमाध्यायस्य प्रथममान्हिकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारम्भः ॥

अयमेष त्वया कृतं भोजयैनमिति ० बुद्ध्यपेक्षम् ॥ १ ॥

यह वह तुमसे कियागया इसको भोजन कराओ ऐसा ज्ञान वा व्यवहार बुद्धिअपेक्ष (बुद्धिविशेषणक वा बुद्धिसम्बन्धी) होता है ॥ १ ॥

बुद्धिही जिनका विशेषण है ऐसी भी बुद्धियां होती हैं अर्थात् बुद्धिही (ज्ञानही) बुद्धिअपेक्ष (ज्ञानविशेषणसम्बन्धी) होती है, यह जनानेके लिये यह कहा है कि, यह वह तुमसे कियागया इसको भोजन कराओ ऐसा ज्ञान बुद्धिअपेक्ष होता है अर्थात् ज्ञानविशेषणक वा सम्बन्धी होता है, यह घट वह पटके प्रत्ययमें एक घट व पटका प्र-

त्यय अर्थात् ज्ञान है व घट व पटके ज्ञानमें यह होनेका ज्ञान अर्थात् प्रत्यक्षरूप ज्ञान विशेषण है. प्रत्यक्षज्ञान विशेषणसहित घट आदिमें यह घट है इत्यादि ऐसा ज्ञान होता है ऐसेही तुमसे कियागया इस ज्ञानमें तुमशब्द वक्तासे भिन्न दूसरा प्रत्यक्ष जिससे वक्ता अपने अभिप्रायको कहता है उस ज्ञानका वाचक है. इस ज्ञानमें तुमसे कियागया इस वाक्यसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह तुमके ज्ञानका विशेषण है, इसी प्रकारसे इसको भोजन कराओमें भोजन कराओ यह ज्ञान इसको इस प्रत्यक्ष ज्ञानविशेषणक है ॥ १॥

दृष्टेषु भावाददृष्टेष्वभावात् ॥ २ ॥

दृष्टोंमें भावसे अदृष्टोंमें अभावसे ॥ २ ॥

यह आदिशब्द जो पूर्वसूत्रमें कहा है उनका अन्वय (सम्बन्ध) व व्यतिरेक (भेद) जनानेके लिये यह कहा है कि, दृष्टों(प्रत्यक्षों)में भावसे (होनेसे) व अदृष्टोंमें अभावसे (न होनेसे) तात्पर्य इसका यह है कि, यह वह तुमसे किया गया उसको भोजन कराओ ऐसी बुद्धियां अर्थात् यह शब्दसे निकट विद्यमान वस्तुकी बुद्धि तुमसे यह शब्द कहनेसे निकट विद्यमान कर्ताकी बुद्धि कियागया इससे कर्मकी बुद्धि इत्यादि जो ऐसी बुद्धी होतीं हैं वह दृष्ट (प्रत्यक्ष) विषयोंमें होती हैं, अदृष्ट विषयोंमें ऐसी बुद्धियोंका अभाव है, अभाव होनेसे अदृष्टोंमें (अप्रत्यक्ष पदार्थोंमें) यह वह

तुम इत्यादिका व्यवहार नहीं होता, अथवा दृष्टोंमें अर्थात् ज्ञात पदार्थोंमें यह आदि पदोंका प्रयोग योग्य होनेसे होता है, अदृष्टों(अज्ञात पदार्थों)में यह आदिकोंके प्रयोगके अभावसे अर्थात् संभव न होने वा न होसकनेसे नहीं होता ॥२॥

अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु ॥ ३ ॥

अर्थ यह शब्द द्रव्य गुण कर्मोंमें ॥ ३ ॥

अर्थ यह शब्द द्रव्य गुण कर्मोंमें कहा जाता है अर्थात् अर्थशब्द द्रव्य गुण व कर्मका वाचक है ॥ ३ ॥

द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् ॥ ४ ॥

द्रव्योंमें पंचात्मक होना प्रतिषेध कियागया है ४

इन्द्रियां क्या हैं उनकी प्रकृति क्या है कौन अर्थ ग्राहक हैं यह वर्णन करनेके मनोरथसे इस सूत्रमें भूमिकाकी रचना करते हैं. द्रव्योंमें कहनेसे द्रव्यनिरूपण सूत्रोंमें कहनेका अभिप्राय समुझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि, द्रव्यनिरूपणके सूत्रोंमें द्रव्यका पंचात्मक होना (पंचभूतप्रकृतिक होना) निषेध कियागया है, अर्थात् पंचभूतप्रकृतिक होना नहीं मानागया इससे शरीर आदि कोई द्रव्य पंचभूत प्रकृतिक नहीं है, एकही एकप्रकृतिक (प्रकृतिवाले) सब शरीर व इन्द्रिय होते हैं अर्थात् रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द

पांचों गुण पांचभूतोंके एकमें विशेष नहीं होते, विशेष एकही होता है, जिसका गुणविशेष होता है उसी एककी उसमें विशेषता मानीजाती है ॥ ४ ॥

भूयस्त्वाद्गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः ॥ ५ ॥

अधिकतासे व गन्धवत्त्वसे गन्धका ज्ञान जिससे होता है उस नासिका इन्द्रियमें पृथिवी प्रकृति है ५

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध गुणोंमेंसे गन्धमात्रका जिससे ज्ञान होता है वा जो गन्धमात्रको ग्रहण करती है उस नासिकाइन्द्रियमें प्रकृति (उपादानकारण) पृथिवी है, यह अनुमान होता है, किस हेतुसे पृथिवी प्रकृति है यह अनुमान होता है. अधिकतासे अर्थात् जल आदि अणुओंकी विशेषतारहित पृथिवीके अणुविशेषोंसे उत्पन्न होनेसे पृथिवीकी अधिकता वा प्रधानता होनेसे व गन्धवत्त्वसे (गन्धवान् होना यह ज्ञात होनेसे) अर्थात् पृथिवीका कार्यरूप होने व गन्धग्राहकतासे उसमें गन्धवान् होना विदित होनेसे वा सिद्ध होनेसे, भाव इसका यह है कि रस आदिको ग्रहण न करके गन्धमात्रही ग्रहण करनेसे नासिका इन्द्रियमें प्रकृति (उपादानकारण) पृथिवी है यह अनुमान होता

---

१ गन्धस्य ज्ञानं प्रत्यक्षं यस्मात् तद्गन्धज्ञानं घ्राणेन्द्रियं तस्मिन् पृथिवी प्रकृतिरिति।

है, क्योंकि यद्यपि गन्धसे अधिक अन्य भी गुण पृथिवीमें हैं परन्तु गन्ध विशेषगुण पृथिवीमात्रका है. जो जल आदि अन्य भूतोंमें नहीं है, केवल इसी पृथिवीके विशेषगुणको नासिका ग्रहण करती है इससे पृथिवी ही प्रकृति है, एक पृथिवीही प्रकृति होनेसे नासिका एकप्रकृतिक है, अधिकता वा प्रधानता इसलिये कहा है कि, जो पृथिवीकी अधिकता न होती तौ जैसे शरीर व अन्य इन्द्रिय भूतोंसे उत्पन्न है ऐसेही नासिका भी है, उसमें गन्धमात्रका विशेषज्ञान नहोना चाहिये. पृथिवीके गुण गन्धमात्रका प्रत्यय(ज्ञान) उसमें होनेसे पृथिवीकी अधिकता वा प्रधानता होनेका प्रमाण होता है ऐसही जिस इन्द्रियद्रव्यमें जिस कारणद्रव्यकी प्रधानता है, उसीके गुणविशेषको वह ग्रहण करती है, जैसा कि अगले सूत्रमें वर्णन किया है व गन्धवान् होना इस अभिप्रायसे कहा है कि नासिका पृथिवीका कार्य है, कारणका गुण कार्यमें होता है व गन्धवान् होनेहीसे अपने गन्धगुणको ग्रहण करती है इससे पृथिवीसे उत्पन्न कार्यरूप गन्धधर्मवान् होने व गन्धग्राहक होनेसे गन्धवान् है ॥ ५ ॥

तथापस्तेजोवायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात्

तैसेही जल तेज वायु रस रूप स्पर्शविशेष होनेसे ॥ ६ ॥

जैसे पृथिवीको घ्राण (नासिका)में प्रकृति कहा है अ-

र्थात् घ्राणका उपादानकारण पृथिवीको कहा है ऐसेही रसरूप व स्पर्शविशेष होनेसे रसना (जिह्वा) चक्षु (नेत्र) त्वच (चमडा वा खाल) इन्द्रियोंकी प्रकृति जल तेज वायु हैं, रसना चक्षु त्वच इन्द्रियोंकी प्रकृति हैं इतना सूत्रमें शेष है, इसका आक्षेप करलेना चाहिये. रसनाइन्द्रिय जलके विशेष गुण रसमात्रके ग्राहक होनेसे जलप्रकृतिक चक्षु इन्द्रिय तेजके गुणविशेष रूपमात्रग्राहक होनेसे तेज-प्रकृतिक व त्वचा वायुके विशेषगुण स्पर्शमात्रग्राहक होनेसे वायुप्रकृतिक है, ऐसही कर्ण इन्द्रियको आकाशके गुण-विशेष शब्दमात्रके ग्राहक होनेसे आकाशप्रकृतिक जानना चाहिये. यद्यपि इन्द्रिय करणरूप है कर्ता नहीं है, तथापि ग्राहक होना उपचारसे वा गौण अर्थसे कहागया है ॥ ६ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमरथ्यारेलालात्मजवांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिप्रभुदयालुनिर्मितेऽष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ समाप्तश्चायमष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमाध्यायस्य प्रथमाह्निकप्रारम्भः ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् ॥१॥

क्रिया व गुणका कथन वा व्यवहार न होनेसे प्रागसत् है (पूर्वमें नहीं है) ॥ १ ॥

कार्यशब्द सूत्रमें शेष है, क्रिया व गुणका व्यवहार न होनेसे उत्पत्तिसे पहिले कार्य नहीं है यह सूत्रका अर्थ व भाव है. घट पट आदि अपनी उत्पत्तिसे पहिले नहीं हैं इससे प्रागसत् हैं, जो पहिले न हो उसको प्रागसत् कहते हैं, प्रागसत् होनेमें यह हेतु वर्णन किया है. क्रिया व गुणका व्यवहार न होनेसे तात्पर्य यह है कि, जैसे उत्पन्न घटमें क्रियाका व्यवहार होता है कि घट रक्खा है घट है इत्यादि, व गुणका व्यवहार होता है कि घट श्याम है अरुण है छोटा है बडा है ऐसा क्रिया व गुणका व्यवहार घटकी उत्पत्तिसे पहिले नहीं होता, इससे घटका प्रागसत् होना (पहिले सत् न होना) विदित होता है. उत्पत्तिसे पहिले न होना साधारण प्रत्यक्ष होनेसे सब जानते हैं, इसके कहनेकी क्या आवश्यकता थी, उत्तर यह है कि, जो कार्यको उत्पन्न होनेसे पहिले भी सत् मानते हैं व यह कहते हैं कि जिस कारणसे कार्य प्रकट होता है उस कारणमें उसका सत्ता प्रकट वा उत्पन्न होनेसे पहिले भी रहता है, जो कारणमें सत्ता न हो तो उससे उत्पन्न भी न होसके, जैसे तन्तुमें घटका व मृत्तिकामें पटका सत्ता न होनेसे तन्तुसे घट, मृत्तिकासे पट उत्पन्न नहीं होता, तन्तुसे पट व मृत्तिकासे घट

उत्पन्न होनेसे यह अनुमान होता है कि, तन्तु व मृत्तिका कारणमें सत्ता रहनेहीसे अपने अपने कारणसे प्रकट होते हैं, उनके मतके खण्डनके लिये कहा है कि कार्यका नित्य मानना युक्त नहीं है, क्योंकि उत्पत्तिसे पहिले जो कार्य सत् होता तो पहिले भी उसमें क्रिया व गुणका व्यवहार होता, न होनेसे उसका प्रागसत् होना विदित होता है, तथा कुम्हारको घट बनानेका प्रयत्न व व्यापार करते व पट बनानेवालेके व्यापारको देखके यह प्रत्यय होनेसे कि नहीं है इससे इसके बनानेकी व होनेकी इच्छा की जाती है, क्योंकि जो होता है उसकी इच्छा नहीं की जाती और इस क्रियाके व्यवहारसे कि अब घट बनेगा व होनेवाला होनेकी प्रतीति होनेसे प्रागभाव (पहिले न होना) सिद्ध होता है, यद्यपि कारण सत् होता है व कारणसे उत्पन्न होनेका नियम सत्य है परन्तु कार्यका नित्य व सत् मानना यथार्थ नहीं है ॥१॥

अब अन्यभेद कार्यके अभाव होनेके वर्णन करते हैं ॥

सदसत् ॥ २ ॥

सत् असत् होजाता है ॥ २ ॥

सत् असत् हो जाता है अर्थात् जो है वह नहीं रहता नष्ट हो जाता है, जैसे पूर्व सूत्रमें जो नहीं था उसका वर्णन किया है ऐसेही इस सूत्रमें जो है व नहीं रहता यह वर्णन किया है, जैसे जो घट है वह मुद्गर आदिके घातसे फूटगया

व नष्ट होगया तो जो सत् था वह असत् होगया, इस सत्के असत् होजानेको अर्थात् सत्के अभाव होजानेको प्रध्वंसाभाव कहते हैं ॥ २ ॥

असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥ ३ ॥

क्रिया व गुणके व्यवहारके अभावसे (न होनेसे) असत्से सत् भिन्न पदार्थ है ॥ ३ ॥

सत्शब्द सूत्रमें शेष है इससे सत्शब्दसहित भाषामें सूत्रका अनुवाद किया गया है. भाव सूत्रका यह है कि, जो यह तर्क किया जाय कि घट आदि ही अवस्थाविशेषमें नाशके वा अभावके व्यवहारको प्रकट करते हैं उनका अभाव उनसे भिन्नकोई पदार्थ नहीं है तो उत्तर यह है कि, असत्से सत् भिन्न है, भिन्न होनेका हेतु यह है कि, सत्में क्रिया व गुणका व्यवहार होता है, असत्में नहीं होता इससे अर्थात् असत्में क्रिया व गुणका व्यवहार न होनेसे असत्से सत् भिन्न है यह प्रमाण होता है, क्यों कि ध्वंस (नाश) होनेके पश्चात् घट वर्तमान है, पट वर्तमान है, घट वा पट रूपवान् हैं इत्यादिका व्यवहार नहीं होता, इस क्रिया व गुणके व्यवहार होने व नहोने वैधर्म्यसे सत् असत्से भिन्न है ॥ ३ ॥

सच्चासत् ॥ ४ ॥

सत् असत् भी होता है ॥ ४ ॥

पूर्वमें जो पदार्थ पहिले असत् रहता है उत्पन्न होनेपर सत् होता है, और जो प्रथम सत् रहता है, नाश होनेपर असत् होजाता है, वर्णन करके तीसरे प्रकारके असत् होनेको इस सूत्रमें वर्णन किया है कि, सत् असत् भी होता है अर्थात् कोई पदार्थ किसी पदार्थमें होनेसे उसमें सत् व किसीमें न होनेसे उसमें असत् होना विदित होता है, जैसे रूप तेज जल पृथिवीमें सत् है, वायु आकाश आदिमें न होनेसे असत् है ऐसेही अन्य गुण कर्म आदिमें जानना चाहिये. इस सत्के असत् होनेका ज्ञान वर्तमान ही कालमें विचारनेसे परस्पर विरुद्धधर्मवाले पदार्थोंमें होता है. कोई इस सूत्रका व्याख्यान इस प्रकारसे करते हैं कि पदार्थ अपने स्वरूप व धर्ममें सत् व अन्य पदार्थके रूप व धर्मसे असत् होते हैं, जैसे घट अपने घटत्वधर्म व रूपसे सत् व पटरूपसे असत् है ऐसही पट निजधर्मरूपसे सत् व घटरूपसे असत् है व इस प्रकारसे एक दूसरेमें परस्परके अभाव होनेको अन्योन्याभाव कहते हैं ॥ ४ ॥

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ ५ ॥

जो इससे और असत् है वह असत् ह ॥ ५ ॥

अथ चौथा अभावका भेद जिसको अत्यन्ताभाव कहते है उसको इस सूत्रमें वर्णन किया है कि, जो इससे अर्थात् पूर्वोक्त अभावत्रयसे (कहे हुये तीन प्रकारके अभावसे) अन्य असत् है वह असत् है अर्थात् वह अत्यन्त असत् है, जिसका त्रिकालमें कभी सत् होना संभव नहीं है इससे वह असत् ही है. तात्पर्य यह है कि प्रागभाव भूतकालमात्रका अभाव प्रध्वंसाभाव भविष्यत्मात्रका अभाव है. प्रागभावमें पश्चात् व प्रध्वंसाभावमें पूर्वकालमें सत्का सम्बन्ध होता है. अन्योन्याभाव अपने स्वरूपसे सत् व अन्यके स्वरूपसे असत् होना है इससे उसमें सत् व असत् दोनोंका सम्बन्ध रहता है, प्रागभाव आदि तीनों अभावोंमें सत्का सम्बन्ध है व नित्य नहीं हैं, इन तीनोंसे अधिक तीनों कालमें जो नित्य अभावही रूपसे सिद्ध हो वही असत् है अर्थात् वह सर्वथा असत् अत्यन्ताभाव है. यथा आत्माका नाशत्व (नाश होना) गुणमें गुणत्व (श्यामरूप आदिमें अरुणआदि रूप व स्पर्श आदि होना) पृथिवीमें जलत्व जलमें तेजस्त्व तेजमें पृथिवीत्वका होना अत्यन्ताभाव है. क्योंकि, आत्माका नाश होना आदि यह प्रत्यक्ष व अनुमानसे तीनों कालमें सिद्ध नहीं होते इससे ऐसा न होना अत्यन्ताभाव है ऐसही जो कहीं सत् है वह जिसमें नहीं है न होना संभव है उसमें कभी न होनाही अत्यन्ताभाव समझा जाता है ॥ ९ ॥

असदिति भूतप्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ॥ ६ ॥

असत् है (विद्यमान नहीं है) यह प्रत्यक्ष होना भूतप्रत्यक्षके अभावसे व भूतस्मृतिसे विरोधीके प्रत्यक्षके समान है ॥ ६ ॥

विरोधीशब्दका अर्थ यहां प्रतियोगीका है, प्रतियोगी उसको कहते है जिसका अभाव होता है. अभावोंका वर्णन करके अब इस सूत्रमें प्रथम प्रध्वंसाभावके प्रत्यक्ष होनेको वर्णन करते है कि असत् है ऐसा जो प्रत्यक्षाकार ज्ञान होता है जैसे यह प्रत्यक्ष होता है कि घट नष्ट होगया, घट फूट गया, घट नहीं रहा, इससे असत् है अर्थात् अब नहीं है यह ज्ञान विरोधीके प्रत्यक्ष होनेके समान है, अर्थात् जैसे विरोधी (प्रतियोगी) घट आदिका स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है ऐसही घटके नाश हो जानेका भी अर्थात् प्रध्वंसाभाव (नष्ट होजानेपर वस्तुका अभाव)का भी प्रत्यक्ष होता है, यह प्रत्यक्ष दोकारणों (हेतुओं)से होता है एक भूत (नष्टहुये)के प्रत्यक्षके अभावसे अर्थात् जो उत्पन्न होकर नष्ट होगया ऐसे घट आदिके प्रत्यक्ष न होनेसे, क्योंकि जो पूर्वमें प्रत्यक्ष होता था अब नष्ट होनेपर नहीं प्रत्यक्ष होता तब यह ज्ञानसे सिद्ध होता है कि घट नहीं है, क्योंकि जो होता तो जैसे

पृथिवी प्रत्यक्ष होती है (देखपरती है) ऐसही घट भी प्रत्यक्ष होता (देखपरता), प्रत्यक्ष नहीं होता इससे नहीं है, दूसरे भूतकी (प्रतियोगी घट आदिकी) स्मृतिसे प्रतियोगी घटके (नष्ट होनेसे जिस घटका अभाव है उसके) अभावका प्रत्यक्ष होता है ॥ ६ ॥

तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥ ७ ॥

तथा अभावमें व भावप्रत्यक्ष होनेसे ॥ ७ ॥

यद्यपि अभावशब्द सामान्य (अभावमात्र) वाची है तथापि यहां सूत्रमें प्रकरणसे विशेषप्रागभावपर है, तथा अर्थात् प्रध्वंसाभावके समान व भावप्रत्यक्ष होनेसे प्रागभावमें प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है. अभिप्राय यह है कि, यथा प्रध्वंसाभावमें इन्द्रियके सन्निकर्ष व इन्द्रियोंके विषयके प्राप्त न होने व प्रतियोगीके ज्ञानसे प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, तथा (तैसेही) प्रागभावमें भी होता है व इस संशयनिवारणके लिये कि प्रागभाव तो अनादि है इससे घट आदिकोंके उत्पन्न होनेसे पूर्वमें भी प्रत्यक्ष होना चाहिये. पूर्वमें क्यों प्रत्यक्ष नहीं होता, सूत्रमें भावप्रत्यक्ष होनेसे यह कहा है अर्थात् प्रागभाव भाव (उत्पन्न हुवा द्रव्य वा पदार्थ) प्रत्यक्ष होनेहीसे प्रत्यक्ष वा विदित होता है. जब सत्घट प्रत्यक्ष होता है तब उसके पूर्वके न होनेका ज्ञान होता है इससे भाव प्रत्यक्ष होनेसे प्रागभावका प्रत्यक्ष होना सिद्ध होता

है. विना भावप्रत्यक्ष हुये प्रागभावका प्रत्यक्ष होना संभव न होनेसे उत्पत्तिसे पूर्वकालमें प्रत्यक्ष नहीं होता यह हेतु है ७

एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः ८

इसीसे (इसी प्रकारसे) घटका न होना गौका न होना धर्मका न होना व्याख्यात है (व्याख्यात समुझना चाहिये) ॥ ८ ॥

इसी प्रकारसे अर्थात् प्रागभाव प्रध्वंसाभावके प्रत्यक्ष होनेके समान इन्द्रियसम्बन्धविशेषणता व प्रतियोगीका प्रत्यक्ष न होना व प्रतियोगीका ज्ञान होना अन्योन्याभावके भी प्रत्यक्ष होनेके कारण व्याख्यात हैं, अर्थात् जैसे प्रागभाव व प्रध्वंसाभावके प्रत्यक्ष होनेके यह कारण हैं ऐसही अन्योन्याभावके भी प्रत्यक्षके कारण हैं, यथा पटमें इन्द्रियसम्बन्ध होने व पटसे भिन्न पदार्थ घटप्रतियोगीके प्रत्यक्ष न होने व घटप्रतियोगीके ज्ञान होनेसे पट घट नहीं है, तथा घटमें इन्द्रियका सन्निकर्ष होने व पटप्रतियोगी प्रत्यक्ष न होने पटप्रतियोगीके ज्ञान होनेसे घट पट नहीं है यह प्रत्यक्ष होता है, ऐसही अन्यत्र जानना चाहिये. यथा अश्व है गौ नहीं है, धर्म है अधर्म नहीं है, तथा अधर्म है धर्म नहीं है, इत्यादि इस प्रकारसे दो वा अनेक पदार्थोंमें एक दूसरेकी अपेक्षा एक दूसरेमें परस्परके न होनेको अन्यान्योभाव कहते हैं ॥ ८ ॥

अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ॥ ९ ॥

नहीं हुवा नहीं है यह अनर्थान्तर है अर्थात् एकही अर्थवाचक है ॥ ९ ॥

था, अब नहीं है ऐसा ज्ञान प्रध्वंसाभावको (किसी पदार्थके नाश होनेसे हुये अभावको) आलम्बन (आश्रय) करता है अर्थात् नाश होनेपर होता है. सूत्रमें जो था अब नहीं है उसके लिये नहीं है यह शब्द नहीं लिखा, नहीं है मात्र लिखा है, इससे नहीं है शब्द अत्यन्ताभावके लिये जो सामान्यसे सदा नहीं है इस भावसे कहा है ऐसी प्रतीति होती है. नहीं हुवा जो कहा है यह उत्पत्ति व विनाश न होनेको आलम्बन करता है, क्योंकि जो उत्पन्न नहीं होता वह नष्ट भी नहीं होता इससे नहीं हुवा यह शब्द उत्पत्तिविनाशरहित होनेको द्योतन करता है (जनाता है). एकही अर्थवाचक होना (एकही अर्थवाले होना) भी उसी अत्यन्ताभावहीके अभिप्रायसे कहा है कि, नहीं हुवा व नहीं है यह एकही अर्थके वाचक है अर्थात् भावविशेषसे एकही अत्यन्ताभावही अर्थके वाचक है. नहीं हैको अत्यन्ताभववाचक कहना इस प्रकारसे समुझना चाहिये. जैसे अग्निमें शीतलत्व नहीं है, जलमें पृथिवीत्व नहीं है, पृथिवीमें जलत्व नहीं है, क्योंकि जो अग्निमें शीतलत्व व जलमें पृथिवीत्व होता तो प्रत्यक्ष होता, कभी प्रत्यक्ष नहीं होता इससे नहीं है

ऐसा नहीं है कहना सदाके लिये कहना है, क्योंकि अग्निमें शीतलत्व जलमें पृथिवीत्व नहीं है इत्यादि कहनेका अभिप्राय यही है कि सदा नहीं है अर्थात् नहीं हुवा न है न होगा इसी भाव व तर्कको धारण करके इस सूत्रमें नहीं है कहना समुझना चाहिये. इससे इस सूत्रमें अत्यन्ताभावको जानाया है यह सिद्ध होता है. जो वस्तु जिसमें न कभी हुई न है न होगी उसका उसमें अत्यन्ताभाव होना मानाजाता है इसीसे यह अत्यन्ताभाव त्रैकालिक (तीनों कालमें होनेवाला) कहा जाता है ॥ ९ ॥

• नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥ १० ॥

घरमें घट नहीं है यह सत् घटका व घरके संसर्ग (सम्बन्ध वा संयोग)का प्रतिषेध है ॥ १० ॥

यह कहनेमें कि घरमें घट नहीं है, घरके व घटके संसर्गमात्रका प्रतिषेध (नहीं करना) है, अभाव नहीं है, क्योंकि घरमें नहीं है यह कहनेहीसे कहनेवालेका अभिप्राय यह समुझा जाता है कि, अन्यत्र है इससे घरमात्रमें न होनेमे अन्यत्र होनेसे अत्यन्ताभाव नहीं होसक्ता, प्रागभाव प्रध्वंसाभाव भी नहीं होसक्ते, क्योंकि यह दोनों समवायिकारणमात्रमें होते हैं, घरमें व घटमें समवायिकारणसम्बन्ध नहीं

है. अन्योन्याभाव माननेका भी कोई हेतु नहीं है. घट द्रव्य सत् (विद्यमानही) है इससे घरके संसर्गमात्रका प्रतिषेध है. संसर्गके प्रतिषेधसे संसर्गहीका अभाव है, घटका अभव नहीं है ॥ १० ॥

आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षः ॥ ११ ॥

आत्मामें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे आत्माका प्रत्यक्षज्ञान होता है ॥ ११ ॥

भावअभावविषयक लौकिक प्रत्यक्षको वर्णन करके अब योगियोंके प्रत्यक्षको निरूपण करते हैं. योगी दो प्रकारके होते हैं एक समाहितान्तःकरण अर्थात् जिनका चित्त एकाग्र हो ध्यानमें लग्न होता है उनको युक्त कहते हैं, दूसरे असमाहितान्तःकरण अर्थात् जिनका चित्त एकाग्रताको नहीं प्राप्त होता उनको वियुक्त कहते हैं. युक्तके आत्मामें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे आत्माके प्रत्यक्ष होनेका ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् युक्त योगी साक्षात् करनेके योग्य वस्तुमें मनको लगाकर ध्यान करते हुये अपने आत्माको व परके आत्माको प्रत्यक्ष करते हैं. यद्यपि कभी अन्य मनुष्योंको भी आत्माका ज्ञान होता है तथापि अविद्यासे तिरस्कारको प्राप्त होनेसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता.

यथार्थ ज्ञान युक्त योगिओंहींको होता है इससे योगसे उत्पन्न आत्मा व मनके सन्निकर्षविशेषसे आत्माका प्रत्यक्ष होना कहा है ॥ ११ ॥

तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ॥ १२ ॥

तैसही अन्यद्रव्योंमें प्रत्यक्ष होता है (प्रत्यक्ष ज्ञान होता है) ॥ १२ ॥

तैसही अर्थात् जैसे आत्मा व मनके संयोगविशेषसे आत्माका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है तैसही आत्मा व मनके संयोगविशेषसे अणुद्रव्य (सूक्ष्मद्रव्य) मन वायु काल आकाश दिशाओंका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है. द्रव्यशब्द उपलक्षणमात्र है ऐसही गुण कर्म आदि सब पदार्थोंका प्रत्यक्ष होना जानना चाहिये ॥ १२ ॥

असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च ॥ १३ ॥

जो असमाहितान्तःकरण (समाधिरहित अन्तःकरणवियुक्त योगी) हैं उनको व जो उपसंहृतसमाधि (समाधिको सिद्ध किये हुये सिद्धियोंको प्राप्त) हैं उनको आत्मा आदि द्रव्य आदि पदार्थोंका प्रत्यक्ष होता है ॥ १३ ॥

जिन योगिओंको समाधि नहीं प्राप्त है समाधि लाभका साधन कररहे है उनको युञ्जान वा वियुक्त कहते है, व जिनका चित्त समाधिको प्राप्त है उनको युक्त कहते हैं. युञ्जान व युक्त दोनोंको आत्मा आदि प्रत्यक्ष होते हैं परंतु भेद यह है कि युञ्जानको ध्यान करनेकी अपेक्षा होती है, ध्यानसे प्रत्यक्ष होते हैं, युक्तको विना ध्यानही प्रत्यक्ष होतेहैं. आत्मा आदिके प्रत्यक्ष होनेका अर्थ पूर्व सूत्रोंमें कथित होनेके सम्बन्धसे ग्रहण किया जाता है, अन्यथा सूत्रवाक्यका अर्थ पूरा नहीं होसक्ता इससे आत्मा आदि शब्दोंका आक्षेप करके सूत्रका अर्थ अनुवादमें रक्खा है ॥१३॥

तत्समवायात्कर्मगुणेषु ॥ १४ ॥

उसके समवायसे कर्म व गुणोंमें प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ॥ १४ ॥

उसके समवायसे अर्थात् पूर्वोक्त (पूर्वमें कहाहुवा) योगधर्मसे उत्पन्न आत्मा व मनसंयोगसमवायसे युक्त व युञ्जानको कर्म व गुणोंमें प्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होता है. कर्म व गुणका कहना उपलक्षणमात्र है, ऐसही सामान्य आदिमें जानना चाहिये ॥ १४ ॥

आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥ १५ ॥

आत्माके समवायसे आत्माके गुणोंमें ॥ १५ ॥

मनसंयुक्त आत्माके समवायसम्बन्धसे आत्माके गुण सुख बुद्धि स्मृति अनुभव आदिमें प्रत्यक्षज्ञान होता है अर्थात् आत्माके गुण सुख आदिका प्रत्यक्ष होता है, यह वर्णन सामान्यसे साधरण प्रत्यक्ष होनेके विषयमें है, योगज (योगसे उत्पन्न) ज्ञान सम्बन्धी नहीं है ॥ १५ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीप्रभुदयालुनिर्मिते नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीयाह्निकप्रारंभः ॥

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥ १ ॥

इसका यह कार्य है यह कारण है यह संयोगि है यह विरोधि है यह समवायि है ऐसा ज्ञान होना लैङ्गिक ज्ञान है ॥ १ ॥

पूर्वआह्निकमें प्रत्यक्षका वर्णन किया है, अब लैङ्गिकज्ञान (अनुमान)का वर्णन करते हैं. प्रमाणरूप ज्ञान दो

प्रकारका होता है प्रत्यक्ष व लैङ्गिक. अक्षनाम इन्द्रियका है, जो इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षमात्रसे ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं, प्रत्यक्षका वर्णन पूर्वआन्हिकमें होगया है. लिङ्गसे (चिन्हद्वारा) जो ज्ञान होता है उसको लैङ्गिक कहते है. लैङ्गिकहीको आनुमानिक कहते है, जो कालविशेष व देशविशेषमें अनुमेयके साथ हो (जिसका अनुमान कियाजाय उस पदार्थके साथ हो) व अनुमेय धर्मवान्में (पक्षमें) व अन्यत्र भी सामान्यसे सब देशमें ज्ञात हो व कभी विना अनुमेयके न हो ऐसे साथ होनेके नियमके ज्ञानसे जिसके द्वारा अप्रत्यक्ष अनुमेयका अनुमान कियाजाय उसको लिङ्ग कहते है, इसका निदर्शन यह है. जैसे जहां धूम होता है, वहां अग्नि होती है, विना अग्निके धूम नहीं होता यह ज्ञात होनेसे अनुमान करनेवाला अनुमानके लिये धूम व अग्निके सम्बन्ध स्मरण करनेके समयमें संदेहरहित धूम होना देखनेसे व अग्निके साथ होनेके नियमके स्मरणसे अग्निके होनेका निश्चय करता है इसप्रकारसे धूमलिङ्ग आदिसे अग्नि आदिका जो ज्ञान होता है वह लैङ्गिकज्ञान वा प्रमाण है. जो इसके विरुद्ध हो संदिग्ध (संदेहयुक्त हो) यथार्थ नियमका सम्बन्ध जिसमें न हो ऐसा लिङ्ग अनुमेयके ज्ञानका कारण नहीं होता, न लिङ्ग मानाजाता है. यथार्थ लिङ्गसे जो लैङ्गिकज्ञान होता है उसको इस सूत्रमें वर्णन

किया है कि, इसका यह कार्य है. यह कारण है, यह संयोगि है, यह विरोधि है, यह समवायि है, ऐसा ज्ञान होना लैङ्गिकज्ञान.है इसका यह कहना सम्बन्धसूचक है, अर्थात् इस कारणका यह कार्य है, इस कार्यका यह कारण है इत्यादि सम्बन्धज्ञानसे कार्य आदि लिङ्गको देखके जिसके साथ उसका सम्बन्ध है ऐसे कारण आदि अप्रत्यक्ष सम्बन्धीका जानना लैङ्गिकज्ञान है. साधारण जिज्ञासुओंके समुझनेके लिये महात्मा सूत्रकारने यह लक्षणव्याप्ति वा लिङ्गका वर्णन करदिया है कि किसी प्रकारके सम्बन्धसे जहां इसका यह सम्बन्धी है इस सम्बन्धनियमके ज्ञानसे लिङ्गद्वारा उसके सम्बन्धीका ज्ञान हो वह लैङ्गिक ज्ञान है व प्रत्यक्षसे भिन्न उपमान आदि प्रमाणोंको इसीके अन्तर्गत करदिया है, इस सूत्रमें उपलक्षणमात्रके लिये इसका यह कार्य है इत्यादि कार्यआदिसे अनुमान करनेको वर्णन किया है, कार्य आदि जिन लिङ्गोंसे सूत्रमें अनुमान करनेको सूचित किया है उनके उदाहरण यह है, कार्यलिङ्गसे जैसे धूम आदि देखकर अग्नि आदि कारणका अनुमान करना कि अग्निकारणका यह कार्य है, इससे इसका कारण अग्नि यहां है, कारणसे जैसे बहिरेको भेरी व दण्डके संयोगविशेषसे शब्द होनेका अनुमान होता है. उपरकी वृष्टिको देखकर नदीकी वृद्धिका अनुमान होता है, जलसे पूर्ण नदी आ-

दिसे नहर खोदतेहुये देखकर जल निकालने व खनेहुये नहरसे जल वहने वा जानेका अनुमान होता है इत्यादि कार्यकारणसम्बन्ध एक है वह दो प्रकारसे इस् हेतुसे वर्णन कियागया है कि, कहीं कार्यसे कारणका अनुमान होता है व कहीं कारणसे कार्यका होता है, संयोगिसे जैसे शरीरको देखकर त्वच इन्द्रियका अनुमान विरोधिसे जैसे फुफकार छोडते फूलते क्रोधितसर्पको देखकर झाडीकी ओट (आड)में नकुल (न्योरा)के होनेका अनुमान व समवायिसें जैसे जलकी गरमीसे तेजका अनुमान होता है १

अस्येदं कार्यकारणसम्बन्धश्चावयवाद्भवति ॥ २ ॥

इसका यह व कार्यकारणका सम्बन्ध अवयवसे होता है ॥ २ ॥

इसका यह अर्थात् इस एकका दूसरेमें यह सम्बन्ध है ऐसा वोध व कार्यकारणसम्बन्धका बोध अवयवसे होता है यह सूत्रका अर्थ है. कार्य आदि लिङ्गसे अनुमान होना जो कहा है उसमें यह शङ्कानिवारणके लिये कि, कार्य आदि लिङ्गोंसे चन्द्रमाके उदयसे समुद्रनजलकी वृद्धिका, जलकी स्वच्छतासे अगस्त्यके उदय होनेका, कुमुदके विकाश वा फूलनेसे चन्द्रमाके उदय होने आदिका अनुमान

नहीं होसक्ता, इससे (अनुमानमात्रमें व्यापक न होनेसे) यह परिसङ्ख्यान (सङ्ख्याकथन) अनैकान्तिक (व्यापक न होना दोषयुक्त) है, इस सूत्रमें यह कहा है कि, इसका यह व कार्यकारणसम्बन्ध अवयवसे होता है, भाव इसका यह है कि, इसका यह कहना ऐसे सम्बन्धमात्रका प्रयोजक होता है, जैसे इस धूम आदि साधनका यह अग्नि आदि साध्य है अथवा इस व्यापक अग्नि आदिका यह व्याप्य धूम आदि है इससे व्याप्तिरूप सम्बन्धग्रहणमात्रसे प्रयोजन है, व्याप्तिग्रहणही अनुमानका हेतु है, कार्यकारणभाव आदि माननेकी आवश्यकता नहीं है, कार्यकारण आदि उपलक्षणमात्रके लिये है, इयत्ता (इसनेही) समुझनेके लिये नहीं कहा, अब यह शङ्का होसक्ती है कि, पूर्वसूत्रमें कार्यकारण आदि सम्बन्धका वर्णन वृथा किया है इसके समाधानके लिये सूत्रमें कार्यकारणसम्बन्ध भी कहा है, चकार जो सूत्रमें है वह कार्यकारणसम्बन्धसे अधिक सम्बन्धोंका सूचक है, सम्बन्धका किस हेतुसे उपन्यास (स्थापन) होता है इसके उत्तरके लिये यह कहा है. अवयवसे (एकदेशसे) अर्थात् उदाहरणमात्रसे कार्यकारणसम्बन्ध वा अन्य सम्बन्धका उपन्यास होता है. उदाहरणको अवयव क्यों कहा है व अवयवशब्दसे उदाहरणका अर्थ कैसे ग्रहण कियाजाता है, इसका विवरण यह है कि अनु-

मान दो विधका होता है, एक स्वार्थ (अपनेलिये), दूसरा परार्थ (परके लिये), स्वार्थ अनुमान वह है जो अपनेको अपनेही व्याप्ति व पक्षधर्मताके विचारनेसे होता है व.परार्थ अनुमान वह है जो परको कहेहुये न्यायवाक्यसे उत्पन्न व्याप्ति व पक्षधर्मताके ज्ञानसे होता है; यह ऐसही है ऐसा साधन जिस अर्थका कियाजाता है, जहांतक उसकी सिद्धि शब्दसमूहमें समाप्त हो वह न्यायवाक्य है उस समूहकी अपेक्षा उसके अन्तर्गत पांच अवयव होते हैं, प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमन जिस अर्थको जिस धर्मसहित सिद्ध करनेका मनोरथ है उसको उसधर्मसहित कहना प्रतिज्ञा है. यथा शब्दका अनित्य होना प्रतिपादन करनेके अभिप्रायसे उसको अनित्यताधर्मसहित ऐसा कहना कि, शब्द अनित्य है यह प्रतिज्ञा है १ उदाहरणमें साधर्म्यसे (समानधर्म होनेसे) वा वैधर्म्यसे (विरुद्धधर्म होनेसे) साध्यधर्मका साधन (जानना) हेतु है, यथा यह कहना उत्पत्तिधर्मक होनेसे (उत्पन्न होनेसे) अर्थात् उत्पत्तिधर्मक (उत्पन्न होनेवाले) सब अनित्य देखे जाते हैं, शब्द उत्पत्तिधर्मक है इससे, यह साधर्म्यसे हेतु है और यही इस प्रकारसे कहनेसे वैधर्म्यसे हेतु होता है, यथा शब्द अनित्य है, इस प्रतिज्ञाकी सिद्धिके लिये साध्यका साधन यह कहना कि उत्पत्तिधर्मक होनेसे, क्योंकि जो उत्पत्तिधर्मक नहीं

होते वह नित्य होते हैं नित्यके विरुद्ध होनेसे इत्यादि २ साध्यके साधर्म्यसे (साध्यके समानधर्म होनेसे) उस समानधर्मवालेका दृष्टान्त अथवा साध्यके विरुद्धधर्म होनेसे विरुद्धधर्मवाले पदार्थका दृष्टान्त उदाहरण है, समानधर्मसे उदाहरण यथा यह कहना जैसे उत्पत्तिधर्मक (उत्पन्न होनेवाली) स्थाली आदि अनित्य है, विरुद्धधर्ममें उदाहरण जैसे यह कहना जो उत्पत्तिधर्मक नहीं होते है यह नित्य होते है, जैसे आत्मा आदि ३ उदाहरणके साथ मिलाकर यह उदाहरणके समान है अर्थात् वैसाही है अथवा वैसा नहीं है यह कहना उपनय है, यथा स्थालीही (बटुवाही)के समान शब्द है अथवा जैसे आत्मा है वैसा शब्द नहीं है इत्यादि ४ जैसा उदाहरणके साथ मिलानेसे सिद्ध हो उसको सिद्धान्तके लिये हेतुके साथ प्रतिज्ञाको फिर कहना निगमन है, जैसे यह कहना तिससे (उत्पत्तिधर्मक होनेसे) शब्द अनित्य है, अथवा तिससे (आत्माआदिके समान उत्पत्तिधर्मरहित नित्य न होनेसे) शब्द अनित्य है ५ अब एकत्र क्रमसे पांचों अवयवयुक्त न्यायवाक्यका उदाहरण साधर्म्यसे उपर कहेहुयेके अनुसार यह हुवा शब्द अनित्य है (यह प्रतिज्ञा है) १ उत्पत्तिधर्मक होनेसे २ यह हेतु है, उत्पत्तिधर्मक स्थालीआदि द्रव्य अनित्य होते हैं ३ यह उदाहरण है, ऐसही उत्पत्तिधर्मकशब्द है ४ यह उपनय है

तिससे (उत्पत्तिधर्मक होने) शब्द अनित्य है यह निगमन है५ वैधर्म्यसे उदाहरण यह है, यथा शब्द अनित्य है १ उत्पत्तिधर्मक होनेसे २ उत्पत्तिधर्मरहित आत्मा आदि नित्य हैं वा नित्यविदित हैं ३ वैसा (आत्मा आदिके समान) उत्पत्तिधर्मरहित शब्द नहीं है ४ तिससे उत्पत्तिधर्मक होनेसे शब्द अनित्य है ५ न्यायदर्शनमें इन पांच अवयवोंको इन नामोंसे वर्णन किया है, प्रतिज्ञा छोडकर हेतु आदिके अन्य नाम भी हैं अर्थात् हेतुको अपदेश, उदाहरणको निदर्शन, उपनयको अनुसंधान, व निगमनको प्रत्याम्नाय कहते हैं, इन अवयवोंके अभिप्रायसे वा इनमेंसे अवयवविशेषसे, (उदाहरणसे) ज्ञान होना विज्ञापन (जनाने)के लिये यह कहा है कि इसका यह व सम्बन्धका ज्ञान अवयवसे होता है ॥ २ ॥

एतेन शाब्दं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥

इससे (इसके समान) शाब्द (शब्दसे हुवा) ज्ञान व्याख्यात है ॥ ४ ॥

इसके समान अर्थात् उक्त लैङ्गिकज्ञानके समान शाब्दज्ञान व्याख्यात है, इसका तात्पर्य यह है कि जैसे लैङ्गिकप्रमाणमें व्याप्ति पक्षधर्मताकी अपेक्षा है ऐसही शाब्द प्रमाणमें हैं, शाब्दज्ञान वा प्रमाणमें व्याप्ति यह है कि जितने पदार्थ व्यक्ति वा जातिमें शब्दविशेषका संकेत है उतनेमें उसकी

व्याप्ति है, जैसे गौजातिमें गौशब्दकी धूम व अग्निके समान व्याप्ति है क्योंकि पूर्वसूत्रमें कहेहुये अनुसार इस गौशब्दका यह गौव्यक्ति वा जाति वाच्य है ऐसा सम्बन्ध गौशब्द व अर्थमें विदित होजानेपर धूम व अग्निके समान व्याप्ति होनेका प्रत्यय होता है, इस व्याप्तिज्ञानसें मनुष्य गौ लावो यह कहनेसे शब्द व पदार्थका सम्बन्धरूप व्याप्तिको स्मरण करके गौशब्दसे गौ अर्थ वा द्रव्यको जानकर गौको ले आता है. शब्दलिङ्गसे गौ पदार्थका ज्ञान होनेसे शाब्दज्ञानभी लैङ्गिक है अर्थात् लैङ्गिकके अन्तर्गत है इससे लैङ्गिकही है ४

हेतुरपदेशो लिङ्गं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ॥ ४ ॥

हेतु, अपदेश, लिङ्ग, प्रमाण, करण यह एकही अर्थवाले हैं अर्थात् इनके अर्थमें भेद नहीं है ॥४ ॥

अपदेशशब्द यद्यपि परिभाषासे हेत्वाभासमें कहाजाता है परन्तु हेत्वाभाससे अनुमान नहीं होसक्ता है इससे भ्रमनिवारणके लिये कि, यथार्थ हेतुवाचक है. हेतु अपदेश लिङ्ग प्रमाण व करणको एक अर्थवाचक होना कहा है अर्थात् यह शब्द एकलिङ्गही अर्थके बोधक वा वाचक हैं ॥ ५ ॥

अस्येदंबुद्ध्यपेक्षितत्वात् ॥ ९ ॥

इसका यह इसबुद्धिकी अपेक्षासंयुक्त होनेसे ९

इस सूत्रका भावार्थ वा फलितार्थ अनुवादमें रक्खा है, संस्कृतशब्दके समान अर्थ व्यक्त करनेके लिये शब्द भाषामें ज्ञात नहीं हुवा, नीचे टिपणीमें संस्कृत जाननेवाले जिज्ञासुओंके लिये संस्कृतमें विशेष व्याख्यान लिखदिया है, उपमान आदिभी लैङ्गिक (अनुमान) ही है, वा अनुमानहीके अन्तर्भाव हैं यह प्रतिपादन करनेके लिये इस सूत्रमें यह कहा है कि, इसका अर्थात् व्यापक साध्यका यह साधन व्याप्य है, इस बुद्धिकी अर्थात् इसका यह ऐसे सम्बन्धरूप व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षा संयुक्त होनेसे अर्थात् उपमान अर्थापत्तिसंभव ऐतिह्य इसका यह ऐसे सम्बन्धबुद्धिकी अपेक्षासंयुक्त या सहित होनेसे अनुमान हैं अर्थात् साध्य साधनके सम्बन्ध (सहचार वा व्याप्ति) ज्ञानसे अनुमान होता

१ सस्कृतेनास्य सूत्रस्य वाक्यार्थोऽनेन प्रकारेणावधार्यः । अस्य साध्यस्येदं साधनमिति बुद्धेरपेक्षा जाता येषां तेऽस्येदंबुद्ध्यपेक्षितास्तेषां भावस्तत्त्वमित्यस्येदंबुद्ध्यपेक्षितत्व तस्मादस्येदंबुद्ध्यपेक्षितत्वात् बुद्ध्यपेक्षितः शब्दोऽत्र सूत्रे 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इत्यनेन सूत्रेण तद्धितोक्त इतच्प्रत्ययान्तो ज्ञातव्यः । तारकितं नभः पुष्पितो वृक्षः पण्डितो ब्राह्मण इत्यादिवत् अस्येदमिति सम्बन्धरूपा व्याप्तिबुद्धिर्दर्शनसापेक्षत्वाद्वाऽस्येदंज्ञानापेक्षासम्यन्धित्वात् इति तु फलितार्थः । कुतः येषां वा यस्येति षष्ठीविभक्तेर्मतुबर्थप्रकरणोक्तत्वाच्च सम्बन्धार्थस्य सामान्यतो ग्रहण भवति ।

है इसका यह (सम्बन्ध) है ऐसे सम्बन्ध वा व्याप्ति ज्ञानकी अपेक्षासंयुक्त उपमान आदि होनेसे अनुमानहींके अन्तर्भाव हैं, उपमान आदि लैङ्गिक (अनुमान) है यह सूत्रमें शेष है, आक्षेपसे ग्राह्य हैं. सम्बन्ध (व्याप्ति) बुद्धिकी अपेक्षासहित उपमानसे ज्ञान होनेका दृष्टान्त यह है, जैसे कोई मनुष्य जिसने एकवार प्रथम गवय (नीलगाव)को गौके समान देखा है और जानलिया है कि इसको गवय कहते हैं उसको कालान्तरमें गवय नामसे गवयजातिका सम्बन्ध स्मरणसे ज्ञान होना अथवा गवयके रूपको देखकर इसको गवय कहते हैं सम्बन्ध स्मरणसे यह बोध होना लैङ्गिक (अनुमान) है अर्थात् गौके समान धर्मवाले शरीर लिङ्गसे गवय शब्दसम्बन्धी होनेसे सम्बन्धरूप व्याप्तिस्मरणसे गवयनामका ज्ञान होनेसे अथवा गवयशब्दलिङ्गसे व्याप्तिस्मरणसे गवयका ज्ञान होनेसे लैङ्गिक है ऐसही गौसदृश गवयको सुनकर कहीं गवयको देखकर समान होनेके लिङ्ग व्याप्तिद्वारा यह गवय है ऐसा ज्ञान होनेसे गवयका ज्ञान होना लैङ्गिक है, अर्थापत्तिको जो भिन्न मानते हैं यह भी भिन्न नहीं हैं, लैङ्गिकही है, यथा -यह कहनेमेंकि देवदत्त घरमें नहीं है, एकदेशमात्रमें होनेका निषेध करनेसे देवदत्तके अस्तित्व-सम्बन्ध (व्याप्ति) लिङ्गसे अन्य देशमें देवदत्तके होनेका अ-

नुमान होता है इससे लैङ्गिक है अर्थात् जिस देश वा स्थानमें निपध कियागया उसके संसर्गमात्रका निपेध है, देवदत्तके होनेका निपेध न होनेसे अस्तित्व व्याप्तिद्वारा अन्यत्र होनेका अनुमान होता है, तथा देवदत्त जो शरीरसे पुष्ट है उसको यह सुनकर कि देवदत्त दिनको भोजन नहीं करता, शरीरकी पुष्टता देखकर भोजन करनेका अनुमान होता है, क्योंकि पुष्टता व भोजनमें व्याप्यव्यापकसम्बन्ध है, विना भोजनके पुष्टता अर्थात् पीनता (मोटाई) होना असंभव है इस व्याप्तिज्ञानसे भोजन करनेका अनुमान होता है, परंतु दिनके भोजनका निषेध होनेसे रात्रिका भोजन सिद्ध होता है, पुष्टतालिङ्गसे सम्बन्ध (व्याप्ति) स्मरणसे भोजन करनेका ज्ञान होनेसे लैङ्गिक है ऐसही संभवभी व्याप्तिज्ञान अधीन होनेसे अनुमानहींके अन्तर्गत है, क्योंकि जिसमें जो गुण वा धर्म होनेका सहचार (साथ होना) वा सम्बन्ध है उसीमें उसका होना संभव मानाजाता है, यथा सहस्रमें सौका होना ब्राह्मणमें विद्याका होना आदि यदि संभवमें व्याप्तिकी अपेक्षा न मानीजाय तो प्रमाण ही नहीं होसक्ता और जो पूर्वजानेहुये सम्बन्धसे कि विना सौके सहस्र नहीं होसक्ता, सहस्रमें सौका होना आदि व्याप्तिज्ञान स्मरणसे ज्ञात होता है तो अनुमानके अन्तर्भाव मानना युक्त है, ऐतिह्य भी शब्दरूप होनेसे अनुमान है

क्योंकि, जिस अर्थमें जिस शब्दके संकेत वा सम्बन्धका ज्ञान पूर्वमें होगया है उस व्याप्तिस्मरणसे शब्दसे अर्थ वा अर्थके प्रत्यक्ष होनेसे उसके शब्द (नाम)का ज्ञान होता है, इसका विशेष वर्णन पूर्वही होगया है, अनुपलब्धिको जो एक भिन्नप्रमाण मानते हैं यह भी यथार्थ नहीं है, क्योंकि अनुपलब्धिस्थलमें (जहां अनुपलब्धि होती है) इन्द्रियसम्बधविशेषणतासे अर्थात् इन्द्रियद्वारा इन्द्रिय व स्थलके सम्बन्धहीसे ज्ञान होनेसे प्रत्यक्षही होता है, कोई अन्य कारण न होनेसे अन्य प्रमाण मानना युक्त नहीं है॥५॥

आत्ममनसोः संयोगविशेषात्संस्काराच्च स्मृतिः ॥ ६ ॥

आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होती है ॥ ६ ॥

स्मरण करनेकी इच्छासे मनको एकाग्र करनेसे अभ्यास करनेसे लिङ्ग (व्यापकसम्बन्धी व्याप्यधर्म)से चिन्हविशेषसे सम्बन्धज्ञानसे सादृश्यसे (समानधर्म प्रत्यक्ष होनेसे) वियोगसे विरोधसे व जो अन्य स्मृति उत्पन्न करनेके कारण है उन कारणोंके प्राप्त होनेसे आत्मा व मनका संयोगविशेष होता है ऐसे संयोगविशेषसे व निमित्तकारणसंस्कारसे (पूर्वअनुभूत हुयेका ज्ञान अन्तःकरणमें रहनेसे) स्मृ-

ति उत्पन्न होती है, इससे सूत्रमें कहा है कि आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होती है (स्मृति उत्पन्न होती है), स्मृति यथार्थ व अयथार्थ दो प्रकारकी होती है, यथा दशवर्षपहिले जिस देवदत्तको देखा था वर्तमानकालमें देखकर पहिचानलेना कि यह वही देवदत्त है इत्यादि जो जैसा है उसके वैसाही पूर्वअनुभूत ज्ञानसे जानलेना यथार्थ स्मृति है, अन्धकारमें रस्सीमें सर्पका भ्रम होना पूर्व सर्पज्ञान हुये संस्कारसे स्मृतिरूप होता है अर्थात् रस्सीमें सर्पकी स्मृति होती है, क्योंकि जिसको पूर्वमें सर्पका ज्ञान न हुवा हो उसको रस्सीमें सर्पका ज्ञान नहीं होसक्ता इससे स्मृतिकारणसे भ्रम होता है यह सर्पकी स्मृति अयथार्थस्मृति है ॥ ६ ॥

तथा स्वप्नः ॥ ७ ॥

तैसही स्वप्न होता है ॥ ७ ॥

जैसे आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होती है तैसही आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्वप्न होता है, वाह्यइन्द्रियोंके शान्त व्यापाररहित होजानेपर (जाग्रत् अवस्थान रहनेपर) इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान अनेक पदार्थोंका हुवा है उन पदार्थोंके ज्ञानके संस्कारसे भ्रमसहित वा भ्रमरहित आत्मा व मनके संयोगसे जो मानस (मनद्वारा हुवा) अनुभव वा ज्ञान आत्माको होता है उसको स्वप्न कहते हैं,

स्वप्न तीनप्रकारका होता है, एक शीघ्रही (जल्दीही) संस्कारके अधिकता वा प्रबलताविशेषसे होता है, जैसे कामी कामवश व क्रोधी क्रोधवश हो जिस विषयको अपने मनमें चिन्तन करते या मनोरथ करते सोता है उसमें मन लग्न रहनेसे उसका स्वप्न वही वा उसके समान अन्य विषय प्रत्यक्ष होता है; यथा कामीका स्वप्नमें कोई स्त्रीविशेष वा अन्य कोई जिसका स्मरण प्रथम नहीं किया था देखना, क्रोधीका किसी शत्रुके साथ लडाई होना देखना अथवा कर्ण अर्जुनकी लडाई सुनकर चित्तमें स्मरण रहनेसे स्वप्नमें कर्ण अर्जुनकी लडाई देखना, इत्यादि ऐसही अन्य विषयमें समुझना चाहिये. दूसरे वात पित्त कफ दोषसे होता है, वातदोषसे आकाशका उडना पृथिवीका घूमना व्याघ्र आदिके भयसे भागना देखाई देता है, पित्तदोष अधिक होनेसे अग्निमें प्रवेश करना ज्वाला लिपटना सुवर्णका पर्वत बिजुलीकी चमक दिशादाह आदिका होना देखपरता है, कफदोषके प्रबल होनेसे समुद्रमें पैरना नदीमें स्नान करना जलधाराकी वर्षा होना चांदीके पर्वत आदि देखनेमें आते हैं, तीसरे अदृष्टवशसे होता है अर्थात् इस जन्म व जन्मान्तरमें जो अनुभूत ज्ञान है उनका संस्कार अन्तःकरणमें रहनेसे संस्कारसे मनमें प्रत्यक्ष होता है वह दोप्रकारका होता है, एक शुभसूचक दूसरा अशुभसूचक, शुभसूचकधर्मसे होता है जैसे हाथीका चढना

पर्वतका चढना छत्रका लगाना खीर खाना राजाके दर्शन होना आदि अधर्मसे अशुभसूचक होता है, जैसे तेलमें नहाना कुंवामें गिरना ऊंटमें चढना कीचडमें फसना अपना विवाह देखना आदि, यद्यपि आकाशका उडना अग्निका प्रवेश करना आदि वात पित्त कफ दोषोंसे वर्णन किया है तथापि अग्निप्रवेश आदि व सुवर्णपर्वत आदि देखनेमें दुःख व सुख होनेसे जन्मजन्मान्तरके धर्मअधर्मोंके संस्कारका भी सम्बन्ध मानना चाहिये ॥ ७ ॥

स्वप्नान्तिकम् ॥ ८ ॥

तैसेही स्वप्नके मध्यमें हुवा ज्ञान ॥ ८ ॥

तथाशब्दकी पूर्वसूत्रसे अनुवृत्ति होती है इससे तथाशब्दसहित सूत्रका अर्थ तैसेही स्वप्नके मध्यमें हुवा ज्ञान यह अनुवादमें लिखागया है, तैसेही अर्थात् स्वप्नके समान स्वप्नके मध्यमें जो ज्ञान होता है वह भी आत्मा व मनके संयोगविशेष व संस्कारसे होता है, स्वप्नज्ञानमें व स्वप्नके मध्यमें हुये ज्ञानमें विशेषता यह है कि, स्वप्न पूर्व अनुभवसे उत्पन्न संस्कारसे होता है, और स्वप्नमध्यमें हुवा ज्ञान उसी कालमें उत्पन्न अनुभवसे उत्पन्न हुये संस्कारसे होता है, जैसे प्रयागमें किसी नवीन मनुष्यसे स्वप्नमें भेट हुई जिससे पहिले कभी भेट होनेका स्मरण नहीं होता और

जब काशीमें गये तब फिर उससे भेट होनेपर यह वही है जो प्रयागमें मिला था स्वप्नमें जानना आदि ॥ ८ ॥

धर्माच्च ॥ ९ ॥

धर्मसे व अधर्मसे ॥ ९ ॥

चकार जो सूत्रमें है वह धर्मसे अधिक अधर्मके समुच्चयका सूचक है उससे अधर्मका भी ग्रहण होता है, भाव यह है कि स्वप्न व स्वप्नान्तिकज्ञान धर्म व अधर्मसे होते हैं, जिस स्वप्न व स्वप्नान्तिकमें दुःख व भय होता है वह अधर्मसे जिससे सुख उत्कृष्टताका अनुभव होता है वह धर्मसे समुझना चाहिये, स्वप्न व स्वप्नान्तिक ज्ञान होने व सुख दुःख होनेके कारण इस जन्म व जन्मान्तरके धर्म व अधर्मक होते है, विना धर्मके सुख व विना अधर्मके दुःख नहीं होता है इससे जाग्रत्में हो या स्वप्नमें धर्म व अधर्महीकारणसे सुख दुःख होता है, स्वप्नका धर्म व अधर्मसे होना पूर्वमें भी वर्णन करदियागया है ॥ ९ ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या १०॥

इन्द्रियोंके दोषसे व संस्कारके दोषसे अविद्या होती है ॥ १० ॥

ज्ञानके अन्य भेद वर्णन करते हैं, ज्ञान प्रमारूप (यथार्थ ज्ञान) व अप्रमारूप (मिथ्याज्ञान) होनेसे दोप्रका-

रका होता है, प्रमाज्ञानको विद्या अप्रमाको अविद्या कहते हैं, प्रथम अविद्याके कारण इस सूत्रमें वर्णन किया है कि, अविद्याके कारण इन्द्रियोंके दोष व संस्कारदोष हैं अर्थात् जो इन्द्रियोंमें दोष वा विकार होनेसे व संस्कारदोष होनेसे भ्रमरूप मिथ्याज्ञान होता है वह अविद्या है, यथा नेत्रमें पित्तजन्य दोष (रोग) होनेसे शुक्लरूपका पीतरूप प्रत्यक्ष होना अतिदूर होनेके कारणसे यथार्थ प्रत्यक्ष न होना सीपमें चांदीका ज्ञान होना आदि अविद्या है १०

तद्दुष्टं ज्ञानम् ॥ ११ ॥

वह दुष्ट ज्ञान है ॥ ११ ॥

वह अर्थात् उक्त अविद्या दुष्टज्ञान है, अविद्याज्ञान चार प्रकारका होता है संशय (संदेहयुक्तज्ञान), विपर्यय (मिथ्याज्ञान), अर्थात् जो नहीं है उसमें वह होनेका ज्ञान होना, स्वप्न व प्रत्यवसाय (पदार्थका बोध न होना कि क्या है) इन चारों प्रकारमें सत्य व निश्चयरूपज्ञान न होनेसे अविद्या दुष्ट है इनका विशेष व्याख्यान पूर्वही लिखदिया गया है ॥ ११ ॥

अदुष्टं विद्या ॥ १२ ॥

जो दुष्टज्ञान नहीं है वह विद्या है ॥ १२ ॥

जो दुष्टज्ञान नहीं ·निर्दोषइन्द्रिय व सत् संस्कारसे स॰

त्यप्रमाणरूपज्ञान होता है वह विद्या है विद्या प्रत्यक्ष व लैङ्गिक (अनुमान) भेदसे दोप्रकारकी है प्रत्यक्ष व लैङ्गिकका व्याख्यान पूर्वही होआया है ॥ १२ ॥

आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः ॥ १३ ॥

आर्ष (ऋषिओंका ज्ञान) व सिद्धदर्शन (सिद्धोंका ज्ञान) धर्मोंसे होता है ॥ १३ ॥

ऋषिओंका ज्ञान व सिद्धोंका ज्ञान विशेषधर्मोंसे उत्पन्न यथार्थही होता है, धर्मोंसे होना कहनेका आशय यह है कि अविद्या व भ्रमका कारण अधर्म है, अधर्मका ऋषिओं व सिद्धोंमें अभाव होता है, अर्थात् वह अधर्मसे सर्वथा रहित होते हैं, अधर्मके अभाव होनेसे उनमें अविद्या नहीं होती इससे यथार्थ प्रमारूप सत्यज्ञान ऋषिओं व योगिओंमें होता है, योगप्रभावसे अतिदूरदेशके व परोक्षपदार्थका भी ज्ञान उनको समीप रक्खेहुये प्रत्यक्षके समान होता है१३

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमरप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालुनिर्मिते नवमाध्याये द्वितीयमाह्निकम् ॥ समाप्तश्चायं नवमोऽध्यायः

अथ दशमाध्यायस्य प्रथमाह्निकप्रारंभः ।

इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ॥ १ ॥

इष्ट (जिनकी इच्छा कीजाय) व अनिष्ट (जिनकी इच्छा न कीजाय) कारणोंके विशेषसे (भेदसे) व विरोधसे सुख व दुःख दोनोंकी भिन्नता है १

कारणभेदसे आत्माके गुणोंमें भेद होनेका दशमअध्यायमें वर्णन है उनमेंसे प्रथम इस सूत्रमें सुख व दुःखका भेद वर्णन किया है कि, सुख व दुःख परस्पर भिन्न हैं, भिन्न होनेके हेतुमें यह कहाहै कि, इष्ट व अनिष्टकारणोंके विशेष होनेसे, इष्ट वहहैं जिसकी इच्छा कीजाय अर्थात् जिसकी इच्छा हो, जैसे माला चन्दन स्त्री अच्छे स्वादिष्टपदार्थ आदि, अनिष्ट वह हैं जिसकी इच्छा न कीजाय किन्तु इच्छाके विरुद्ध उसमें द्वेष होवै, जैसे सर्प कांटा आदि इस कारणोंके विशेषसे (भेदसे) कार्य सुख दुःखमें भी भेद अवश्य होना चाहिये, इससे सुख दुःखमें भेद होना सिद्ध होताहै, क्योंकि कारणके विजातीय होनेसे कारणके अधीन कार्यका विजातीय होना आवश्यक है, व अन्य हेतुभेद सिद्ध करनेके लिये यह कहा है, विरोधसे अर्थात् सुख व

दुःखमें परस्पर विरोध है, क्योंकि एक आत्मामें एक कालमें कभी सुख व दुःखका अनुभव एकसाथ नहीं होता, अथवा विरोधशब्दसे कार्यभेद होनेसे अभिप्राय है, जैसे नेत्र मुख आदिकी प्रसन्नता आदि सुखसे होनेसे सुखके कार्य हैं, व दीनता मुखकी मलिनता आदि दुःखसे होनेसे दुःखके कार्य हैं इससे कार्यमें भेद होनेसे भी सुख व दुःखका भिन्न होना सिद्ध होताहै अर्थात् इष्ट व अनिष्ट कारणोंके भेदसे व विरोधसे जैसे ऊपर वर्णन किया गया है, सुख व दुःख भिन्न पदार्थ हैं इससे जो सुखका अभावही दुःख है ऐसा मानते हैं, यह मानना यथार्थ नहीं है, उक्त हेतुओंसे भेद होना सिद्ध होता है ॥ १ ॥

संशयनिर्णयान्तराभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः ॥ २ ॥

संशय व निर्णयके अन्तर्गत न होना भी ज्ञानसे भिन्न होनेमें हेतु है ॥ २ ॥

संशय व निर्णयके अन्तर्गत न होना ज्ञानसे सुख व दुःखके भिन्न होनेमें हेतु है, सुख व दुःखकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे होती है, तात्पर्य यह कहनेका यह है कि, कोई सुख दुःखको ज्ञानहीका भेद मानते हैं, ज्ञानसे भिन्न पदार्थ नहीं मानते उनका मत यथार्थ नहीं है, सुख व दुःख ज्ञा-

नसे भिन्न हैं, सुख व दुःखका संशय व निर्णयके अन्तर्गत न होना सुख व दुःखके ज्ञानसे भिन्न होनेमें हेतु है, क्योंकि ज्ञान संशय व निर्णय भेदसे दो प्रकारका होता है व सुख व दुःखमें संशय व निर्णयका सम्बन्ध नहीं है, संशय व निर्णयसे भिन्न हैं इससे ज्ञानसे भिन्न हैं ॥ २ ॥

तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् ॥३॥

उनकी (उक्त संशय व निर्णयकी) उत्पत्ति प्रत्यक्ष व अनुमानसे होती है ॥ ३ ॥

संशय व निर्णयकी उत्पत्ति प्रत्यक्ष व अनुमानसे होती है, सुख व दुःख न प्रत्यक्ष सामग्रीसे उत्पन्न होते हैं, न अनुमानसे उत्पन्न होते हैं इससे ज्ञानसे भिन्न हैं. सुख चारविधका होता है, वैषयिक, मानोरथिक, आभिमानिक, आभ्यासिक, जो विषयसम्बन्धी हो उसको वैषयिक, जो मनोरथ सम्बन्धी हो उसको मानोरथिक, अभिमानसम्बन्धीको आभिमानिक, अभ्याससम्बन्धीको आभ्यासिक कहते हैं. मानोरथिक आदि तीन इन्द्रिय सन्निकर्षसे उत्पन्न नहीं है वा नहीं होते, केवल वैषयिक इन्द्रियके विषय व इन्द्रिय सन्निकर्षसे होता है, वैषयिकमें जो यह शङ्का हो कि विषय व इन्द्रियोंके सन्निकर्षसे उत्पन्न होता है इससे ज्ञान है तो यह युक्त नहीं है क्योंकि कार्यकी सामग्रीका एक देशसम्बन्ध कार्यके सजातीय होनेको सिद्ध नहीं करता अन्यथा

काल व दिशाका सबमें साधारण कारणरूप सम्बन्ध होनेसे सब कार्यांका एक जातिके पदार्थ हो जाना चाहिये अर्थात् सजातीय हो जाना चाहिये परन्तु जैसे एक काल व दिशाके सम्बन्ध होनेसे अनेक जातिके कार्यपदार्थ सजातीय व एक नहीं हैं ऐसही विषयजन्य सुख व दुःख व ज्ञान एक नहीं है सुख व दुःख एकदेश वा अंशमें विषयसे होते हैं अन्यमें नहीं अर्थात् मानोरथिक आदि विषय प्रत्यक्ष होनेसे उत्पन्न नहीं होते यथा कोई परदेशमें प्राप्त पुत्र होनेका मनोरथ करता है व मनोरथके अनुकूल जो अपने घरमें पुत्र उत्पन्न होना सुनता है व उससे उसको सुख होताहै वह न प्रत्यक्षसे होता है न अनुमानसे दोनोंसे विलक्षण कारणसे होता है, यद्यपि पुत्र उत्पन्न हुवा यह सुनकर शब्दलिङ्गसे पुत्र होनेका ज्ञान लैङ्गिक है परन्तु सुखका प्रत्यय पुत्र होनेके प्रत्यय (ज्ञान)से पृथक् है, पुत्र होना सुख नहीं है दो पृथक् पदार्थ हैं, पुत्र होना शब्दका सम्बन्ध (व्याप्ति) पुत्र उत्पत्ति अर्थके साथ है सुखके साथ नहीं है संशय व निर्णय प्रत्यक्ष व लैङ्गिकही (अनुमानही) कारणसे उत्पन्न होते हैं इससे संशय व निर्णयरूप ज्ञानसे सुख व दुःख भिन्न हैं ॥ २ ॥

१ प्रत्यक्षसे यहां बाह्यइन्द्रियसन्निकर्षसे उत्पन्न ज्ञानमात्रका ग्रहण है मानसिक प्रत्यक्षका ग्रहण नहीं है ॥

अभूदित्यपि ॥ ४ ॥

हुवा यह भी ॥ ४ ॥

हुवा अर्थात् हो गये पदार्थका जो ज्ञान है यह भी ज्ञान व सुख दुःखके भेदका ज्ञापक (जनानेवाला) वा हेतु है यह सूत्रका आशय है हुवा ऐसा ज्ञान कहनेका प्रयोजन यह है कि ज्ञानमें भूतकालका सम्बन्ध रहता है, सुख व दुःखमें भूतकालका सम्बन्ध नहीं होता भूत (हुवा) सुख वा दुःख वर्तमानकालमें नहीं होता, ज्ञानमें स्मृतिवृत्तिसे भूतकालका सम्बन्ध रहता है यथा कल्हका दिन गत होगया कल्हके दिनमें यह हुवाथा इत्यादि भूतकाल उपलक्षण मात्र है ऐसही वर्तमान भविष्यत्को भी जानना चाहिये, ज्ञानमें तीनों कालका सम्बन्ध होता है भविष्यतकालका सम्बन्ध ज्ञानमें होता है सुख व दुःखमें नहीं होता यह भी भेद होनेका हेतु है परन्तु भूतकालका दृष्टान्त उत्तम है इससे सूत्रमें विशेष ग्रहण किया है. भूतका बोध स्मृतिद्वारा उदय होनेसे व पूर्वज्ञात होनेसे भविष्यत्की अपेक्षा मुख्य है अथवा सूत्रका भाव यह है कि लैङ्गिक (अनुमान) ज्ञानमें भूतकालके ज्ञानका सम्बन्ध रहता है जैसे भ्रमरहित धूम देखनेसे अग्निका अनुमान होता है यह अनुमान पूर्वकालमें धूम व अग्निके जानेहुये सम्बन्धके स्मरणहीसे होता है, विना भूतकालके ज्ञानके संस्कारसे नहीं होसक्ता व सम्बन्धके ज्ञा-

नसे भविष्यत् कालसम्बन्धी भी ऐसा ज्ञान होता है कि जहां धूम होगा वहां अग्नि होगा क्योंकि धूम विना अग्निके उत्पन्न नहीं होता इसप्रकारसे जैसे ज्ञानमें भूत भविष्यत्को सम्बन्ध होता है सुख व दुःखमें नहीं होता सुख वा दुःख जिस कालमें प्राप्त होता है उसी कालमें ज्ञात होता है सुखदुःखका स्मरणमात्र जो भूतकालमें हुयेका होता है वह स्मरणज्ञानहीका कार्य है सुख व दुःखसे पृथक् है, भूत भविष्यत्की अपेक्षारहित ज्ञानसे विलक्षण होनेसे सुख दुःख ज्ञानसे भिन्न हैं ॥ ४ ॥

. सति कार्यादर्शनात् ॥ ५ ॥

होनेपर भी कार्यका ज्ञान न होनेसे ॥ ५ ॥

अन्य हेतु ज्ञानसे सुख व दुःखके पृथक् होनेका ज्ञापक (जनानेवाला) यह है कि सुख व दुःखके कारण द्रव्य होनेपरभी अर्थात् प्रत्यक्ष होनेपर भी कार्यरूप जो सुख वा दुःख है उसका ज्ञान न होनेसे सुख व दुःख ज्ञानसे भिन्न हैं यह ज्ञात होता है, यथा माला चन्दन प्रत्यक्ष होनेसे माला चन्दन आदिसे जो सुख होता है वह प्रत्यक्ष नहीं होता, जो ज्ञान व सुखमें भेद न होता तो माला चन्दन आदिका प्रत्यक्ष ज्ञान होतेही उनसे जो सुख होता है वह सुख तथा अग्नि विष सर्प आदिके प्रत्यक्ष होनेसे उनसे जो दुःख होता है वह दुःख प्रत्यक्ष होजाता, परन्तु सुख दुः-

खके कारणविषय प्रत्यक्ष होनेपरभी सुख दुःख कार्यका ज्ञान न होनेसे सुख दुःखका ज्ञानसे भिन्न होना सिद्ध होता है ऐसही चन्दन अग्नि आदिके अनुमान करनेमें सुख दुःखका अनुभव वा ज्ञान चन्दन अग्नि आदिक ज्ञान होनेमें नही होता इससे सुखदुःख ज्ञानसे भिन्न है ॥ ५ ॥

एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ६

एकार्थसमवायि (एकही अर्थके साथ समवाय सम्बन्धको प्राप्त) कारण जो भिन्न कारण हैं उनमें ज्ञात होनेसे ॥ ६ ॥

सुखदुःख यह सूत्रमें शेष है. सुखदुःखसहित सूत्रका पुरा अर्थ यह है कि, सुखदुःख एकार्थ समवायिकरणोंमें अर्थात् जो कारण एकही अर्थके साथ समवेत (समवायसम्बन्धसहित)हैं व ज्ञानकारणोंसे भिन्न है उनमें ज्ञात वा विदित होनेसे सुखदुःख ज्ञानसे भिन्न है अर्थात् एक अर्थके साथ जो समवेतकारण (समवायसम्बन्धको प्राप्त कारण) ज्ञानकारणसे भिन्न है उनमें सुखदुःखका होना ज्ञात होनेसे अर्थात् उनमें सुख व दुःखके होनेका अनुभव होनेसे सुखदुःख ज्ञानसे भिन्न है इसका निदर्शन यह है, जैसे धर्म, सुखमें राग (सुखमें प्रीति) सुखकारणमें इच्छा, सुखके उपादानकारणके लिये यत्न व माला चन्दन आदिका ज्ञान

यह सुखसम्बन्धी एकार्थसमवायि व विशेषकारण हैं व अ-
धर्म अनिष्ट कांटा आदि यह दुःखसम्बन्धी एकार्थसमवायि
विशेषकारण हैं इन विशेष एकार्थसमवायिकरणोंमें सुख-
दुःखका होना अनुभूत (ज्ञात) होनेसे व ज्ञानमें ऐसे
विशेष एकार्थसमवायि कारणोंकी अपेक्षा न होनेसे, क्योंकि
ज्ञानमें आत्मा व मनका संयोग जो सब पदार्थ व सुखदुः-
खके बोधमें भी साधारण (सामान्य) कारण है उसकी
आवश्यकता होती है. विशेषकी अपेक्षा नहीं है, सुख दुःख
ज्ञानसे भिन्न हैं, जो यह शंका हो की निर्विकल्पकज्ञान (वि-
शेषधर्मज्ञानरहित पदार्थके होनेमात्रका ज्ञान)में विशेष-
एकार्थसमवायिकारणकी अपेक्षा नहीं करता परन्तु सविक-
ल्पकज्ञान (विशेषणसहित पदार्थका ज्ञान) विशेषणत्वज्ञान
(विशेष होनेका ज्ञान)की अपेक्षा करता है तो ऐसा ज्ञान
कोई अन्य विजातीयकारण नहीं है, लैङ्गिकज्ञानमें (अ-
नुमानमें) यद्यपि विशेषकारण व्याप्ति स्मृति पक्ष धर्मता
आदिके ज्ञानकी अपेक्षा होती है परन्तु यह ज्ञानसे भिन्न
सुखमें चन्दन आदिके समान नहीं है इसीसे सूत्रमें ज्ञानसे
भिन्न कारण होना जाननेके लिये भिन्न कारणशब्द कहा
है. इससे उक्तहेतुसे सुखदुःखका ज्ञानसे भिन्न होना सिद्ध
होता है ॥ ६ ॥

एकदेश इत्येकस्मिन् शिरः पृष्ठमुदरं मर्माणि तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥ ७ ॥

एक शरीरमें एकदेशमें शिर पृष्ठ उदर व अन्य मर्म अवयव (अङ्ग) जो हैं उनका विशेष (भेद) उनके विशेषकारणोंसे है (कारणोंके भेदसे है) ॥७॥

सुख दुःख यद्यपि बाह्य इन्द्रियोंसे उत्पन्न प्रत्यक्षज्ञान व उस प्रत्यक्षपूर्वक हुये अनुमानसे विलक्षण सिद्ध होते हैं तथापि मनद्वारा प्रत्यक्ष होनेसे मानसिक प्रत्यक्षविशेष है इससे कारणविशेषसे ज्ञानसे भिन्न कैसे है, इस शंकाके समाधानके लिये सिद्धान्तमें यह सूत्र कारणभेदसे कार्यभेद होनेके निदर्शनमें वर्णन किया है. सूत्रमें यथाशब्द शेष है, यथाशब्दसहित सूत्रका अर्थ यह है कि, यथा एकशरीरमें एकदेश (एक अवयव)में शिर पृष्ठ उदर व अन्य मर्म अवयव जो हैं उनका भेद उनके कारणोंके भेदसे है अर्थात् जैसे एकही शरीरमें शिर आदि अङ्गोंका भेद उनके कारणोंके भेदमें है, क्योंकि विना कारणमें भेद हुये कार्यमें भेद होना असंभव है ऐसही कारणविशेषसे सुखदुःखका भेद है वा भेद होना समुझना चाहिये. यद्यपि रुधिर व वीर्य कारणसे सव शरीर उत्पन्न होता है परन्तु शिर उदर पृष्ठ आदि अङ्गोंकी विशेपता (विजातीय भेद होना) उनके

कारणोंकी विशेषता (भेद) होनेसे होती है क्योंकि जिस-जातिका समवायिकारण शिर अवयवका है उसी जातिका उसी प्रकारका वा वही पृष्ठ उदरका नहीं है, क्योंकि तन्तु व मृत्तिकाके अणु विजातीयकारण होनेहीसे पट व घट विजातीयकार्य होते हैं, विनाकारणमें भेद हुये कार्यमें भेद नहीं होसक्ता, कारणभेदसे पट घट आदि कार्य होनेके समान अन्यत्र भी कारणहींके विजातीय होनेसे कार्यका विजातीय होना समुझना चाहिये, इससे कारणद्रव्यसमान होनेपर भी परमाणुओंके संयोगविशेष परिमाणके न्यून अधिक आदि भेदसे कारणोंमें भेद हो जानेसे अपने अपने उपादानकारणके विजातीय होनेसे शिर पृष्ठ उदर आदि भिन्न आकारयुक्त कोमल कठिन विजातीयकार्य हैं ऐसही कारण भेदसे सुखदुःख व ज्ञान भिन्न हैं ॥ ७ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मिते दशमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ १ ॥

अथ दशमाध्यायस्य द्वितीयाह्निकप्रारंभः ।

कारणमिति द्रव्ये कार्यसमवायात् ॥१ ॥

कारण है यह (कारण है यह ज्ञान व प्रयोग) द्रव्यमें कार्यके समवायसे ॥ १ ॥

कारण है यह ज्ञान व यह प्रयोग (कथन) द्रव्यमें होता है, कार्यके समवायसे अर्थात् कार्यरूप द्रव्यगुण व कर्मका द्रव्यमें समवाय (समवायसम्बन्ध) होनेसे तात्पर्य यह है कि, समवायिकारण होनेकी प्रतीति द्रव्यमें होती है व द्रव्य समवायिकारण कहा जाता है, क्योंकि द्रव्यमें कार्य द्रव्य गुण व कर्मका समवाय होता है, कारणके प्रसङ्गसे अब समवायिकारण असमवायिकारण व निमित्तकारण तीनोंकारणोंको विचार करनेके प्रयोजनसे कारणका वर्णन करना आरंभ किया है, उनमेंसे प्रथम समवायिकारणको इससूत्रमें कहा है. निमित्तकारणको अगले सूत्रमें कहते हैं १,

संयोगाद्वा ॥ २ ॥

वा संयोगसे ॥ २ ॥

वाशब्द सूत्रमें विकल्प अर्थवाचक है. विकल्पका प्रयोजन यह है कि जो द्रव्य समवायिकारण होता है वही संयोगसे निमित्तकारण भी होता है इससे यह कहा है वा संयोगसे अर्थात् द्रव्यसमवायिकारण वा संयोगसे निमित्तकारण दोनों होता है, यथा तन्तुपटके समवायिकारण हैं परन्तु तुरी (नाल वा.ढरकी) व तन्तुका संयोगभी पटका कारण है, तुरीके संयोगद्वारा संयोगकी दृष्टिमात्रसे तुरी व तन्तुभी पटके निमित्तकारण हैं ॥ २ ॥

कारणे समवायात् कर्माणि ॥ ३ ॥

कारणमें समवायसे कर्म ॥ ३ ॥

असमवायिकारण हैं इतना सूत्रमें शेष है, शेषसहितसूत्रका पूरा वाक्यार्थ यह है, कारणमें समवायसे (समवायसम्बन्ध होनेसे) कर्म असमवायिकारण हैं जो कार्य व कारणसम्बन्धी एक अर्थमें समवेतकारण हो उसको असमवायिकारण कहते है, असमवायिकारण दो प्रकारसे होता है, कार्यके समवायि एक अर्थमें (एकद्रव्यमें) समवायसे, अथवा कारणके समवायि (सम्बन्धी) एक अर्थमें समवायसे (समवायसम्बन्ध होनेसे) यह जनानेके लिये कि किस सम्बन्धसे संयोग विभाग व संस्कारोंमें कर्म असमवायिकारण होते हैं, सूत्रमें यह कहा है, कारणमें समवायसे अर्थात् संयोग आदि समवायिकारणमें समवाय होनेसे कर्म असमवायिकारण होते हैं, यह संयोग आदि समवायिकारणमें समवाय होनेसे कर्मका असमवायिकारण होना कार्यके समवायि एक अर्थमें समवाय होनेसे कारण होना है, क्यों कि संयोग जिससे कार्य उत्पन्न होता है, कार्यका समवायिकारण है व जिस संयोगका कार्यके साथ समवाय है उसीके साथ कर्मका समवाय है ॥ ३ ॥

तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ॥ ४ ॥

तैसंही रूपमें कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे ॥ ४ ॥

अवयव (कारण)में विद्यमान रूपआदि अवयवी (कार्य)-के गुणोंमें कैसे कारण होते हैं यह विज्ञापन (जनाने)के लिये यह वर्णन किया है तैसही रूपमें कारणकेसाथ एक-अर्थमें समवाय होनेसे, तैसही अर्थात् कर्मके समान रूप आदि गुणोंमें कारण (अवयव)के साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे असमवायिकारणता है. रूपशब्द उपलक्षणमात्र है, रूपसे रूपआदि समुझना चाहिये, अर्थात् रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह आदि ग्रहण करना चाहिये. कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे असमवायिकारणता है, यह कहनेका अभिप्राय यह है कि अवयवोंके रूप आदिका समवायसम्बन्ध अवयवोंमें है, अवयवीमें नहीं है परन्तु अवयव जो अवयवीके समवायि (समवायसम्बन्धवाले) कारण हैं उनमें रूप आदि समवेत हैं अर्थात् उनमें उनका समवायसम्बन्ध है व अवयवोंके साथ एकही कार्यअर्थमें इनका समवाय होता है इससे रूप आदि भी अवयवीके रूपआदिके कारण होते हैं. विना अवयवोंके साथ मुख्य अवयवीके साथ समवाय न होनेसे समवायिकारण नहीं हैं इससे असमवायिकारण हैं इससे अधिक द्वितीय प्रकारसे इसका विवरण इसप्रकारसे समुझना चाहिये कि अवयवी-

के रूप आदिकोंका समवायिकारण जो अवयवी हैं उसको जब अवयव समवायिकारण उत्पन्न करते हैं (उत्पन्न होनेके हेतु होते हैं) तव अवयवोंके साथ उसीमें अवयवके गुणोंका सम्बन्ध होनेसे अवयवके रूप,आदि अवयवीके रूपआदिको आरम्भ करते हैं (उत्पन्न करते हैं) जैसे पृथिवी अणुओंके वा कपाल आदिके रूप आदि घटके रूप आदिको आरंभ करते हैं, चकार जो सूत्रमें है वह अन्यकारण होनेका भी सूचक है अर्थात् रूप आदिकहीं निमित्तकारण भी होते हैं यह अभिप्राय है ॥ ४ ॥

कारणे समवायात् संयोगः पटस्य ॥ ५ ॥

कारणमें समवायसे पटका संयोग असमवायिकारण है ॥ ५ ॥

कारणमें अर्थात् समवायिकारणमें (अवयवोंमें) समवाय होनेसे पट आदि कार्यका संयोग, कार्यके समवायि वा सम्बन्धीके साथ समवाय होनेके लक्षणयुक्त असमवायिकारण है. पटशब्द उपलक्षणमात्र है,पटशब्दसे कार्यद्रव्यमात्रका विज्ञापन समुझना चाहिये, कोई यह कहते हैं कि जो अवयव अवयवीका संयोग भी पट आदि कार्यद्रव्यका असमवायिकारण है तो कारणके साथ जो एकअर्थमें समवाय है वह भी असमवायिकारण है या असमवायिकारण मानना चाहिये ॥ ५ ॥

तैसही रूपमें कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे ॥ ४ ॥

अवयव (कारण)में विद्यमान रूपआदि अवयवी (कार्य)-के गुणोंमें कैसे कारण होते हैं यह विज्ञापन (जनाने)के लिये यह वर्णन किया है तैसही रूपमें कारणकेसाथ एक-अर्थमें समवाय होनेसे, तैसही अर्थात् कर्मके समान रूप आदि गुणोंमें कारण (अवयव)के साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे असमवायिकारणता है. रूपशब्द उपलक्षणमात्र है, रूपसे रूपआदि समुझना चाहिये, अर्थात् रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह आदि ग्रहण करना चाहिये. कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे असमवायिकारणता है, यह कहनेका अभिप्राय यह है कि अवयवोंके रूप आदिका समवायसम्बन्ध अवयवोंमें है, अवयवीमें नहीं है परन्तु अवयव जो अवयवीके समवायि (समवायसम्बन्धवाले) कारण हैं उनमें रूप आदि समवेत हैं अर्थात् उनमें उनका समवायसम्बन्ध है व अवयवोंके साथ एकही कार्यअर्थमें इनका समवाय होता है इससे रूप आदि भी अवयवीके रूपआदिके कारण होते हैं. विना अवयवोंके साथ मुख्य अवयवीके साथ समवाय न होनेसे समवायिकारण नहीं हैं इससे असमवायिकारण हैं इससे अधिक द्वितीय प्रकारसे इसका विवरण इसप्रकारसे समुझना चाहिये कि अवयवी-

के रूप आदिकोंका समवायिकारण जो अवयवी हैं उसको जब अवयव समवायिकारण उत्पन्न करते हैं (उत्पन्न होनेके हेतु होते हैं) तब अवयवोंके साथ उसीमें अवयवके गुणोंका सम्बन्ध होनेसे अवयवके रूप आदि अवयवीके रूपआदिको आरम्भ करते हैं (उत्पन्न करते हैं) जैसे पृथिवी अणुओंके वा कपाल आदिके रूप आदि घटके रूप आदिको आरंभ करते हैं, चकार जो सूत्रमें है वह अन्यकारण होनेका भी सूचक है अर्थात् रूप आदिकहीं निमित्तकारण भी होते हैं यह अभिप्राय है ॥ ४ ॥

कारणे समवायात् संयोगः पटस्य ॥ ५ ॥

कारणमें समवायसे पटका संयोग असमवायिकारण है ॥ ५ ॥

कारणमें अर्थात् समवायिकारणमें (अवयवोंमें) समवाय होनेसे पट आदि कार्यका संयोग, कार्यके समवायि वा सम्बन्धीके साथ समवाय होनेके लक्षणयुक्त असमवायिकारण है. पटशब्द उपलक्षणमात्र है, पटशब्दसे कार्यद्रव्यमात्रका विज्ञापन समुझना चाहिये, कोई यह कहते हैं कि जो अवयव अवयवीका संयोग भी पट आदि कार्यद्रव्यका असमवायिकारण है तो कारणके साथ जो एकअर्थमें समवाय है वह भी असमवायिकारण है या असमवायिकारण मानना चाहिये ॥ ५ ॥

कारणकारणसमवायाच्च ॥ ६ ॥

कारणके कारणसमवायसे भी ॥ ६ ॥

कहीं कारणोंके संयोगसे स्थूलपरिमाणवाले कार्य होते हैं फिर यह भी परस्परसंयुक्त हो और अधिकपरिमाणवाले कार्यके उत्पन्न होनेमें कारण होते हैं इस प्रकारसे कारणके कारणसमवायसे संयोग अधिकसम्बन्धका कारण होता है, जैसे तूलके पिण्डों (रुईके पिण्डों)के अवयवोंमें वर्तमान संयोग रुईके पिण्डमें महत्परिमाण उत्पन्न करता है इसमें कारण एक अर्थमें समवायसम्बन्ध है ॥ ६ ॥

संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ॥ ७ ॥

संयुक्तसमवायसे अग्निका वैशेषिक (विशेषगुणात्मक उष्णता) गुण निमित्तकारण है ॥ ७ ॥

निमित्तकारण है यह सूत्रमें शेष है. शेषसहित सूत्रका पूरा अर्थ अनुवादमें लिखागया है, अग्निका वैशेषिक गुण अर्थात् उष्णता (गरमी) पाकज रूप आदिमें अर्थात् जो अग्निमें पकनेसे घट आदिमें रूप (रंग) आदि होते है उनमें संयुक्तसमवायसे निमित्तकारण है अर्थात् संयुक्त (अग्निसंयोगको प्राप्त पदार्थ)में अग्निकी उष्णतासे रूप आदि विशेष उत्पन्न होनेका जो समवायिसम्बन्ध है इससे अग्निकी उष्णता पाकज रूप आदि उत्पन्न करनेमें निमित्त

कारण है, जो कारण समवायिकारण व असमवायिकारण न हो वही निमित्तकारण है यही निमित्तकारणका सामान्य लक्षण समुझना चाहिये ॥ ७ ॥

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ॥ ८ ॥

दृष्टोंका (देखेहुये कर्मोंका) व दृष्टप्रयोजनोंका (जिनका प्रयोजन शास्त्रसे व उपदेशसे ज्ञात है ऐसे कर्मोंका) प्रयोग (अनुष्ठान) दृष्ट न होनेसे (फल दृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्ष न होनेसे) अभ्युदयके अर्थ है (स्वर्गप्राप्ति वा आत्मज्ञान उदय होनेके लिये है) ॥ ८ ॥

दृष्टकर्मोंका व दृष्टप्रयोजनकर्मोंका जैसे यज्ञ तप दान आदि जिनका प्रयोजन शास्त्र व उपदेशसे जाना हुवा है ऐसे कर्मोंका प्रयोग (अनुष्ठान) करनेपर फल दृष्ट न होनेमें इनका प्रयोग अभ्युदयके लिये है अर्थात् स्वर्गप्राप्तिके लिये व चित्तशुद्धिपूर्वक आत्मज्ञान उदय होनेके लिये है. अभ्युदयशब्दके दोनों अर्थ हैं स्वर्ग व तत्वज्ञान या आत्मज्ञान, स्वर्ग व आत्मज्ञान दोनों कहनेका प्रयोजन यह है कि. जिन कर्मोंका फल स्वर्ग प्राप्त होना वर्णन किया है यथा स्वर्गकामो यजेत इत्यादि अर्थ स्वर्गकी इच्छा प

वाला यज्ञ करै और उसी कामनासे उनका अनुष्ठान कियाजाता है तब उनका फलभोग अभिलाषियोंको स्वर्गप्राप्ति आदि होता है और जो विषयसुखकी अभिलाषा नहीं करते मुमुक्षु हो कामनारहित तपआदिका अनुष्ठान करते हैं उनको चित्तशुद्धिपूर्वक आत्मज्ञान प्राप्त होता है, मुख्य फल धर्म व उत्तम कर्मका चित्तशुद्धिपूर्वक आत्मज्ञानलाभ करना है इसीसे मोक्ष प्राप्त होता है, स्वर्गआदिसे जीव कृतार्थ नहीं होता ॥ ८ ॥

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति ॥ ९॥

उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य है ॥ ९ ॥

इस शंकानिवारणके अर्थ कि अदृष्ट फल है उसमें निश्चय कैसे हो कि यह फल होगा व विश्वास करानेके लिये यह कहा है कि उसके वचनसे अर्थात् ईश्वरके वचन होनेसे वेदका प्रामाण्य है, तात्पर्य यह है कि ईश्वर सर्वज्ञ भ्रान्ति अविद्यारहित है उसका वचन वा उपदेश वेद है इससे सत्यही होना संभव है. यदि यह शंका हो कि वेद मनुष्यकृत है तो कोई मनुष्य सहस्रशाखायुक्त व अदृष्ट अलौकिक पदार्थोंके व्याख्यानसंयुक्त वेदका वक्ता संभव नहीं होसक्ता, क्योंकि संसारी मनुष्यका ऐसा होना कि जो अतीन्द्रिय पदार्थको अर्थात् जो इन्द्रियद्वारा जाननेके योग्य न हो उसको जान सकै व वर्णन करसकै सर्वथा असंभव

व अयुक्त ज्ञात होता है, वेद आप्तवाक्य है अर्थात् भ्रांति-रहित उत्तम यथार्थ वक्ताका वचन वा वाक्य है इसीसे महाजनोंनें ग्रहण किया है. जो महाजन सब दर्शनके जाननेवाले (सब शास्त्रोंके जाननेवाले) सत् व असत्के विवेक करनेवाले हैं उनका ग्रहण करनाही सत्य व यथार्थ होनेमें प्रमाण है, क्योंकि उनका असत्का ग्रहण करना अयोग्य व असंभव है इससे सिद्धान्त यह है कि इस हेतुसे कि विना उपदेश व साधन सहस्र शाखापर्यन्त वेद व अतीन्द्रिय पदार्थ व फलके वर्णन करनेमें किसी संसारी मनुष्यका स्वतंत्र समर्थ होना अशक्य व अयुक्त है व अपूर्व विषय स्वर्गआदिका साक्षात् करनेवाला यथार्थ ज्ञानवान्, विना ईश्वरके अन्य किसीका होना संभव नहीं है, वेदको ईश्वरनिर्मित मानना उचित है व ईश्वरवाक्य होनेसे वेद व वेदमें वर्णित धर्म आदि पदार्थ मानने व प्रमाणके योग्य हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीवैशेषिकसूत्राणां देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमद्धार्मिकप्यारेलालात्मजचांदामण्डलान्तर्गतले रहीत्याख्यग्रामवासि श्रीमत्पण्डितप्रभुदयालुनिर्मिते दशमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् समाप्तश्चायं दशमोऽध्यायः ॥ शास्त्रमिदं पूर्तिमगमत् ॥

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
६३	१०	निन्यत्व	नित्यत्व
७३	१२	मानेजावें	मानेजावे
७८	९	न होनेके	न होनेको
७९	७	हैं	है
७९	१९	भाव एक है	आकाश एक है
८०	१३	शब्द है	शब्द हो
८३	२०	कहते है	कहते है
८४	१६	पदार्थमें है	पदार्थमें है
८६	२	है	है
८६	१७	है	हैं
९२	३	कहे जाते है	कही जाती है
९२	८	और	और
९२	९	कहते है	कहते है
९३	१	यहते है	कहते हैं
९३	९	पूर्वनाम	पूर्व नाम
९४	३	कोटिओं	कोटियों
९४	२०	आडीमें	झाडीमें
९५	१	आडीके	झाडीके
९५	२	दोप्रकारके	दोप्रकारका
९६	५	पदने	पढने
९८	१ व २	कहते है	कहते हैं
९९	१८	अह	यह
१०३	१२	यहि है	यह हैं
१०५	३	अनैकान्तिक है	अनैकान्तिक हैं
१०५	१८	अनन्त हो	अनन्त हों

पृष्ठ.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध.
१०७	१८	देसते	देसता
१०८	४	शङ्काकरके	शङ्का करके कि
१०८	९	करते है	करते हैं
११०	१४	होते हुय	होते हुये
१११	३ व ४	तादात्म्य	न तादात्म्य
११२	२	(धुवा)	(धुवां)
११२	१४	करते है	करते हैं
११४	२	रखत है	रखते हैं
११४	१४	लिङ्ग हैं	लिङ्ग है
११५	१३	विरोधि है	विरोधी हैं
११५	१९	क्रिये है	क्रिया है
११७	१९	करते है	करते हैं
११८	१९	नियत सहचार है (व्याप्ति) है	नियतसहचार (व्याप्ति) है
११८	२१	एक दूसरे पृथक्	एक दूसरेसे पृथक्
११९	९	कहते है	कहते हैं
१२०	४	व अनपदेश है	अनपदेश हैं
१२०	१२	कहते है	कहते हैं
१२२	११	कहते है	कहते हैं
१२२	१९	केवल व्यतिरेकि	केवलव्यतिरेकि
१२३	१४	(एकह अर्थवाचक)है	(एकही अर्थ वाचक) है
१२४	१७	कहते है	कहते हैं
१२५	१	होता	होता है
१२६	२	न रहनेसर	न रहनेपर
१२६	१६	कहते हैं	कहते हैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध.	शुद्ध.
१२६	१८	करते है	करते हैं
१२८	३	हुई	हुई
१२८	४	है	है
१३१	१५	इन्दि	इन्द्रिय
१३२	१५	युगप्‌	युगपद्‌
१३३	६	पाव	पाव
१३३	९	अनेकज्ञान	अनेकरा ज्ञान
१३४	१०	लिङ्ग है	लिङ्ग हैं
१३४	१३	जीना मनोगति	(जीना) मनोगति
१३५	१७	रोकनेमे	रोकनेम
१३६	४	लिङ्ग है	लिङ्ग हैं
१३६	१२ व १३	माने जावे	माने जाव
१३८	३	गुण है	गुण हैं
१४१	१४	केवट	के पल
१४२	४	परोक्ष प्रयक्ष नहीं)	परोक्ष (प्रत्यक्ष नहीं)
१४३	१६	प्रमाण होने	प्रमाण न होने
१४४	११	उपचाराव्‌	उपचारात्‌
१५२	११	अनेक है	अनेक हैं
१५२	१३	अनेक है	अनेक हैं
१५३	६	शाख्यसामर्थ्यसे	शास्त्रसामर्थ्यसे
१५४	११	देत है	देत हैं
१५४	१३	होता	होता है
१५५	१८	लिङ्ग है	लिङ्ग हैं
१५६	४	वे परिमाण	विनापरिमाण
१५६	१२	लिङ्ग है	लिङ्ग हैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५९	१	द्रवत्वात्	द्रव्यवत्वात्
१६०	६	वायु प्रत्यक्ष	वायुका प्रत्यक्ष
१६४	७	गुरुत्वके होनेका हेतु वा कारण प्रत्यक्ष नहीं है	गुरुत्वके प्रत्यक्ष होनेका हेतु वा कारण नहीं है
१६७	११	आश्रित है	आश्रित हैं
१६८	११	नहो न होनसे	न होनेसे
१७०	२	शुक्र	शुष्क
१७०	२०	जुंवा	जुंवां
१७१	१७	होते है	होते हैं
१७२	२ व ५	ऋषिभों	ऋषियों
१८१	२	छह	[illegible]
१८२	५	सूजिभों	सूजिया
१८२	८	पत्ता	पत्ता
१८७	१२	संयोगमें	संयोगमे
१८८	६	द्रव्यद्रव्य	द्रवद्रव्य
१८८	१५	कराती है	कराती हैं
१८९	१६	हाते है	होते हैं
१८९	२२	किरणाका	किरणोंको
१९२	४	जिनका अर्थ	जिसका अर्थ
१९४	१०	अभेदत्वचनम्	अभेदत्वेऽव्यवचनम्
१९७	१२	कहने है	कहते हैं
२०१	१	नहु है	नहीं है
२०१	५	क्रियारहित है	क्रियारहित हैं
२०२	३	कारण है	कारण हैं
२०३	२०	समासथग	समासथार्य

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२०६	१३	गुणानामान्तरे	गुणानामात्मान्तरे
२१६	१६	यथा	तथा
२१७	१३	नहीं होता व पाप	नहीं होता व पाप होता
		होताभी है	होताभी है यमके अर्थात् होनेसे
२२०	१४	पूर्वजन्मके कर्म	(पूर्वजन्मके कर्म)
२२१	१५	कहते है	कहते हैं
२२२	१	धर्म व धर्म	धर्म व अधर्म
२२३	२१	छ	छः
२२४	२	वही भी	वह भी
२२४	६	गुणोंकारी अनित्य	गुणोंकाभी अनित्य
२२५	४	पृथिके	पृथिवीके
२२६	२१	अग्निके(अणुओंके)	अग्निके अणुओंके
२२८	१८	यह कि	यह है कि
२२९	८	गुणि	गुणी
२३१	१४	व्याख्या है	व्याख्यात है
२३३	२	हस्व	ह्रस्व
२३३	४	अणुक	द्व्यणुक
२३४	२० व २१	(अन्यपरिमाणका)	(अन्यपरिमाण)का
२३६	७	अणुक	द्व्यणुक
२३८	४	न होनेका निषेध	होनेका निषेध
२४०	४	दीघत्त	दीर्घत्व
२४०	५	नहीं थे	नहीं होते
२४१	१४	जाती है	जाती हैं
२४७	४	गुण है	गुण हैं

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२४७	५	आदिसें	आदिमें
२४९	१२	हो सक्ती	हो सक्ती है
२५१	१५	आदि है	आदि हैं
२५६	१३ व १४	चार हेतुओंको	चार सूत्रोंमें हेतुओंको
२६०	५	कहते है	कहते हैं
२७३	२	केवल इसमें केवल	इसमें केवल
२७४	३	प्रत्यय है	प्रत्यय हैं
२७७	७	छवीसवे	छत्तीसवें
२७७	८	समुझना लेना	समझलेना
२७८	१५	शब्द है	शब्द हैं
२८०	११	कोन	कौन
२८१	१५ व २०	तिसका अर्थ औरका होता है, अर्थात् कहे हुयेसे अधिक ग्रहणका होता है, उससे	जिसका अर्थ औरका होता है, अर्थात् कहे हुयेसे अधिक ग्रहणका होता है, उससे
२८३	१२	होते है	होते हैं
२८४	१२	सामान्य है	सामान्य हैं
,,	१५	विशेष है	विशेष हैं
२८८	१२	होते है	होते हैं
२८९	१	कारण:	कारणा:
२८९	२	जो ज्ञान होता दूसरेका कारण नहीं होता	जो बुद्धियां अर्थात् ज्ञान होते वे एक दूसरेके कारण नहीं होते
२८९	५	ज्ञान होता है	ज्ञान होते हैं
२९०	१६	छप्रकार होता है	छ:प्रकारका होता है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२९१	२	जिससे	जिसमें
२९१	१४	कहते है	कहते हैं
,,	१९	,,	,,
२९४	१३	करते है	करते हैं
३०२	१ व २	कहते है	कहते हैं
३०३	७	कहते है	कहते हैं
३०३	९	करते है	करते हैं
३०४	१२	इन्द्रियोके	इन्द्रियोंके
,,	१८	प्रागभाव भाव	प्रागभाव, भाव
३०५	१२	प्रत्यक्षके कारण	प्रत्यक्ष होनेके कारण
३०५	२१	अन्यान्यो	अन्योऽन्या
३०५	२१	कहते है	कहते हैं
३०६	१६ व १७	वाचक है	वाचक हैं
३०७	६	जानाया है	जनाया है
३०८	१२	कहते है	कहते हैं
३०८	१४	कहते है	कहते हैं
३०९	१	योगिओ ही	योगियों हीं
३०९	१८	है उनको	हैं उनको
३१०	२	कररहे है	कररहे हैं
३१०	२	कहते है	कहते हैं
३११	१७	करते हैं	करते हैं
३१२	५	कहते हैं	कहते हैं
,,	११	,,	,,
३१३	१६	उदाहरण यह है	उदाहरण यह है
३१४	१८	समुद्र न जलकी	समुद्र जलकी

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३१५	११	लिये है	लिये हैं
३१६	१५	(जानना)	(जनाना)
३१७	६	अनित्य है	अनित्य हैं.
३१७	७	नहीं होता	नहीं होते
३१७	८	होते है	होते हैं
३१७	१०	अनित्य होते है	अनित्य होते हैं
१८	१	(उत्पत्तिधर्मक होने)	(उत्पत्तिधर्मक होनेसे)
३१८	१६	प्रमाणमें है	प्रमाणमें हैं
३२०	२०	(अनुमान)ही है	(अनुमान)ही हैं
३२१	३	लैहिक है	लैहिक हैं
३२१	१८	नहीं है	नहीं है
३२१	१६	है, यथा	हैं, यथा
२२	२	निषय	निषेध
२३	१७ व १८	कारण है	कारण हैं
२५	४ व ५	उसका स्वम	उसको स्वममे
२७	१२	धर्मक होते है	धर्म होते हैं
२७	१६	करते है	करते हैं
[illegible]	५	ऋषिओं	ऋषियो
५	१०	वह	वे
९	१२ व १३	ऋषिओं व योगिओं	ऋषियों व योगियों
[illegible]	१०	मानते है	मानते हैं
	१६	नही है	नहीं हैं
	६	एक नहीं है	एक नहीं है
	२१	ज्ञानसे संस्कार	ज्ञानके संस्कार
	२	भविष्यनको	भविष्यनका

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३३६	५	भिन्न है	भिन्न हैं
३३६	१०	पुरा	पूरा
३३६	१३८	भिन्न है	भिन्न हैं
३३६	१६	भिन्न है	भिन्न हैं

जो शब्द छपनेमे अशुद्ध छपगये थे उनकी शुद्धिके लिये यह शुद्धिपत्र बनाया है यदि इसपरभी दृष्टिदोषसे अशुद्धता रहगई हो तो विद्वान् जनोंको विचारसे शुद्ध शब्द समझ लेना चाहिये.